

सखाराम नेमचंद ग्रंथमाला

महाकवि रत्नाकरावशास्त्रचत

भरतेश-वैभव

(भोग-विजय)

पञ्चम भाग.

अनुवादक—

विद्यावाचस्पति,

श्री. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री,

स संपादक— जैनबोधक, सोलापूर.

प्रकाशक—

रावजी सखाराम दोशी,

सोलापूर.

Bhartiya Shruti-Darshan Kendra
JAIPUR

वीर सं २४६२]

मूल्य रु. १॥)

[सन १९३६ ई

भरतेश वैभव



प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री. क्षुल्लक विमलसागर महाराज !

कर्णाटकसाहित्य उसमे भी खासकर महाकवि रत्नाकरकी कृतियोंमे आपका असीमप्रेम, सतत ध्यानाध्ययनमे अभिरुचि, विपुल भोगके होते हुए भी उसमे निस्पृहता, आदि आपके गुणोसे मुग्ध होकर यह " भोगविजय "

भाग आपकी सेवामे गुरुभक्तिके एक चिन्ह रूपमे समर्पण किया जाता है ।

सोडापूर
१ । ८ । ३६

चरणसरोजचंचरीक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

भरतेशवैभव और रत्नाकरवर्णी

साहित्य संसारमें कर्णाटक साहित्यके लिये बहुत ऊंचा स्थान है । कर्णाटक भाषामें जैन साहित्य विपुल रूपसे अंकित किये गये हैं । अन्य साहित्योंके अपेक्षा इसमें शब्दमाधुर्य, भावगाम्भीर्य व अपूर्वरचना कौशल होनेसे सुश्राव्य नहीं सुग्राह्य भी हुआ करता है । जैन साहित्यका बहुभाग अंश कर्णाटक भाषामें अंकित कड़ा जाय तो अनुचित न होगा । कर्णाटक देशमें बड़े २ आगमोंके ज्ञाता कवि हुए हैं । उनमें सबसे अधिकश्रेष्ठ इस क्षेत्रमें प्राप्त हुआ है तो रत्नाकरवर्णीको कह सकते हैं । उसकी रचनायें सभी दृष्टिसे अद्वितीय हैं ।

उपर्युक्त कविने कर्णाटक कवितावर्गमें भारत चक्रवर्तीका स्वतंत्र जीवन चरित्रको खींचा है । इस ग्रंथको कर्णाटकमें “ भरतेशचरिते ” कहनेकी पद्धति चली आरही है, परंतु कविने स्वयं पीठिकामें कहा है कि ‘ श्रीभरतेशवैभवविदुः ’ अर्थात् यह भरतेश वैभव है, ‘ भरतेश वैभव वैभवकाव्यनिदनोरेदेनु सुखिगळालिपुदु ’ अर्थात् भरतेशवैभव नामके काव्यको मैंने कहा है सज्जन लोग सुने । हमसे इस ग्रंथका नाम भरतेशवैभव ऐसा योग्य जान पड़ता है । सचमुचमें इसमें भरतेश वैभवका ही वर्णन किया है, इसलिये इसको यही नाम उपयुक्त है । कोई २ इसे भरतेश संगति और अण्णाळचरितके नामसे कहते हैं, यह ग्रंथ कर्णाटकके सांगत्य छंदमें निर्मित होनेसे पण्डित नाम एवं इस कविको अण्णाळ (भाईसाहेब) कहकरके पुकारनेकी पद्धति होनेसे इसका दूसरा नाम रूढिमें आया होगा ।

ग्रंथ प्रमाण

यह ग्रंथ पाँच कल्याणसे विभक्त है जिनको कविने क्रमसे भोग विजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय, अर्ककीर्तिविजय इस प्रकार

नाम दिये हैं। इन पाचकव्याणोंमें अमी सधि एवं ९९६० श्लोक मन्त्रा है। उवचन्द्रक गजावलि कथामें हम ग्रन्थको ८४ संघियोंका होना सिद्ध होता है। परन्तु ४ सधि इस समय अनुपलब्ध हैं।

कवि

हम ग्रंथ कर्ताका नाम रत्नाकर वर्णी है। कविने अपनेको क्षत्रिय वंशज कहा है। उसने श्रीमन्दर स्वामीको अपने पिता, दीक्षा गुरुके स्थानमें चारुकीर्तिको एवं मोक्षाग्रगुरु हंसनाथ (परमात्मा) इस प्रकार उल्लेख किया है। देवचन्द्रने अपन ग्रंथमें हम कविका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह कर्णाटकके सुप्रसिद्ध क्षेत्र मृदवित्रीके सूर्यवंशके राजा देवराजका सुपुत्र था एवं उसका नाम रत्नाकर रखा गया। बाकी उपाधि उनके चाडके अवस्था की है।

रत्नाकर बाल्यकालमें ही कान्यालकार शास्त्रमें अत्यंत प्रवीण था एवं मात्रय टीका, कुडकुट्टके ग्रन्थटीका समाधिगतक, समयसार, योग रत्नाकर, नियमसार, अष्टात्मसार, स्वरूप संवोधन, इष्टोपदेश आदि ग्रंथोंको मनन पूर्वक अभ्यास कर उस देशके भैरव राजाके आस्थानमें प्रसिद्ध विद्वान् था। उसको लोकमें सबसे अधिक “ निरंजन सिद्ध और चिद्स्वर पुरुष ” पर प्रेम था। इमे गृन्थार कवि नामकी भी उपधि थी।

रत्नाकर भैरव राजाका आस्थान कवि था। हमकी विद्वत्ताको देखकर राजकन्या मोहित हो गई। रत्नाकर भी उसके मोहपाशमें आगया। वउ उन पर आसक्त होकर शरीरके वायुवर्षोंको वशमें करके, वायुनिरावयोगके बलमे महलमें पहुँचकर उस राजपुत्री के साथ प्रेम करता था। यह बात धीरे २ राजाको मालुम हानपर राजान् उसे पकड़न का प्रयत्न किया। उसी दिन रत्नाकरने अपने गुरु महेंद्रकीर्तिस पंचाणुत्रनको लेकर अष्टात्मतत्त्वमें अपने आत्मा को लगान को प्राग्म किया। उसी समय महारजकीके शिष्य विजय-गणाने एक द्वादशानुप्रेषा नामक ग्रंथ संगीतमें रचना की थी जिसका

बहुत आदरके साथ हाथीके ऊपर जुलूम निकाला गया । तब रत्नाकरने अपने भरतेश्वरको भी हाथीके ऊपर रखकर जुलूम निकालना चाहिये इसप्रकार भट्टारकजीसे प्रार्थना की । तब भट्टारकजीने कहा कि उसमें दो तीन शास्त्र विरुद्ध दोष हैं इसलिये वैसा नहीं कर सकते हैं, तब रत्नाकरने इस विषयपर उनसे अवार्त्ता की तब उन्होंने ७०० वर्षके श्रावकों को बड़ी आज्ञा देदी कि इस रत्नाकर को कहीं भी आहार नहीं दिया जाय । तब रत्नाकर अपने बहिन के घरमें भोजन करते हुए, जिन घर्मपर रुसकर आत्मज्ञानिको कोई भी जाति कुछ बराबर है ऐसा समझकर लिंग वाचकर लिंगायत बन-गया, वहापर वीरशैवपुराण बसवगुण आदिकी रचना की । कविके विषयमें और एक कथा सुननेमें आती है । रत्नाकर बाल्य कालमें ही वैराग्यको प्राप्त कर चारुकीर्ति योगीसे दीक्षा लेकर योगाभ्यास करता था । प्रातः काल उठते ही अपने साथीदारोंको एवं शिष्योंको उपदेश देता था । दिनपर दिन उसके शिष्य वर्गकी वृद्धि होती जाती थी । कुछ लोग उसके प्रभावको देखकर उससे जलने थे, उन लोगोंने एक दिन प्रातः काल होनेके पहिले रत्नाकरके परलगके नीचे एक वेश्याको लाबिठालकर स्वयं यथावत् शास्त्र सुननेको बैठाये । उस वेश्याने कुछ समयबाद अपने आभरणोंका शब्द किया तो उन ईर्षालु लोगोंने यह क्या है ऐसा कह कर उस वेश्याको बाहर निकाल कर रत्नाकरका अपमान किया । रत्नाकर एकदम उठकर वहांसे चला गया । कुछ लोग जाकर बहुत प्रार्थना करने लगे । परंतु वह पीछे नहीं लौटा । जाते २ एक नदीको पारकर रहा था, तब भक्तोंने श्रमपूर्वक प्रार्थनाकी तो भी “ मुझे ऐसे दुष्टोंका संपर्ग नहीं चाहिये । मैं आज ही इस जैनधर्मको तिर्थांजलि देता हूं ” ऐसा कहकर उस नदीमें डूब गया । वहांसे उठकर एक पर्वतपर चला गया । पर्वतपर एक शैवग्रंथको हाथीपर जुलूम निकालते हुए देखकर उस ग्रंथको वांचकर उसमें कुछ भी रस ही नहीं है

ऐसा कह दिया। सब लोगों ने राजासे इसकी शिकायत की। राजाने उसे सरम ग्रंथ भण्डार के लिये आज्ञा दी थी। रत्नाकर को बुलाकर राजा कहने लगा "तुम्हारा रस कौनसा है? तब रस करने ९ मासकी अवधि मांगी। उसके बाद इस भण्डारखाने को रचकर राजाको दिखाया कि इसमें रस है तब राजा इस काव्यको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पद्य २ विद्वान् इसके काव्यसे मुग्ध हो गये। राजाने कविका पूर्ण सत्कार के लिये आज्ञा दी। कविने उस आज्ञा को पालन करने लिये स्त्रियोंको साथ लिया। परन्तु कहा कि मैं जिस समय मरूंगा मैं दासस्वरूप छोड़ दूँगा। मैं बाहरसे लिये जाऊँगा भी अन्दर से जैन हूँ एवं यह स्त्रियाँ नहीं कबल चाँदीकी पेट्टी के ऐसा मनम सपना। मैं जैन टोकाही मर गया। इन दोनों कथाओंको देखने पर मालूम होता है कि कवि पूर्वमें जैन होकर किसी समय किसी कारणसे लिङ्गधर्मी बनकर पुनः जैन बन गये थे।

यद्यपि इन ग्रंथोंकी रचना शुभ स्वर्णसे हुई है यह बात उपर्युक्त कथा संदर्भोंसे मालूम होती है तथापि कवि स्पष्ट कहते हैं कि मैंने इस काव्यको किसीके साथ उत्सव बुद्धिसे इसकी रचना नहीं की। परमात्मा की आज्ञासे आत्मसंतोषके लिये मैं इसकी रचना की। चाहे इसे कोई पसंद करे या न करे इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। संसारके नियमानुसार कविने अपने काव्यके प्रति आदरकी प्रकाशा नहीं की तो उसका यथेष्ट आदर हो गया। अर्थात् जैन पदार्थको हम उपेक्षा करते हैं वह तो हमें मिल जाता है जिसको हम चाहते हैं वह हमसे दूर चला जाता है। कविने इस काव्यका आदर एवं अपने लिये कीर्तिकी इच्छा नहीं की। परन्तु वे दोनों बातें उसे अनायास ही प्राप्त हुई। कीर्ति चाहनेसे नहीं आती, सात्कार्य करनेसे अपने आर आती है।

कविने स्वयं एक प्रसंगमें कहा है कि इस कथाको कहते समय

लोकमें सब लोगोंको संतोष हुआ किन्तु ४-५ पोलियोंको ईर्ष्यासे मनमें दुःख हुआ। उनसे कवि उपेक्षित था विद्वान लोगोंने उनका विरोध किया इस कविका यथेष्ट आदर किया।

कविकी इतर रचना

कविने भारतेश वैभवके अलावा रत्नाकर शतक, अपराजित शतक त्रिलोक शतक नामक शतकत्रय नामक ग्रंथकी रचना की है। एवं करीब २००० श्लोक प्रमाण प्रमाण अध्यात्मगीतोंकी रचना की है उपर्युक्त शतकत्रयमें रत्नाकर शतकमें वैराग्यरस अपराजितशतकमें भक्ति-रस एवं तीसरे शतकमें त्रिलोकका वर्णन है। वैराग्य और भक्तिशतक बहुत ही हृदयमाही ढंगसे लिखे गये हैं। मरनेजबमयमें अपने गुरुको चारुकीर्ति व शतकत्रयमें देवेंद्रकीर्तिके नामसे कवि उल्लेख करते हैं। इससे ये दोनों ग्रंथ मिल २ रत्नाकरके हैं ऐसा लोग समझेंगे। परन्तु यह बात नहीं है। कविके जीवनघटनामें दीक्षा गुरु चारुकीर्ति होनेपर भी जब तन्दोंने उसे बहिष्कृत किया तब वह देवेंद्रकीर्तिके पाय जाकर रहा होगा। चारुकीर्ति मूढविद्रोके महारकका नाम हैं। देवेंद्रकीर्ति होमूच गादीके महारक हैं। दोनों ग्रंथोंकी रचना जली, यत्र तत्र वर्णनसादृश्य आदि बातोंको देखनेपर यह बात निश्चिन होजाती है कि दोनोंके कर्ता एक ही प्रसिद्ध रत्नाकर है। रत्नाकरको श्रृंगारकवि हंस-राज नामक उपाधि थी। यदि शतकत्रयके कर्तासे यह रत्नाकर भिन्न मानाजावे तो उस रत्नाकरका कोई श्रृंगार काव्य होना चाहिये। जिससे वह उपाधि चरितार्थ होती। परन्तु अन्य कोई ग्रंथ नहीं है। यही भारतेश वैभव उम उपाधिके लिखे कारण है। इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ये सब रचनायें रत्नाकर वर्णीकी हैं एवं कर्णाटक साहित्यमें अद्वितीय हैं।

काल विचार.

रत्नाकरने अपने कालके विषयमें त्रिलोक शतककी रचना करते

समय कहा है कि "गणित्रिगति इंदु शालिग्राम" । इस प्रकार कहनेसे हमका समय शालिग्राम श्रम वर्ष १९७० ठहरता है । अर्थात् सन् १५५७ है । आजसे करीब २ पीनेबाग नौ वर्ष पूर्वका यह स्ताना है । रत्नाकरके दिवशमें हमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं । हमकी प्रस्तुत विद्वत्ता उसकी रचनाबोले ही स्पष्ट है । जिस विषयमें हमकी गति नहीं थी यह कहने में अमर्य है ।

अपने ग्रंथमें कविने प्रत्येक विषयको चित्रण किया है । गुंता, अन्तर्कार, अष्टात्म, मंगीत आदि विषयोंका वर्णन जान हुए मोगीयोगियोंको हर्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति हममें अद्भुत थी । यही कारण है कि हमका यह काव्य विद्वानोंको, यशस्वरु कि बड़े २ योगियोंको भी आदरणीय हुआ ।

हम प्रकार हम हम गस्तावनमें कविके दिवशमें मृमिका जाननेके बाद हमकी कृति जो प्रकृतकाव्य उत्तर भी घोडा विचार करे जिससे आगे काव्यको वाचनमें विशेष सहायता निक सकेगी ।

- -

कथासार ।

कौशिक देशके अयोध्यानगरीमें श्रीहृषभनाथ तीर्थकरके पुत्र पद्मलहाभिरति भरत चक्रवर्ति बहुत आनंदके साथ राज्य पालन करता था । वह अत्यंत निपुण एवं प्रजाओंका आन्तरिक हितवित्तक था । सदा उसे आत्मविनोदके कार्यमें प्रसक्त होती थी । वह अपने दरबारमें बहुतसे विद्वान् कवियोंके साथ कविता विनोदमें संगीत विद्वानोंके साथ तद्विषयमें प्रातःकालके समयको बिताता था । देव पूजादि नित्य कर्मोंमें निवृत्त होकर ही वह प्रतिनित्य दरबारमें आता था । दरबार बरखास्तकर सत्पात्रज्ञान देनेके कार्यमें लगता था । मुनियोंको आहार देकर मोहन करनेमें अपनेको धन्य समझता था । मोजनानंतर

दिनके शेष भागमें अपने ९६ हजार राणियोंके साथ भोगयोगमें लीन होकर राजयोगी होकर बहुतसे सुखोंका अनुभव करते हुए भी योगीके समान रहता था इसी प्रकार उसने अपने सत्कृत्योंसे भवल यशको प्राप्त किया ।

भोगविजय

एक दिन दूसरेके समय आयुध पूजा आदि करके वह राजा भरत दिग्विजयके लिये निकला । सबसे पहिले मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यन्तर राजाओंसे सम्मानको प्राप्तकर उनसे बहुमूल्य भेंटको प्राप्त करते हुए अन्य षट्खण्डवर्ति राजाओंसे क्षीरत्नादि भेंट प्राप्त करते हुए बहुत सुखके साथ दिग्विजय यात्रा की । वह साठ हजार वर्ष दिग्विजयमें रहा । बीचमें उसे बारह सौ तन्त्र मोक्षगामी पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई । उन सबका यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कारोंको बहुत समारम्भके साथ करते हुए जब दिग्विजयसे लौटे तब उसके छोटे भाई बाहुबलि उसे सामना करने लगा । युद्धकेलिये सज्ज होकर आया । भरतने अपने छोटे भाईके साथ युद्ध न करके अपने वचन चातुर्यसे ही उसे जीत लिया । बाहुबलि अपने अपराधकेलिये पश्चात्तापकर दीक्षा लेकर जिनयोगी बन गया । भरतेश बहुत समारम्भके साथ निज नगर प्रवेश कर दिग्विजयकी थकावटको दूर करने लगे ।

दिग्विजय

बाहुबलि जिन दीक्षालेकर जंगलमें जाकर घोर तपश्चर्या कर रहा था । तथापि उसे आत्मसिद्धि नहीं हुई । इस समाचारको सुनकर भरतने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवंतके समवशरणमें जाकर इसका कारण पूछा । पूछनेपर उसके हृदयमें अभीतक शक्य मौजूद है जो आत्मसिद्धिकेलिये बाधक है ऐसा मालूम कर उसी जंगलमें जाकर बाहुबलि योगिसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर उसके शक्यको दूर कर उसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति कराई । भरतकी माता यशस्वती देवी भी

अननवीर्य स्वामी दीक्षा लेकर अजिंफा बन गई। फेराम पर्यंत जो जिन निवाम निर्माण कराये गये थे उनका मुख बछोढ़ाटन मात्र चक्र वर्तिन अपने मकर पवित्रांगोंमें युक्त होकर विधिपूर्वक बहुत ही समारंभक साथ काकर अपूर्व धर्म प्रभावना की।

योगविजय

भक्तचक्रवर्तिन को पुनः विशाध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनके माई येश्वर संभारोंमें विरक्त होकर दीक्षा लेकर चला गया। तब उन को पुत्रोंमें भी संभारोंमें प्राप्ति कर लिया तदनंतर समवशाणमें जाकर भगवान् आदिनाथमें तपोपदेश सुना एवं मोक्षमार्गका समझकर जिन दीक्षामें दीक्षित हो गये। इस समाचारको मालुम कर भक्तचक्रवर्तिको बड़ा दुःख हुआ। वह उसी समय समवशाण गया जाकर अपने पुत्रोंको देखकर तीर्थनाथकी बड़ी भक्तिमें पूजा की। दूसरे दिन भगवान् आदिनाथको निर्माणपदकी प्राप्ति हुई।

भक्त चक्रवर्तिन पुनः अयोध्याको आकर राज्य पालन करने लगा। एक दिन वर्षणमें सुख देखते समय अपने एक पके बालको देखकर उसे बेगम उठाने लगा। तत्क्षण अर्ककीर्तिको पट्टामिषेफ किया। तदनंतर स्वयं ही अन्न गुरु होकर दीक्षा लेली, एवं निश्चलध्यानके बलमें तेजस कामण वर्गणावोंको जलाकर अंतर्मुखमें केवल ज्ञानको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

मोक्ष विजय

अर्ककीर्ति राज्यको पालन करना था। परन्तु उसे जब यह समाचार मिला कि पिनाथी भक्त मुक्तिको गये तब उसका भी चित्त उदास हुआ राज्यमें मोहको छोड़कर अपने छोटे भाई आदिराजके साथ जिन दीक्षा लेली। फिर क्रमसे मूलोत्तर गुणोंको पालन करते हुए कुछ समय बाद निश्चल ध्यानके बलसे मुक्तिको गया।

अर्ककीर्तिविजय

मुख्य पात्रवर्ग.

कथासार उपर्युक्त प्रकार है। इस साहित्यका मुख्य नायक भरत है। राजा भरत जैन तीर्थंकरोंमें सबसे आदिके श्री आदिनाथ तीर्थंकरके आदिपुत्र, आदिचक्रवर्ती व तद्भव मोक्षगामी था। षट्खण्डको पालन करते हुए भी वह आत्मानुमयी या अतएव राजा होकर भी योगी था। भरतेशके जीवनकी प्रत्येक दशा अनुकरणीय है। विद्वान् कविने काव्य के मुख्य अंगको पूर्ण बर देकर उसे सुंदर रूपसे चित्रण किया है। भरत चक्रवर्तीको ९६ हजार राणियाँ थी और १२०० पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे। सारांश यह है कि भरतेश सत् युगके आदि महापुरुष था। इसलिये इस खंडको भरत खंड कहते हैं।

मुजबलि राजा भरतका छोटे भाई है। भरतेश चक्रवर्ती होकर जिस समय अयोध्यामें राज्य पालन कर रहा था उस समय मुजबलि युवराज होकर पौदनापुरमें राज्य पालन कर रहा था। मुजबलि अपने नामके समान महावीर था। षट्खण्ड भरतको वशमें होने के बाद भी मुजबलिनने भरतकी आधीनता स्वीकार नहीं की। इसलिये भाई भाई-योंमें परस्पर युद्ध हुआ। इसमें मुजबली की जय हुई। पीछे राज्यके लिये मुझे भाईसे युद्ध करना पडा इस प्रकारके पश्चात्तापसे वैराग्य पाकर भरतको राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर चला गया इस प्रकार पुराणोंमें कथन है। परन्तु कविने अपने चातुर्यसे भरतको धीमेदास रूपसे वर्णन करने की सदिच्छासे कथाभागको तत्वाविरोध रूपसे थोडा बदलकर भरतेश की ही जय हुई है। वह भी बाहुबलिके साथ युद्ध न करके भरतने केवल अपने वचन चातुर्यसे ही बाहुबलिको परास्त किया जिससे लज्जित होकर वह विरक्त हुआ ऐसा लिखा है। यहाँपर पाठकोंको जैनागममें परस्पर विरोधिताका भास होजायगा। परन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है यह भरतेश वैभव होनेसे भरतको धीर, उदास व उच्च पात्रके रूपसे वर्णन

करना यह काव्यका गर्भ है । फिर भी दूरदर्शितासे कविन आगमविरोधाभासके भ्रमको दूर करनेके लिये ही मानो तब समय भरतके मुखमें यह कहलाया है कि अरे भाई ! मैंने युद्धसे डरकर तुमको बातोंमें लगाया ऐसा तुम शायद मनमें पढ़ोगे । वैसे नहीं । तुम जिन दंगसे युद्धके लिये आये हो इसमें तुम्हारे लिये अवश्य विजय है । मामान्य मनुष्योंके समान युद्ध कानकी क्या आवश्यकता है । अच्छा ! सही ! तुम जीते हम हार गये । मेरे भाईकी जीत मेरी जीत नहीं क्या ! मुझे जरा भी मनमें क्रोध नहीं है' इससे भी वाचक ठीक २ अर्थ सम्प्रेषे । बाहुबलि आदिकामदेव या, हमलिये ग्रंथमें बाहुबलिकेलिये यत्रतत्र कामदेवके पर्याय वाची शब्द उपयोगमें लाये गये हैं । बाहुबलिकी पट्टरानी इच्छा महादेवी, मंत्री प्रणयचंद्र, सेनानिधि वर्मनक, पट्टहाथी माकंठ, बाहुबलिका जीवन पूर्वर्ष तिरस्कार पश्चात् अनुगम उत्पन्न होन लायक है । यही बाहुबलि अब गो.मट्टस्वामी कहलाते हैं ।

बुद्धिसागर भगवत्का मंत्री है । वह चक्रवर्तिकेलिये दाहिने हाथके समान रहकर अपने अनुभवसे चक्रवर्तिके सर्व कार्य बुद्धिमत्तासे साधन करता था । उसकेलिये अंत पुत्र प्रवश भी निषिद्ध नहीं था । वह चक्रवर्तिके मनोगत विषयको पहिलेसे समझकर उमो प्रकार सर्व व्यवस्था करता था । चक्रवर्तिके मित्र मागध, वरतनु, प्रभाम इत्यादि व्यंत्तोंको जिस समय सत्कार किया गया उस समय उनके योग्यतानुसार वचन कहे थे । चक्रवर्तिको विश्वासस्थान पट्टत्वण्डकार्यनिर्वाहक होने पर भी सबसे प्रेम पूर्वक व्यवहार करता था ।

जयराज यह भरतके यशस्वी सेनापति है । इसीने अपनी कुशलतासे भरतको पट्टत्वण्डको साधन कर दिया था । इसको भरतने मेघेश्वर नामकी उपाधि देदी । यह महावीर था । इसके चरित्रको वर्णन करने वाले कर्नाटक व संस्कृत साहित्यमें कई ग्रंथ हैं ।

मागधामर यह भारतेश्वरके व्यंत्तर सेनापति है पूर्व सागरके एक

झीपमें बड़ राज्य पालन कर रहा था। वह धीर व महाशूरी था। कोषी होने पर भी हितैषियोंके वचनको सुननेवाला था। भरतके आगमनको सुन-
पहिले यद्यपि उसने युद्धकी तैयारी की फिर भी बादमें मंत्रीके समझानेसे समझकर भरतचक्रवर्तीको भेंट बगैरह देकर उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसके बाद कई व्यंत्तर राजावोंको वशमें करके दिया।

नमिराज भरतके छली साला है। भरतचक्रवर्ति, सुभ्रासे संपत्तिमें बड़ा होनेपर भी वंशमें बड़ा नहीं है इस गर्वसे भेंट व बहिन सुभद्रा देवीको देनेके समयमें भरत यदि हमारे घरमें आया तो देंगे नहीं तो नहीं देंगे इस प्रकार उसने निश्चय किया था। फिर माता व बुद्धिसागर के समझानेसे भरतको पासमें जाकर बहुत सभ्रमसे सुभद्रादेवीका विवाह भरतके साथ किया। भरतने उसका सत्कार किया। कविने भी पात्रोंको भी अच्छी तरह वर्णन किया है।

यशस्वतीदेवी भरतेशकी पुज्य माता थी पुत्रके प्रति माताका अत्यधिक प्रेम व पुत्रकी माताके प्रति श्रद्धा उनमें आदर्शरूपसे थी। यशस्वतीदेवी सदा आत्मभित्तनके साथ २ पुत्रके प्रति हितकामना करती थी। भरतचक्रवर्तीकी ९६ हजार राणियोंकी भक्ति सासुके प्रति अनुकरणीय थी। दिग्विजयप्रस्थानके समय बहुएं और बेटेको मातुश्रीने आशिर्वादके साथ जो समयोचित वचन कहे वह मनन करने योग्य है। बहुवोंने जो पुन सासुके दर्शन करने पर्यंत कुछ नियम ग्रहण कर लिया है इसीसे उनके भक्ति वात्सल्य व्यक्त होजाता है।

कुसुमाजी भरतके ९६ हजार स्त्रियोंमें अत्यधिक प्रीतिपात्र थी यद्यपि भरतका प्रेम सबकेलिये समान था फिर भी उसके गुणसे विशेष अनुरक्त था भरत उसे बाहरसे नहीं बतलाता था, फिर भी कुसुमाजीने जो तोतेके साथ जो सरससंलाप किया था एवं भरतको अपने घर बुलाकर भोजन कराते समय जो संलाप किया उससे उनका प्रेम अच्छी तरह व्यक्त होता है।

सुमद्रा देवी भरतकी पट्टराणी थी, वह भातके खास मामकी बेटी थी। वह गुणोंमें भरतचक्रवर्तीकेलिये अनुगुण थी। पट्टराणी होनेपर भी सभी राणियोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करती थी। सभी राणियोंको संतान होनेपर भी इसकेलिये कोई संतान नहीं थी। फिर भी इतर सबके सतानको अपने सतानके समान निर्माया भावसे प्रेम करती थी।

इसके अलावा बहुतसे पात्र हैं जिनका परिचय द्वापसंगमें पाठकोंको हो जायगा।

साराष्ट्र सर्व प्रकारसे यह काव्य सुंदर मृदुमयुग्मावयवोंकी रचनासे अथसे इतितक चित्ताकर्षक, इसपरमें सुखोत्पादक नीतियोंमें युक्त, मानवीय हृदयमें महागुणोंको बीजारोपण करनेवाला, कथाप्रेमियोंको आनंद देनेवाला, अध्यात्मप्रेमियोंको प्रियानेवाला, श्रृंगारप्रेमियोंको अध्यात्मरस श्रृंगार उसको देनेवाला, तत्त्वज्ञानियोंको तत्त्वज्ञान दगानवाला एवं विद्वानोंको परमपूज्य है। एक बार नहीं अनेकवार मनन करने योग्य है।

शैली।

इस काव्यकी रचनामें कविने अत्यन्त सरल शैलीको पसंद किया है। साधारणसे साधारण रसिकोंको इस काव्यका रस मिले इस उद्देश्यसे कविने अत्यंत सरल पद्धतीसे स्वाभाविक चित्रोंको चित्रित किया है। काव्य मधुर व श्रव्य रहे इसकेलिए कविने बहुत प्रयत्न किया है। अतएव काव्य शिक्षामय नैतिकबलदायकएव आत्मकरुणाले लिए साधक होगया है।

रचनाचातुर्य।

इस काव्यको बाचनेसे कविके रचनाचातुर्यका बोध होता है। यद्यपि भोगविजयमें कथाभाग तो बहुत ही कम है यही कारण है कि कविने भरत चक्रवर्तिके तीन दिनकी दिनचर्याको १९ परिच्छेदोंमें

चित्रित किया है। यही कौशल है।

काव्यको एक नाटकके ढंगसे प्रारंभ किया है। आस्थानसचिसे प्रारम्भकर भरत चक्रवर्तीको राज दरबारमें बैठाऊ दिया है। वहाँपर दिविज कलाधर नामक आस्थानकविसे भारतकी स्तुति कराई है जिससे पाठकोंको भारतके गुणोंका परिचय हो, दिविजकलाधरने भी उस कार्यको पूर्णकर अपने विवेकको बतलादिया। तदनंतर चक्रवर्तीके धार्मिक कृत्योंसे परिचय करानेके लिए मुनिमुक्तिंसचिका वर्णन किया है। उसके बाद श्यामगृह संधि पर्यंत भरत चक्रवर्तीका राणियोंके साथ एक दिनके सरस विहारका वर्णन होनेपर भी पाठकोंके चित्तको आकर्षण करनेवाला है।

भारतेशके सर्वांगीण वर्णन करना इस काव्यका मुख्य ध्येय है। आदि चक्रवर्ती भारतका परिचय, पंचमकाव्यके वह भी १६ वीं शताब्दीके एक कविकी अपेक्षा भारतके साथ शत्रुदिन रहनेवाली उसकी प्रिय राणीको रहना स्वभाविक है। इसलिये कविने उस विषयपर अनधिकार चेष्टा न कर भारतेशके प्रियरानी कुसुमाजीसे ही उस कामको कराया है। उसमें भी क्या तारीफ? वह अपने हृदयकी बात दूसरोंसे कहती है क्या? नहीं, वह अपने महलमें बैठकर अपने प्रिय तोतेसे पतिकी प्रशंसा कर रही है। पक्षीसमें रहनेवाली अमनाजी सुमनाजी राणियोंने छिपकर सुनलिया फिर उसे एक काव्यके रूपमें रचना की। उस काव्यको सुननेके लिये पण्डिताने राजासे आम्रह किया। राजाने अंतरंग दरबारमें उसे सुन लिया। कवि स्वयं पीछे हटकर राणियोंसे ही उसका वर्णन कराया यह विचित्र बात है।

लोकमें दांपत्य प्रेमकी आवश्यकताको प्रकट करनेकी इच्छासे कविने जिस समय कुसुमाजी तोतेसे अपने प्राणवल्लभकी कथा कह रही थी उस समय उमने तोतेसे चुप्पी साधनेका कारण पूछा तो

विजय, मोक्ष विजय और अर्ककीर्तिविजयमें कविने प्रायः संसारकी अस्मिता बतलाकर भव्योंका चित्त मोक्षकी ओर आकर्षण किया है।

वर्णनाक्रम.

कविने प्रथमतः प्रसिद्धा की है कि “प्रचुरदि पदिनेटु रचनेय काव्यके रचिसुवरानंतु पेळे, ठचितके तक्कट्टु पेय्येनव्यात्मवे निचित प्रयोजनवेनगे” अर्थात् कविगण अठारह अंगोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करत हैं परंतु मैं वैसा नहीं करूंगा। मुझे केवल थोड़ासा अध्यात्मविवेचन करना यहाँपर मुख्य प्रयोजन है। जिस समय ध्यानसे मेरा चित्त विचलित होगा उस समय शुभयोगमें मेरा चित्त रहे एवं अध्यत्म विचार हो इस दृष्टिसे इस काव्य रचनाकी प्रसिद्धा की है। इसलिये इसकी रचनामें कविने अन्य कवियोंका अनुकरण नहीं किया है। इसका वर्णन स्वाभाविक है। जिस पदार्थको उसने वर्णन किया है वह पदार्थ नैमर्गिकरूपसे पाठकोंके हृदयमें अंकित हुए बिना नहीं रहसकता। जो वर्णन उसे स्वयंको पसंद नहीं आया या उसे और ढंगसे जहाँ वर्णन करना चाहता था वहाँ तत्क्षण उसे बदलकर पाठकोंको अरुचि उत्पन्न नहीं हो इस ढंगसे वर्णन करता है। आश्चर्यमें बैठे हुए चक्रवर्तिका वर्णन करते हुए वीरसको अच्छी तरह टपका दिया है। एवं उसकी सुंदरताका अच्छा चित्र खींचा है जिसे सुनकर ही अच्छा चित्रकार हबह चित्र खींचसकता है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थानका विचित्र वर्णन पाठकोंका मनमोहक होगया है।

संगीत शास्त्रमें गति.

इस कविकी गति संगीतशास्त्रमें भी अद्भुत थी। आँखोंसे जिन पदार्थोंको हम जोग देखसकते हैं वह पदार्थ हमारे सामने न हो उसका वर्णनकर हमारे सामने लाकर ठहरादेना यह अद्भुत शक्ति है, फिर उसमें भी कानोंसे स्वर्गभेदोंको सुनकर आनंद प्राप्त करनेवाले गानोंको

न गद्या केवल विवचनसे ही गानेमे भी अधिक आनंदका अनुभव कराना यह हम कबका एक असाधारण कौशल कहना चाहिये । क्यों कि संगीतमें यह स्वयं प्रवीण था । संगीतका वर्णन जराया उन्होंने किया है बहायर गायन यदि स्वयं वादन यंत्रको छेकते उभे बजाते हुए स्वर्गीय आनंदको प्राप्त किये बिना नहीं रहे सक्ता । हमलिये संगीत प्रेमियोंको भी यह आश्चर्यीय है ।

कविने पूरा नाटक उत्तर नाटक प्रमाणमें नाट्य कलाके मुख्य अंग नर्तनका बहुत ही उत्तम ढंगमे वर्णन किया है । प्रकाश को वाचन समय नाटक प्रशंस आलो के सामने हो रहा हो ऐसा मालूम होता है ।

इन्द्रियोंको गोचर होनेवाले पदार्थों को अप्रत्यक्ष रूपसे वर्णन करना यह कवियोंकी विद्वत्ता है । उमें भी इन्द्रियोंमे अगोचर पदार्थोंको आलोके सामने लाकेना यह असाधारण शक्ति है । अतीन्द्रियज्ञानके गोचर परमात्माको हम कविने हम ढंगमे वर्णन किया है कि मानो मालूम होता है कि आत्मा हमारे आलोके सामने ही हो, या हमारे इच्छेमें आ बैठा हो । अध्यात्म विचारको वर्णन करते समय कविने वस्तुतः पूर्ण प्रावीण्य का दिग्दर्शन किया है । यह विषय ऐसे अप्रत्यक्ष होनेके कारण इतने सरस ढंगमे हमका वर्णन किया है इसमें संदेह नहीं ।

रस.

रस भी काव्यका एक अंग है । प्रमाणानुसार रसका सम्प्रिग्रहणकर पाठकोंको हर्ष विषादादिमें डालना यह कविके बुद्धिचातुर्यपर निर्भर है । रसाकर्त्री रचनाओंमें हमें श्रृंगारविहंगमाल नामक दशाविध थी । श्रृंगार विषयके वर्णनमें भी हमने अपने अप्रतिम कौशलको बतलाया है जिन प्रकार मत्तन कई जगह इस बातका अनुभव करगया है कि आत्मविज्ञानोंकेलिये दुनियामें कोई बात अज्ञेय नहीं, बाकीकी लौकिक बातें उसे मालतासे प्राप्त होसकती है इसी प्रकार अध्यात्म-रसमें अधिकारप्राप्त कविने यह बतलाया है कि अध्यात्मरसके प्राप्त

होनेके बाद बाकीके रसोंका वर्णन करना बाये हाथका खेल है इसलिये कविने काव्यमें प्रसंग पाकर शृंगार रसका अपूर्व चित्र खींचा है। चाहे कुछ स्थलोंमें वह मर्यादासीत होगया ऐसा अनुभवमें भी आवे फिर भी अध्यात्मरसोंके बीचमें आजानेसे एवं काव्यका मुख्य अंग होनेसे कोई बेढग नहीं हुआ है।

भरतेश्वरको कुमार वियोगका जिस समय समाचार मिला, उसे उस समय जो दुःख हुआ उसका वर्णन करते समय कविने करुणा रससे पाठकोंके चित्तको आर्द्रित किया है। उसे बाँचते समय पत्थर भी पानी हुए बिना नहीं रह सकता।

भरतके राणियोंके सरसाछाप व विदूषकके प्रासंगिक विनोद काव्यमें हास्य रसको यत्रतत्र व्यक्त करते हैं। ऐसे स्थानोंके अध्ययनसे वदासीन पाठकोंके हृदयमें भी उल्लास छानाना साहजिक है।

कविने जहाँ अध्यात्म विषयका वर्णन किया है वहाँपर छाँतरस अच्छीतरह टपकता है। जहाँपर वैराग्य भावका वर्णन किया है वहाँ आस्तिक वादीके हृदयमें विरक्ति परिणाम हुए बिना नहीं रह सकता। सचमुचमें यही कविका असाधारण प्रभाव व सामर्थ्य कहना चाहिये कि उसकी रचनामें यत्रतत्र चित्रित विषयोंका प्रभाव अविलंबसे पाठकोंके हृदय पर हो जाय। यह खुशी इस कविके काव्यमें नैसर्गिकवर्णनोंके अभिप्राय होनेसे खुश ही पाई जाती है प्रत्येक विषयमें निष्णात होनेके कारण जिस विषयको भी वर्णन करनेके लिये बैठे उसे लंगोपांग इस प्रकार वर्णन किया है कि जिससे पाठकोंको उसके अध्ययनसे स्वाद आये बिना न रहे।

कविका तत्त्वज्ञान

कविने अभिमान पूर्वक पहिलेसे कहा है इस काव्यके द्वारा भोगी और योगी दोनोंके हृदको मैं आकर्षण करूँगा। उसी प्रकार उसे उसमें सफलता भी मिली। तत्त्वज्ञानका बोध पाठकोंको हो इस इच्छासे भी भगवत्के मुखसे एवं भरतेश्वरसे उसके उपदेश दिखाना गया है। भरतेश्वर

वैभवके नाम सुननेपर केवल वैभवके वर्णनात्मक विषय होंगे इस प्रकार भ्रम होनेपर भी ग्रंथको देखनेसे पाठकोंको मालूम होगा कि यह केवल पुराण ग्रंथ नहीं है। इससे तत्त्वज्ञानका भी हमको यथेष्ट बोध मिलता है। आत्मविज्ञानका वर्णन इतने सरस ढंगसे वर्णन किया है कि भ्रम होता है यह केवल अध्यात्म शास्त्र ही तो नहीं। संसारकी प्रवृत्तिर्म तत्त्वविचार आत्मविचार वगैरह विषयोंमें मनुष्योंकी बहुत कम रुचि होती है। उनको यह विषय बहुत कठिन मालूम होता है। परंतु कविने उन कठिन विषयोंको इतना सरल व सरम बनाया है कि कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो उसे इसको सुननेकी इच्छा होगी। थोड़ीसी रुचि उत्पन्न होगई तो एकदफे नहीं कई दफे सुननेकी इच्छा करेंगे। हमतो कहते हैं कि यह वस्तुतः अध्यात्मग्रंथ ही है जिनको एकदफे इसका रवाद आया उनका कल्याण अवश्य भावी है तत्त्व विचारोंमें कविने आत्माके अनंत अपार शक्तिका उदाररूपसे वर्णनकर सर्व मतवालोंको एकमतसे आत्मक-व्यापककेलिये अध्यात्मविचारको सम्मत किया है।

हमने पाठकोंको आगे कथामागमें सुकर हो इस दृष्टिसे यहांपर कुछ सूचना दी है काव्यका असली स्वाद पाठक स्वयं आगे जाकर अनुभव करेंगे इस ग्रंथको कटणांक लिपिमें पुनः नवयुवक सघने प्रकट कर कर्णाटक बंधुओंके लिये सहोपकार किया है। उसमें क विद्वान् उग्रान् मंगेश्वरा-चका संशोधन व पूर्ववक्तव्य सोनेमें सुगंधके समान होकर हम लोगोंको बाचने लिखनेकेलिये अत्यंत सहायक हो गये हैं। अब हिंदीय समाज भी इस ग्रंथ के भावोंसे लाभ लेनेके कारण ग्रंथकर्ता, प्रकाशक, सहायकोंको हृदयसे आभार मानेगी।

हम यहांपर प्रसंगानुसार मुख्य २ विषयोंका भावानुवाद देने का प्रयत्न करेंगे। इसलिये मूलग्रंथमें जितना रस है उतना इसमें आना शक्य ही नहीं, फिर भी पाठकोंको मूलग्रंथके आनन्दके अनुमान करने केलिये सहायक हो सकेगा। वहीं मूल तो विद्वान् लोग सम्हाल लेंगे तो मेरे ऊपर उनकी दया होगी। इति। विनित—

— सोलापुर —

ता. २४-३-३४

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.

(न्यायकाव्यतीर्थ-विद्यावाचस्पति)

रत्नाकरवर्णि रचित भरतेश वैभव.

करोड़ों चद्रसूर्योंके प्रकाशसे भी अधिक तेज जिसका है ऐसे केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको धारण करनेवाले एवं जिनके चरण देवताओंके मन्त्रके किरीटोंमें प्रतिबिम्बित हो रहा है ऐसे श्री भगवान् वृषभदेव हमारी रक्षा करें ।

अष्टकर्मोंमें रहित होनेमें सर्वशुद्ध एवं केवलज्ञानसंपत्तिके अधिराति सिद्ध परमेश्वरको हमने नमस्कार किया है इसलिये सिद्ध-राममें (पारम) दुःखोंका दुःख जोहोके समान अब आत्मनिद्राको प्राप्त करूँगा, मुझे किम बातकी चिन्ता है ?

व्यवहार व निश्चयको जानकर, आत्माको पहिचान कर आत्मसाधन करनेवाले तीन क्रम नव करोड़ मुनियोंके चरणमें हमारा नमस्कार हो । हे आत्मन् ! तुम परमात्मा हो ! तीनों लोकमें तुम ही श्रेष्ठ हो, ज्ञान ही तुम्हारा यन्त्र है ! सर्व कर्मफलकलंक रहित हो ! पापको जीतनेवाला हो ! इसलिये तुम्हारेलिये नमस्कार हो । विशेष क्या ? मेरा साधन गुरु तुम ही हो, मुझे उद्धार दो ।

आपसे एक प्रार्थना है । जिस समय 'यानमें' वित्तकी एकाग्रता न रहेगी उस समय आपके स्मरण करके आपकी आज्ञामें कर्णाटक भाषामें एक कथा कहूँगा ।

कवियोंके वाचनका यह काव्य ईश्वरके समान मीठा रहे । नहीं तो क्या वामके समान रहे क्या ? नहीं । हे सरस्वती, तुम मुझे बुद्धि दो ।

अग्या ! येष्टु चेन्नायितपा ? ऐसा कर्णाटकी लोग, अग्या मंचिदि ? ऐसा तेलुगु लोग, अग्या, येच पोरु आण्ड ? ऐसा तुलुभाषाके लोग अर्थात् यह काव्य क्या अच्छा हुआ ऐसे कहते हुए । उत्साहसे सब भाषा भाषी मिल लगाकर सुने ।

इस काव्यमे कहीं कहीं शब्ददोष, समास दोष इत्यादि रहें तो रह भी सकेगे, सभी लक्षणोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करे तो वह कठिन होजायगा। फिर वह काव्य न रहकर पुस्तकका बैंगन होजायगा।

दोष कहा नहीं है। चंद्रमामे काला कलंक नहीं है? क्या चादनी भी काली है? नहीं। कदाचित्त किसीजगह शब्द दोष आजवे तो तत्वमें बाधा आयगी क्या? भव्यात्माओ! सुनो! तुम्हारेलिये एक सुंदर आदर्श कथाको सुनावूंगा। यदि आप सुनेगे तो आपका आत्मकल्याण आजकल या परसों तक होगा। मुझे क्या!

यह भरतेश वैभव है। इसे सुनो। इसको सुननेसे वारंवार सौभाग्यकी प्राप्ति होगी, मंगल होगा, देवेंद्र पदवीकी प्राप्ति होगी, अंतमें मोक्ष मिलेगा, इसमें संदेह नहीं।

जिसने अगणित राज्यसंपत्तिको उपभोग कर दिगंबर योगी होकर एक क्षणमें कर्मोंको भस्मकर अनंत सौख्यको प्राप्त किया ऐसे राजा भरतेशका वैभव आप सुनना नहीं चाहते हैं?

इस काव्यमें अध्यात्म और शृंगारका इस प्रकार विवेचन करूंगा कि जिसमें त्याग और भोगकी सीमा मालुम हो जाय। त्यागी और भोगियोंके दोनोंके हृदयमें उसका रोमाचकारी अनुभव हो जाय ऐसा कहूंगा। सुनिये तो सही।

कविगण काव्यके कलेवरको पूर्ण करनेकेलिये, समुद्र, नगर, राजा, राणी इत्यादियोंके वर्णन करनेकी पद्धतिसे रचना करते हैं। परंतु बैसा हम न करेंगे। क्यों कि मुझे इस ग्रंथमें चरित्रकी आडमें थोडासा अध्यात्म विषय कहना है।

इस कृतिके रचयिता मैं सामान्य मनुष्य अवश्य हू। परंतु चरित्रनायक सामान्य नहीं है। वह कृतयुगके प्रथम तीर्थंकरका

पुत्र है। इसलिये आप सुने। मेरा ढोप न देंगे।

यह पुण्यकथा पुण्यजीवियोंकेलिये रुचिकर होगी। दुर्जनोंको यह पसंद नहीं होगी। पापको दूरकर पुण्यसंपादन करते हुए स्वर्ग जानेकी इच्छा रखनेवाले इसे अवश्य सुनियेगा।

तो फिर “ओं नम, जिनं नम, सिद्धं नम, हंस नमामि इत्यादि मंत्रोंको बोलनेके बाद इस कथाको सुननेकी इच्छा हो तो ‘इच्छामि’ ऐसा कहिये। इतना कहना ही नहीं। फिर अच्छी तरह उपयोग लगाकर सुनिये।

आस्थान संधि:

भरत क्षेत्रकेलिए भूषण स्वरूप अयोध्यानगरीमें भरतचक्रवर्ती सुखसे राज्यपालन कर रहे थे। उनकी संपत्तिका मैं क्या वर्णन करूँ? भगवान् आदिनाथके बड़े बेटा, पृथ्वीके एक मात्र राजा वह भरत क्षणभरकेलिये आँख मीचलें तो मुक्तिको देखता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

सोलहवें मनु, पहिला चक्रवर्ति, ब्रिजोंकेलिये कामदेव, विष्णु-कियोंके चूड़ामणि एवं तद्भवमोक्षगामी भरतका वर्णन करनेको मैं समर्थ हूँ क्या?

जो गुण नहीं हैं ऐसे गुणोंको वर्णन करनेवाली पद्धति यह ठीक नहीं है। परंतु जो गुण उस राजा भरतमें हैं उनको भी पूर्णरूपसे कौन वर्णन करनेको समर्थ है।

बहुतसी बातें कहनेसे क्या? उस क्षत्रिय कुलरत्नको आहार तो है नीहार नहीं है। [मल मूत्र नहीं है] क्या यह अलौकिक पुरुष नहीं? लोकमें सभी पदार्थोंके जलानेपर उसका भस्म होता है। कपूरको जलानेपर भस्म होता है क्या? नहीं! संसारके सभी मनुष्योंको आहार नीहार है। हमारे भरतको आहार तो है नीहार नहीं है।

वह चक्रवर्ती भरत कोमल शरीरवाला है । सुवर्णमन्त्र उसका वर्ण है । अपने रूपमें दुनियाको मोहित करनेवाला सुन्दर है । इतना ही नहीं अभी नवयुवक है ।

वह राजा भरत एक दिन प्रातः काल त्रेवृज्जादि नित्य क्रियामें निवृत्त होकर दग्धारमें आकर विराजे है ।

नवर्त्तोसे निर्मित उम आस्थानभवनमें वह भरत रत्न निर्मित पुष्पक विमानमें विराजमान त्रैलोक्य समान शोभ रहे थे ।

मानस सरोवरमें कमलके ऊपर जिन प्रकार गजहंस शोभता है, उसी प्रकार शरीर कानिमें परिपूर्ण उम गजमभारूपी मनेवर में रत्नसिंहासनरूपी कमलके ऊपर वह राजहंस भरत शोभ रहा था ।

क्या यह चक्रवर्ती है ? उदयगिरिके ऊपर प्रकाश होनेवाले सूर्यके लिये सामना करनेकेलिये कोई प्रति सूर्य तो नहीं है ?

उमका शरीर कितना सुगंध है ? किरीट कितना तेज है ? क्या ही मजेका तिलक उसके मस्तकपर दिग्ग रहा है ?

कैसे वीर त्रिष्टिमें वह देग्य रहा है । दूसरे लोग आठ दस दफे बोले तो वह एक दफे उत्तर देवे । यहातर कि लोगोंको उसकी बात सुननेको प्रतीक्षा करनी पडती थी । यह उसकी गंभीरता है ।

ठीक बात है, गंभीरता सर्व गुणोंमें श्रेष्ठगुण है । राजा हो, राजयोगी हो उसे गाम्भीर्यगुणकी आवश्यकता है । गंभीरता नष्ट होजाय तो फिर क्या है ?

वह चक्रवर्ती भरत कंठमें रत्न व मोतीका हार धारण किया हुआ था जिन हारोंके बीचमें उसका सुन्दर मुख कमल दिनमें भी नक्षत्रोंके बीचमें चंद्रके समान शोभ रहा था ।

इस प्रकार वह अनेक प्रकारसे शोभाको प्राप्त हो रहा था कोई इसे कविके कल्पनाचातुर्य ऐसा कहकर न छोड़ देवे। क्योंकि वह आदिनाथ स्वामीका बेटा है। कर्मोंका शत्रु, चरम शरीरी है। उसके लिए यह सब बातें असंभव है क्या? हम सरीखे सामान्य देहवालोंको यह आश्चर्यकी बात होगी। वज्रमय शरीर वाले उस चक्रवर्तीके लिए आश्चर्य है क्या? वह तो कल करोड़ सूर्योंके समान प्रकाशवाले परमौदारिक दिव्य शरीरको धारण करनेवाला है। उसके रूपको कोई चिन्ह इत्यादिके बलसे चित्रण नहीं कर सकते हैं। आंखोंको, मनको जो रूप गोचर नहीं हो सकता है वह वचनके लिए कैसा गोचर हो सकता है?

लोकमें पुरुषोंके रूपको स्त्रिया स्त्रियोंके रूपको पुरुष मोहित होते हैं यह साहाजिक बात है। परंतु भरतके रूपसे स्त्री और पुरुष दोनों मुग्ध होते थे।

भरतको देखनेपर बड़ी बूढ़ी भी एक दफे चमक जाती है ऐसी अवस्थामें जवान स्त्रियोंकी दशा क्या हुई यह अब मुंह खोलके कहनेकी जरूरत है क्या? भरतके सुंदर शरीर, उसके योग्य वय, अतुलसंपत्ति, अगाध गाम्भीर्य एवं अनुपम पराक्रम अन्यत्र अनुपलभ्य है।

आहा! इतनी सब बातोंको प्राप्त करनेके लिए उसने पूर्व भवमें ऐसे कौनसे पुण्य कार्य किये होंगे। अथवा कितने भक्तिसे भगवान्की स्तुति की होगी। नहीं तो ऐसे वैभव उन्को कैसे प्राप्त हो सका है?

विशेष क्या? पूर्वभवमें उसने आत्मा और शरीरमें भेद विज्ञानकर आत्मकलाको अच्छी तरह साधली थी एवं आत्मध्यानका अभ्यास किया था। उन्की फलमे यह सब कुछ प्राप्त हुए हैं। लोकमें यह सबको मिलमिलता है क्या?

उने देखनेवालोंको आम्बोमे धक्कावट नहीं आसकती है । प्रशंसा करनेवालोंको आलस्य नहीं आसकता । देखकर, स्तुतिकर वृत्ति होती नहीं थी ।

सब लोग विचार कर रहे थे यह रूप संपत्ति बल इत्यादि और किन्नीको मिल नहीं सकते । मिले तो शोभ नहीं सकते ।

उसके दोनों ओरने ढाले जानेवाले चामरोके बीचमे वह स्फेद बादलके बीच चंद्र है या सूर्य इस प्रकार भासने लगा ।

एक तरफ आधीनस्थ राजा लोग, दूसरी तरफ नतकी, कवि, मंत्री इत्यादि बैठे हुए थे । सिद्धान्तके पीछे हितैषी अगरक्षक खड़े हुए थे ।

‘ हृष्ट मत करोजी । ‘ इधर सुनो ’ । बैठियेगा ’ इस प्रकारके शब्द उस राजसभामें सुननेमें आरहे थे ।

यह राजसभा है, इसमें किं ऐसा भी शब्द नहीं करना चाहिये, हंनना नहीं चाहिये, इधर उधर जाना नहीं चाहिये ऐसा भी कोई कहते थे ।

कुछ बुद्धिमान् लोग, ममयको जानकर, भरतके मनोगतको जानकर, एवं दूसरोंके अंदर और बाहरके विचारोंको समझकर कुछ कभी २ बोलते थे ।

मण्डलीक राजावांका समूह, राजकुमारोंका झुण्ड, मंत्रियोंके समूह, पण्डितोंके समूह, एवं गवैयोंके समूहसे वह दरबार खचा-खच भर रहा था ।

इसके अलावा भीख मागनेवाले, स्तुतिपाठक, वैद्य, ज्योतिषी महाबत लोग, सेनाके भट, बाहकगण, एवं सेवक लोग उस सभा में चंद्र तंत्र उपस्थित थे एवं भरतकी ओभा देख रहे थे ।

जिस प्रकार कमल सूर्यको देखता है । नीलकमल, चंद्रको देखता है, उसी प्रकार उस सभामें जितने लोग उपस्थित थे वे

भरतको देखनेमें लग्न होकर और बातोंको भूलगये ।

इस प्रकार उस समय सभी लोग उसकी ओर देख रहे थे उस समय उसने अपनी दृष्टि गवैयोंके तरफ फेंकी, उन लोगोंने भरतके अभिप्राय जानलिया और गाने लगे ।

रोमांचनसिद्ध, जुंजुमालप, गानामोदचंचु, श्रीमंत्र गांधार रागवर्तक आदि उसके प्रसिद्ध २ गवैयोंके नाम हैं ।

बहुत मुह न खोलकर अपने शरीरको इधर उधर न हिलाकर बहुत ही खूबीके साथ वे गाने लगे ।

गाते समय घबराये नहीं, बहुत ज्यादा हल्ला भी नहीं किया इस प्रकार १-२-३ गवैयोंने गाकर भरतका मन प्रसन्न किया ।

रागभंग न कर बहुत ही हुशियारीके साथ प्रातःकालके समयकेलिये योग्य रागमें आलाप किया । सुननेवालोंके हृदयमें ठण्डी हवा चलरही हो ऐसा मालूम हो रहा था ।

जिस प्रकार कमलके सामने जाकर भ्रमर गुंजता है उसी प्रकार ये गवैये भी भरत राजके मुखकमलके सामने जाकर गुंज रहे थे ।

जिसप्रकार चंद्रमाको देखकर समुद्र उमड़कर आता है उसी प्रकार भरतचन्द्रको देखकर इन गवैयोंके हृदय भी उमड़कर आता था ।

भरतके स्मरण करने मात्रसे जिनको विलकुल नहीं आता उन लोगोंको भी भरतशास्त्र आवे ऐसी हालतमें इन लोगोंको उसमें प्रवीणता मिले इसमें आश्चर्य क्या है ?

प्रातःकालके रागमें श्रीवीतरागके गुणोंको वर्णन करते हुए इस प्रकार गाये कि सुननेवालोंका पातक दूर होजाय ।

भूपाली राग, धन्वासि रागको लेकर उस भूपाली (राज-समुह) अधिपति चक्रवर्तीके सामने श्री आदिनाथ स्वामीकी

स्तुति करन हुए इस प्रकार गायें कि सबका पाप दूर होजाय ।

मलिन रहित मनम निमल, निष्कल, निम्न उस आदिनाथ भगवन्तकी स्तुति मलहर्षि रागक आश्रयमें इस प्रकारकी कि मुनन वालोंका कर्ममल दूर हो ।

देशाक्षि रागमें निनेद्रकी स्तुति करके उन लोगोंने देशाधिपति भगनको प्रमन्न किया । मंगल कौशिक नामक रागमें मंगलाष्टक गाकर बतलाया ।

इसी प्रकार गुण्डाकि, भगवि इत्यादि रागोंमें श्री जिनेश्वरकी स्तुति की ।

वीणाकी ध्वनि कानमें है ' गानवालोंकी ध्वनि कौनसी यह मालुम न करकर उसमें जिन और मिठोंके स्वरूपकी महिमा बतलाकर गाने लगे ।

किन्नरि लेकर जिन समय वे गा रहे थे मुननवाले लोग कहते थे कि अब किन्नर किंपुरषोंकी क्या जरूरत है ?

गन्तव्योंके गुणको इस प्रकार वीणावादन करके गा रहे थे कि मुननवाले कहे कि शास्त्रात्म ' बहुत अच्छा ' और पकड़के ।

कंठध्वनि, गायन जागृति, आलापक्रम ये सब कुछ उन लोगोंके अच्छे थे, उगमें निनेद्रका नाम और मिल गया, फिर कहना ही क्या ?

लोग कह रहे थे कि भ्रमरकी गंज क्या चीज है ? कोयलका स्वर रहने दो, तुंगुगनागोंकी अब क्या जरूरत है ?

पत्थर, पेड़, मर्ष, पशुसृग भी गानेको सुग्ध होते हैं फिर रमिक मनुष्य सुग्ध नहीं होंगे क्या ? उनके गानेमें भारी मसा अपनेको मृलगई ।

वासुकीको पशु, नागमरको मर्ष, कन्याध्वानिकलिये पेड़, गुण्डाकिने लिय पत्थर भी बस होता है ऐसी अवस्थामें मनुष्योंका सुग्ध होना आश्चर्य है क्या ?

भरतेश वैभव (४)

गायन विद्या एकातसे अच्छी भी नहीं बुरी भी नहीं है । यदि उस गानेमें पुण्यानुबंधिनी कथा ग्रथित हो, धर्माचरणके आदर्श-को रखता है जिसका उद्देश पवित्र हो वह गायन हित करनेवाला है । पुण्यबंधका कारण है । जिसमें नीच स्त्रियोंकी प्रीति शिकार, झगडा आदिका वर्णन हो वह गायन पापबंधका कारण है । वह हान्य है ।

समवशरणमें विमल किरणोंके बीचमें अमल मुनियोंके समूहमें कमलकणिकाको स्पर्श न कर जो भगवान् अर्हत् विराजमान हैं उनके गुणोंको वर्णन करते हुए बहुत भक्तिसँ गाने लगे ।

क्या ही आश्चर्यकी बात है ? कमलके ऊपर भी चार अंगुल छोड़कर निराधार आकाशमें लड़े रहनेका मामूली अर्हत् परमेश्वरी को छोड़कर और किसको है ? क्या उन्हें लड़े रहनेकेलिये धरा तलकी जरूरत है क्या ? फूलकी जरूरत है क्या ? जिन्होंने सारे संसारको लात मारा है उन्हें किस बातकी परवाह है ?

तालाबमें कमलका रहना, जंगलमें मिहका रहना लोकमें प्रसिद्ध है व वैसी पद्धति है । परंतु देवोंके बीचमें मिह, मिहके ऊपर कमलका रहना यह महाश्रृंगार है यह जिनेश्वरकी ही महिमा है ।

आकाशमें एक चंद्रको तो हम देखते हैं । परंतु तीन चंद्र एक जगह शोभित होवे यह तीन छत्रधारी जिनेंद्रकी ही महिमा है ।

आकाशमें देवगण जिस समय पुष्पवृष्टि कर रहे थे उस समय उन पुष्पोंके सुगंधको जो धूम्र आकर पटते हैं उनकी शोभा अवलोकनीय है ।

भगवान् के पाममें रहनेवाला अशोक वृक्ष कितना अच्छा

दिख रहा है। क्या नवरत्नमे निर्मित तो नहीं है ?

भगवानकी दिव्यध्वनि सचमुचमें दिव्य है। क्यों कि भगवान् दिव्य हैं। भगवानका सुख दिव्य है, दर्शन दिव्य है, ज्ञान दिव्य है, शक्ति दिव्य है, सिद्धि दिव्य है, ऐसी अवस्थामें उनकी ध्वनि दिव्य क्यों नहीं भला ? अपि तु अवश्य है।

भगवानके पीछे भागण्डल मेरुपर्वतके पीछे रहनेवाला इंद्र वज्रकी शोभाको उत्पन्न कर रहा है।

चारों ओरसे चरफ हो उसके बीचमें शोभित होनेवाले पहाड़के समान उन चारोंके बीच भगवान् शोभ रहे हैं।

सिंहासन आठि अष्ट महाप्रातिहार्योंके बीच विराजमान भव्योंके कर्मकी संहार करनेवाले भगवान् की उन्होंने अत्यंत भक्तिसे स्तुति की।

इस प्रकार जिनैहकी प्रशंसा कर उमके बाद सिद्ध परमेष्ठी व तदनंतर मुनियोंकी वंदना कर इस शरीरमें स्थित आत्मतत्त्व विचारको गानेमे इस प्रकार गाये कि भरत चक्रवर्ती आनंदित हो जाय।

आत्मा इस शरीरमे सबजगह भरा हुआ है यह बात कौन जानते हैं ? इस बातको विचार न करके बाहर ही ढूँढढूँढकरके नैनार दु ख को अनुभव कर रहे हैं ॥

चमकता हुआ दर्पण हाथमें होते हुए भी पानीमें अपने प्रतिबिंबको देखने वालेके समान अंदर अपने शरीरमें रहनेवाले आत्माको नहीं देखकर बाहर सबजगह घूम रहे हैं कितने दु ग्वकी बात है।

अपने घरमें रहनेवाले खजानेको न देखकर बाहर जाकर श्रीमंतोंमें भोजन मागनेवाला मूर्ख नहीं तो और कौन है। शरीरमें स्थित आत्माको मूलकर बाहरके पदार्थोंको देखनेवाला किम

प्रकार सुखी हो सकती है ?

ईश्वरके अंदरके मीठे रसको न जानकर बाहरके सूखे पत्तोंको खानेवाले पशुओंके समान भूर्खजन आत्मीय सुखमें अनभिज्ञ होनेके कारण शरीर सुखमें ही मुग्ध होते हैं ।

हां ! परंतु हमारे २ पत्तोंको भी छोड़कर हाथी ईश्वरके मिष्ट रसका आम्बाद लेता है उमी प्रकार कोई २ भेद विज्ञानी शरीर सुखको तुच्छ समझकर आत्मीय सुखको ही अनुभव करते हैं ।

अपने हाथमें रहा हुआ पदार्थको न देखकर सारे जंगलमें दूँढ़नेवालेके समान शरीरमें स्थित आत्माको न देखकर सारे लोकमें दूँढ़े तो वह मिलेगा क्या ?

म्यानमें रहनेवाला तलवारके समान, बादलके अंदर छिपा हुआ सूर्यके समान बाहरमें मलिन शरीरमें छिपा हुआ आत्मा अंदर प्रकाश हो रहा है ।

ज्ञान ही आत्माका शरीर है, ज्ञान ही रूप है, वह निर्मल ज्ञान दर्शन शुभ्ररूप है । यह ज्ञान दर्शन ही आत्माका चिन्ह है । जो इस प्रकार समझकर आत्माको देखते हैं वे धन्य हैं, वह आत्मा पुरुषाकार होकर इस शरीरमें रहता है फिर भी इस शरीरके रूपमें मिल नहीं गया है, आकाशके बीचमें पुरुषाकारके चित्रको खींचे जिस प्रकार यह आत्मा है ।

यह शरीर एक वाजेके समान है वाजेको जबतक कोई बजानेवाला बजाता नहीं तबतक वह वज्र नहीं सकता, इसी प्रकार इस शरीरमें जबतक आत्मा नहीं तबतक उसका कोई उपयोग नहीं । आत्मा और शरीर भिन्न २ हैं । परंतु बहुत खेदकी बात है कि इस बातको न समझकर आत्मा चलनेमें असमर्थ शरीरको भी चलाता है । चोलनेमें असमर्थ शरीरको बुलवाता है । फिर कही वह असमर्थ हो जाय तो दुःखी हो जाता है ।

जिम समय अग्नि लोहेम प्रयत्न करती है उस समय ठोहर उस हथौड़ेम ठोकता है परंतु वह लोहेम बाहर निकले तो कान ठोक सकता है प्रत्युत वही मक्खन जला सकता है इसी प्रकार जो आत्मा शरीरमे प्रविष्ट है उसे ही धारा होनी है शरीरका नोटनपर कानभी धारा है ? काई भी नहीं ।

वर्तमान देहको मरणके समय नोट देने तो आगे पुन हमारे शरीरकी प्राप्ति होनी है । इस शरीरको नोटकर आगे कोई शरीरको कारण न करनेकी अभ्यासों प्राप्त करना इसीको मुक्ति कहते हैं ।

अब यहापर कोई प्रश्न कर सकता है कि यह कहना तो मरल है होना कठिन है । हम प्राप्त शरीरको नोटकर आगेके शरीरको न लेनेका उपाय क्या है ? इसका उत्तर यह है कि बीजका अंकुरोत्पत्ति सामर्थ्य जबतक मूलम नाश नहीं किया जाता है तबतक वह अंकुरोत्पत्तिकी कार्य जरूर करेगा मूलमे उसको शक्तिको नष्ट करनेपर फिर उसमे वह कार्य नहीं दिखेगा । इसी प्रकार शरीरके उत्पत्तिकी जो कारण कर्म है उन कर्म-बीजको मूलमे नाश करना चाहिये । तब आगेका शरीर उत्पन्न नहीं होसकता है । कर्म बीजको अच्छी तरह जलावे तो शरीरकी उत्पत्ति होना असंभव है । परंतु कानभी अग्निमे ? सम्यग्ज्ञान अथवा विनेक रूपी अग्निमे यह कर्म जलाया जा सकता है । फिर उस देहकी उत्पत्ति असंभव है तब आत्मा मुक्ति स्थानको प्राप्तकर धनं सुखी बनता है ।

जिम वृक्षका जड़ ज्यादा पसरा हुआ रहता है वह स्वयं अपने नाशका कारण बनता है इसी प्रकार तजम कार्माण शरीर-का फैलाव ही आत्माके अहितका कारण है । इसलिये सबसे पहिले आत्मानुभवरूपी अग्निमे कार्माण तजम शरीरके फैलावको

जला देना चाहिये । तब चाहिरके आदिगिफानि शरीर मत्र स्वतः ही नष्ट होते हैं तभी मुक्ति होती है ।

इस प्रकार भगवान आदिनाथका संदेश है । आत्मा और शरीरको भिन्न करके देगनेकेलिये उपर्युक्त प्रकारके विचार अनूक्त उपाय हैं । भेदविज्ञानीको ही इस प्रकारके विचार प्राप्त हो सकने हैं, अन्य व्यक्ति को नहीं। इस प्रकार आत्मविनोदी भगवत् गानने उन गायकोंने गायन किया ।

एवंच इस गानेमें उन लोगोंने यह भी कहा कि चाहे राजा हो, चाहे योगी हो, अबदा गृहस्थ हो, यदि इस जिनतत्त्वको जानकर जिनभक्ति करेगा तो उसे मुक्ति अवश्य ही मिलेगी, इसमें कोई संदेह नहीं ।

इस प्रकारके गंभीर तत्त्वपूर्ण गानोंको सुनकर चक्रवर्तीको बड़ा ही आनंद हुआ, वह हर्षमें लसने लगा । एवंच सुनमें हर्ष-रेखायें प्रकट होने लगी । तब उन लोगोंको बुलाकर उनके हाथमें अनेक देवांगवस्त्रोंको पारितोषिकके रूपमें रग दिया ।

इतनेमें गायन समाप्त हुआ । गायकोंके गानकांशलमें बड़ा सभा आनंदित हुई । राजा भरत भी आनंदमें उस आस्थानमें विराजमान थे इतनेमें यह आस्थानवधि पूर्ण होनी है ।

इस प्रकार यह जिनकथाको जो कोई सुनने है उसका पाप नाश होना है, पुण्यकी वृद्धि होती है, तेज बढ़ता है । आगे जाकर वे कैलासपर्वतमें भगवान आदिनाथका दर्शन करेंगे ।

प्रेमसे इसे गावे, गावे, अबदा सुनकर प्रसन्न होंगे तो नियममें स्वर्गाय संपत्तिको अनुभव कर कल विदेह क्षेत्रमें श्रीमंदर स्वामीका दर्शन अवश्य करेंगे ।

हे परमात्मन ! तुम प्रत्येक मनुष्यके दृच्छित ध्येयकी सिद्धी करनेवाले हो, योगियोंके अधिनायक हो अर्थात् योगिगण महा

तुझारा ही चितवन किया करते है, अंतरंग बहिरंगसे मुंदर हो, सर्व श्रेष्ठ हो, ज्ञानमे एकाधिपत्यको प्राप्त कर चुके हो, अतएव मेरे अंतरंग में तुझारा निवास सदाकाल बना रहे यही मेरी इच्छा है ।

इति आस्थानमंधि ।

अथ कविवाक्य संधि ।

हे मित्र परमेश्विन् ! आप समस्त लोकके यथार्थ गुरु हैं । उत्कृष्ट केवलज्ञान ज्योतिको धारण करनेवाले हैं । विषयविषको नाश कर चुके हैं अतएव अपने संसारका ही नाश किया है ।

भव्यरूपी कमलोंको खिलानेके लिए आप सूर्यके समान हैं इसलिए आपमे मेरी मनमग्नप्रार्थना है कि मुझे आप सदा सुबुद्धी देवें ।

चक्रवर्ती भरतके आस्थानमें संगीतध्वनि अब सुनाई नहीं देती, अब भरतकी इच्छा साहित्य कलाको सुननेकी ओर झुकी है । इमीलिये उसने विद्वानोंके समूहके तरफ अपने दृष्टियोंको फेंकी है ।

भरतके आस्थानमें कवियोंकी क्या कमी ? फिर भी उनमे दिविजकलाधर नामके कविकी ओर भरतकी दृष्टिगई है । तब वह विद्वान् भरतके भावको समझकर बोलनेलगा ।

हे राजन् ! तुम श्री जिनैन्द्रपाद के सेवक हो राजाधिराजाबोमें अग्रगण्य हो, ह्रम (आत्म) कलासे आनंदित होनेवाले एवं सबको आनंदित करनेवाले हो इसलिये तुम्हारे लिये महाजय सिद्धि हो ।

प्रत्येक शब्दोंमें व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे दो पारिभाषिक अर्थ निकलते हैं ।

शत्रु राजावोंसे तुम्हारे लिये जयसिद्धि हो ऐसा कहाजाय तो वह जयसिद्धि शब्दका लौकिक अर्थ है । यदि संसारके प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकर्मको जीतलेवे तो यह उसका पारमा

थिंक अर्थ हें ।

हे राजन ! लौकिक जयसिद्धिको प्राप्त करनेवाले राजा लोकमे बहुतसे हैं। परंतु लौकिक जय व पारमार्थिक जयको प्राप्त करनेवाले राजावोमें दुर्लभ है। उसके लिये सुचिवेककी आवश्यकता है। मामूली बात नहीं।

राजाको भोग विचारकी आवश्यकता है। आत्मयोग विचारकी भी आवश्यकता है। राजा रागरसिक भी होना चाहिये, वीतराग रसिक भी होना चाहिये।

शृंगार विज्ञान भी होना चाहिये। आत्मसंघकी ओर भी झुकना चाहिये। संगर (युद्धस्थान) में भी उनकी नयारी चाहिये एवंच आत्मयोगागमें भी आगे होना चाहिये।

इहलोक संबंधी सुखको भी भोगें। परलोकमें सुख मिले उसके लिये अर्मकार्य में उत्साहित होवे। बहुतसी इच्छाबोभे फसा हुआ ऐसा लोगोको दिखना चाहिये। परंतु वह दृश्यमें निस्पृह रहे।

सुखका मूल संपत्ति है। संपत्तिका मूल धर्म है। इसलिये जिस धर्ममें संपत्तिकी प्राप्ति हुई है उस धर्मको उत्तम मनुष्य कभी नहीं भूलते हैं। भोगमें फंसकर कर्मी लोग धर्मकी उपेक्षा करते हैं।

दान देने योग्य स्थानमें दान देना चाहिए। परिस्थिती व धर्मको जानकर बातचीतकी भी जरूरत है। अयोग्य स्थानमें मौन की भी जरूरत है। गरीबके समान भी रहना चाहिए (भगवान या अपने गुरुओंके पास) राजाके समान भी रहना चाहिए (प्रजाओंके सामने) यह उत्तम कुलोत्पन्न क्षत्रियोंका लक्षण है।

प्रजावांके लिए राजा हितैषी रहे, शत्रु राजावांको मुजगेंद्र [सर्प] के समान रहे। अपने गुरुके पास सेवकके समान रहे।

धार्मिक लागोंका बंधु हांकर रहें।

परस्त्रीयोंके लिए डरपोक, युद्धकेलिए महावीर, परमत स्वीकार करनेका मोका आवे तो मूर्ख, जिनागममें प्रीति, आत्म-कलामे आनंदित होना हे राजन् ! यह राजधर्म ह ।

इंद्रियोंको अपने वशमें करके रखना चाहिये । आत्मयोगमें अविचल होना चाहिए, विग्रह क्या ? लोकके आजके राजा स्वर्गके कलके इंद्र कहलाना चाहिये । इंद्रियोंको वशमें करनेवालेके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं ।

इंद्रियोंको वशमें न कर इंद्रियोंके वशमें होनेवाले मछली, हाथी, पतंग, भ्रमर इत्यादि प्राणी जब एक ५ इंद्रियोंके वशीभूत होकर अपने प्राणोंको खोलते हैं तब पांचों इंद्रियोंके वशीभूत होनेवाले राजा विगडजाय इसमें आश्चर्य क्या ? इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

अविवेकी मनुष्यके पंच इंद्रिय पंचांगिके समान हैं । उन इंद्रियोंसे उसका स्वतः का नाश होता ह । विवेकीके पंच इंद्रिय पंच रत्नोंके समान हे । ज्ञानशून्य होकर विषयोंको भोगनेवाला भोगी भोगी नहीं, वह भवरोगी हे । विवेकमहित होकर भोगने-वाला भोगी योगी ह ।

कर्म अज्ञानीको स्पर्श करता ह । ज्ञानीको स्पर्श करनेका साहस कर्मको नहीं है । वह ज्ञान कहा है ? ज्ञानस्वरूप ही मैं हूं । शरीरके रूपमें मैं नहीं हूं इस प्रकारका विचार विवेकी मनुष्योंका मानसिक अनुभव ह ।

हे राजन् ! विज्ञान दो प्रकारका ह । एक बाह्य विज्ञान, दूसरा अंतरंग विज्ञान । बाह्य विषयोंको जाननेवाला बाह्य विज्ञान अपने आत्माको जानना इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं ।

दुनियामे रत्नपरीक्षा करनेके लिये प्रयत्न करना, हाथी घोड़े इत्यादिकी परीक्षा करनेको सीखना यह भी एक कला है परंतु यह बाह्य कला है। आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य रूपी तीन रत्नोंके स्वरूपमें है इस प्रकार उन रत्नोंको परीक्षा कर पहिचानना यह बड़ा कठिन है। इसीको अंतरंग विज्ञान कहते हैं। इसीसे कल्याण होता है।

काम शास्त्रका बोध, आयुर्वेद शास्त्र, मंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र, गणितशास्त्र, संगीत शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र यह सब बाह्य विज्ञान हैं। क्योंकि इन शास्त्रोंके ज्ञानसे मनुष्यको शरीरको पोषण करनेका उपाय ज्ञात होता है। परंतु आत्मा निर्मल स्वरूप है। उसमें और उसके गुणोंमें कोई भिन्नता नहीं है ऐसा समझकर उसीका विचार करना इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं। यही ग्राह्य है ऐसा जानो।

छंद शास्त्र, अलंकार शास्त्र और नाटकशास्त्र आदि बाह्य ज्ञानके साधक हैं। क्योंकि इनसे अल्प समयके लिये मनोरंजन होकर आत्मा अपनी असलियतको भूलजाता है। परंतु इन सब विकल्पोंको छोड़कर आत्मतत्त्वका ही विचार करना यह अंतरंग विज्ञान है।

वेद, पुराण, तर्क इत्यादि शास्त्रोंको जानना बाह्य कला है। आत्मा और शरीरको भेदकर असली स्वरूपका चिंतन करनेको सीखना इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं। इस प्रकार और भी जितने भर भी लोकमें कलायें हैं जो आत्मपोषणके सहकारी न होकर शरीर पोषणके सहकारी हो व भौतिक उन्नतिके साधक हो उन्हें बाह्य विज्ञान कहना चाहिये। जो ज्ञान आत्महितका साधक

हो जिसके मनन करनेसे आत्मा परिशुद्ध हो जाता हो, जिस कलासे लोकमें आत्मोन्नतिका आदर्श स्थापित होता हो उसे अंतरंगज्ञान कहते हैं ।

हे राजन् ! प्रत्येक व्यक्तिको पीछे अनेक भवोंमें बाह्यविज्ञान अनेकवार आकर गया है । परंतु अंतरंग विज्ञान की प्राप्ति एकवार भी नहीं हुई है । क्यों कि वह सामान्य ज्ञान नहीं है । यही कहा जाय तो अनुचित नहीं कि वह मुक्ति पदके लिये कारण है । अपने मनोरथको पूर्ण करता है । कल्पवृक्ष, कामधेनु व चिंतामणि रत्न भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं । लोकमें कोई वस्तु उसकी बराबर नहीं है ।

हे राजन् ! जिस राजाको वह अलौकिक विज्ञान प्राप्त होता है उसके विषयमें कहना ही क्या है ? वह आज इस भूमण्डल के राजा है ही कल, स्वर्गके राजा है । और परमों मुक्तिसाम्राज्यके राजा है ।

हे राजन् ! वह आत्मविज्ञानी संपत्तिसे मदनोन्मत्त न होगा मानियोंके आधीन न होगा, क्षुद्र हसीकी बातोंसे संतुष्ट न होगा गंभीरहीन बातें न करेगा, विशेष क्या ? वह मेरुपर्वतके समान अकंपित धैर्यवान् रहेगा । वह इंद्रिय सुखोंमें आसक्त न होगा । देवेंद्रकी संपत्ति भी उसके नजरमें तुच्छ रहेगी, इंद्रियोंके अनुभव में रहकर भी योगाद्रवृत्तिको वह विशेषकर पसंद करता रहेगा । संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवरूपी अमृतके आस्वादेमें वह अपनेको अत्यंत सुखी मानता है ।

बार बार आत्म चिंतन करनेसे उसके कर्म की बराबर

निर्जेरा होती जाती है। “ मैं किसी तरहसे इन दुष्ट कर्मोंको दूरकर अवश्य मुक्तिको प्राप्त करूंगा ” यह उसका दृढ निश्चय रहता है। सचमुचमें बात यह है कि जो व्यक्ति बार २ देह और आत्माको भिन्नता रूपमें अनुभव कर भोगता है उसे कर्मबंध नहीं, वह भोगी होते हुए भी योगी है।

राजन् ! जमीनमें गढ़ें हुए लोहेको कीट (मल) लगता है क्या सोनेको लगता है ? नहीं। इसी प्रकार अविवेकी भोगियोंको कर्मबंध होता है। विवेकियोंको कर्मबंध है क्या ? भोगियोंमें दो प्रकार के भोगी होते हैं। एक सकामभोगी दुःखरा निष्काम भोगी सकाम भोगी कर्मबंधनसे बद्ध होता है। निष्काम भोगीको कर्म-बंध नहीं होता है। जिस बीजको जलाकर बोते हैं तो वह अंकुरोत्पत्ति करनेको समर्थ हो सकता है क्या ? कभी नहीं। क्योंकि उसमें अंकुरोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट होजाती है। इसी प्रकार कर्मबंधरूपी अंकुरके लिये बीजरूप है ऐसे रागको यदि पहिले नष्ट किया जाय तो फिर उसकी उत्पत्ति कहाँसे होय ? निष्काम भोगी आत्म विज्ञानीको इंद्रिय विषयोंमें राग नहीं रहता है। अत एव कर्माकुरको उत्पन्न नहीं करता है। विकारमय संसारके बीचमें रहनेपर भी उन विकारोंका उसके ऊपर कोई असर नहीं होता है। नागलोक में रहने पर भी गरुडको सर्पोंकी बाधा होसकती है क्या ? नहीं। इसी प्रकार भोगोंके बीचमें रहे तो क्या ? आत्म विज्ञानीको उन भोगोंसे कर्म-बंध है क्या ? नहीं। यही दशा आपकी कही जा सकती है।

विष तो लोकमें सबको मारनेको समर्थ है। क्या जिसको गारुडी मंत्र सिद्ध है उसका विष कुछ बिगाड सकता है क्या ?

नहीं। इसी प्रकार इंद्रियोंका सुग्न दुनियामें सबको बिगाड देना है तो क्या आत्मविज्ञानीको बिगाड सकता है ? कभी नहीं।

हे राजन् ! यह तुम्हारी वृत्ति है। लोकमें और राजाधोमें यह बात नहीं पाई जायगी। तुम्हारी वृत्ति, तुम्हारी बात, तुममें देखकर हे पट्गंडके अरुंडम्बामी, तुममें ही यह सब मैंने निवेदन किया है।

लोकमें बहुधा गंभी पद्धति देयी जाती है कि जो राजाको पसंद हो वही दूसरे लोग कह देते हैं। उसी प्रकार तुमको प्रमत्त करने की दृष्टिसे मैंने यह कहा नहीं है। हे भरतेश ! तुम्हाग यह तत्त्व निश्चयमें मोक्षमार्ग है।

राजन् ! लोकमें ऐसे बहुतसे योगी होंगे जो बाह्यके सभी परिग्रहोंको छोड़कर अंतरंग निर्मल आत्माको देखते हैं। परन्तु बाहरके अतुल ऐश्वर्य रखते हुए भी अंतरंग में न कुछके समान निर्मोही होकर आत्मानुभव करनेवाले तुम मरीखे कितने है ? अर्थात् विरले हैं।

लोकमें संपत्ति, शरीर सौंदर्य, यौवनावस्था अधिकार यह सब प्रायः मनुष्यको अभिमानके पर्वतपर चढ़ाकर अवनतिके सड्डेपर ढकेलनेके लिये साधक है परंतु हे भरतेश ! तुम्हारे लिये इन बातोंमें किस बातकी कमी है ? परंतु तुम अविबेकी नहीं इन सब बातोंमें पूर्णता होनेपर भी तुम्हारी दृष्टि सिद्ध स्थानमें लगी हुई है। तुम मरीखे तटरबिलासी लोकमें कोई है ? अर्थात् ऐसा होना दुर्लभ है।

अमुक मेरे शत्रुको मैं कैसे जीतूँ ? अमुक शत्रुको जीतनेका क्या उपाय है ? ऐसा विचार करनेवाले लोकमें अगणित हैं परंतु

यमको जीतनेका उपाय क्या है ऐसा विचार करनेवाले तुम सरीखे कितने हैं ?

जिस प्रकार एक नर्तकी अपने मस्तकपर एक घड़ेको धारण कर नर्तन कर रही है। वह नर्तन करते समय गायन, ताल, लय मृदंग इत्यादिको भंग नहीं होने देती है, इतना सब संभालते हुए उसकी मुख्य दृष्टि यह रहती है कि मस्तकका घड़ा नीचे नहीं पड़े इसी प्रकार हे राजन् ! समस्त राज्य वैभवको संभालते हुए भी तुम्हारी मुख्य दृष्टि मुक्तिमें है। वैसे जिस समय आकाशमें पतंग उड़ाते हैं उस समय पतंग के डोरेको अपने हाथमें रखते हैं। यदि उस डोरेको हाथमें न रखें तो पतंग किधर उड़ जायगा यह पता नहीं। इसी प्रकार हे राजन् ! तुमने अपने बुद्धी को सीधा मुक्तिमें लगाई है। आत्मा अपने चंचल परिणतिसे इधर उधर विचार न करे, अतएव तुमने उस डोरेको सम्हालकर मुक्तिमें लगाया है। घटिका यंत्रको देखनेके लिये जो व्यक्ति बैठा हुआ है वह निद्रा आनेपर दूसरोंसे कथा कहनेके लिये कहकर हूँकार करते हुए भी उस घटिका यंत्रसे उसकी दृष्टि जिस प्रकार नहीं हटती उसी प्रकार आत्मविज्ञानी संसारके अनेक विकलताओंके बीचमें भी अपने आत्माको नहीं भूलता है।

भावार्थ—पूर्वमें समय जाननेके लिये घरेलू ऐसे यंत्र हुआ करते थे कि बिना घड़ियालके काम चलता था। लभ वगैरहके समय ठीक मुहूर्त से कार्य संपन्न करनेके लिये एक प्रमाणसे निश्चित कटोरी जिसके तलेमें एक अत्यंत सूक्ष्म छिद्र कर पानीमें डालते थे। उस छिद्रसे पानी अंदर जाकर जिस समय वह कटोरी डूबती थी तब एक घटिका हुई। फिर दुबारा उसे खालीकर उस पानीमें छोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार घटिकाका निर्णय कर-

लेते हैं। आजकल भी कहीं कहीं इस प्रकारकी प्रथा है। परंतु आजकलकी घटियालमें समय जाननेके लिये घटियालके पास किसी आत्मीको बिठालना नहीं पड़ता है। नेशी साधनके पास किसी आत्मीको बिठालना पड़ता है क्योंकि वहाँ कोई न बैठे तो हठोरी प्रकार कितना समय हुआ यह जाननेका कोई साधन नहीं। इस लिये उसके पास जो बंठा हुआ आत्मी बहुत देर होजाता है जब समय बितानेके लिये दूसरे किसीमें कोई कहानी कहनेको कहता है। कहानी कहनेवाला भी सुननेवालेको नींद नहीं आवे इसके लिये हंकार देनेको कहता है। वह आदमी हठार तो होता है परंतु उसकी दृष्टि उस पानीके कटोरी की तरफ ही रहती है। नहीं तो उसका उद्देश्यमें वह व्युत होजाता है। इसी प्रकार आत्म विज्ञानी व्यावहारिक सर्व कार्योंमें रहते हुए भी अरुण लक्ष्यमें व्युत नहीं होता है। अपने आत्मामें स्थिर रहता है।

लोकमें ऐसे बहुत होंगे जो स्वियोंके सौन्दर्यको वर्णन करनेपर बहुत मिलनस्फीमें उसे सुनते हों, उस स्त्रीका मुख चंद्रमाके समान है, उसका मुख अमृतके कुंभके समान है। वह मन्त्रोन्मत्त हथिनीके समान है। उसकी जंघा केलेके वृक्षके समान हैं। उनकी कटि अत्यंत पतली है। इत्यादि शृंगारके वर्णन को लोग उत्साहसे सुनते हैं। आत्मवृत्तिके तत्त्व सुननेवाले हे राजन्! तुम मरीसे कितने होंगे भले ?

इस गद्दीको चढ़कर रही कथा चोर कथा जार कथा, स्त्री कथा, रण कथा, लेश्या कथाओंको सुनकर नरक जानेवाले बहुत से राजा हैं। परंतु इस गद्दीको चढ़कर सत्कथाओंको सुनकर शूद्रोंको एवं मुक्ति को प्राप्त करनेवाले तुम सरीसे कितने हैं। अर्थात् दूसरे नहीं है।

मंदिर में रहने वाले देवको न देखकर गार्दी मंदिरों में रहने वाले मूर्तों के समान अंदरूनी आत्माको न देखकर शरीरों में रहने वाले ममतापर अपनी प्रशंसा करनेवाले पात हैं ।

राजन् ! तुम ईद्रमें नमान हो । चंद्रो नमान हो मंदी प्रशंसा करनेपर राजा लोग घटे प्रसन्न होते हैं । परन्तु चन्द्रो मरतको मंदी पातेसे दुर्घट नहीं । उनका विचार है कि ईद्रादिक घटे २ भवस्थितियों में नष्ट होनेवाले हैं । फलतः जिन्हें देवकी संपत्ति ही प्रतिनिधित्व है । मंदी-पाठक लोग राजाओंको कहते हैं कि तुम्हारी प्रतिमा नष्ट हो गई है तुम्हारी मूर्ति अन्यत्र चोरी हुई है । नष्ट गया तो प्रसन्न हो । परन्तु राजा नष्ट होता है कि तुम्हें निश्चयनयमे इस आत्माको जोई मूर्ति की मूर्ति । फिर इन चोरील मूर्ति आदि नष्ट हो जाती है ।

चौड़े दोई राजाको पाते हैं कि तुम पत्थरकी मूर्ति हो । कामधेनुके समान हो । चित्तमणि रत्नके समान हो । ! ! ! मंदी प्रशंसा करनेपर राजा लोग दुर्घटने फलने हैं उन मंदी मूर्ति पूर्व में कहते हैं । परन्तु राजा भवन विचार करते हैं कि राजा तुम्हें तो एकद्विषय धृष्ट है । क्या उनके समान मैं हूँ ? । कामधेनु तो एक मात्र है । क्या मैं उसके समान पाऊँ ? हा ! हा ! हा ! चित्तमणि रत्न तो एक पत्थर । क्या मैं भी पत्थर हूँ ? नहीं ! नहीं ! मैं तो चित्तमणि हूँ ।

आत्मा अनुपम है । समारंभे इसकी तुलना करनेवाला कोई दृग्गोचर पदार्थ नहीं है । ज्ञानको सूर्यकी उपमा देना ठीक नहीं । दर्पणकी उपमा देना भी ठीक नहीं है । मूर्ति-अपभारका नाश होता है । परन्तु अज्ञानका नाश नहीं होगा । दर्पणमें प्रतिबिम्ब पटना है वही ज्ञानमें प्रतिबिम्ब नष्ट पटना । ज्ञान और

आत्माका इसीलिए अनुपम स्वरूप है ।

हे राजन् ! तुम नृत्य कलाको देखते हो । संगीतको सुनते हो, साहित्यके आनन्दको भी लूटते हो । परन्तु सबमें आत्मकला को बड़ी उत्सुकतासे ढूँढते हो । यही एक विचित्रता सबसे तुममें है ।

अंतरंगमें तुम्हारे हृदयमें भोग विलासके प्रति आसक्ति नहीं फिर भी लोग तुम्हें षट्स्रण्ड वैभवके भोगी समझते हैं । बहिरंगमें तुम योगी होकर कोई आत्मध्यान नहीं करते हो फिर भी तुम अंतरंगमें आत्मानुभव करते हो इसीलिए योगी हो । भोगमें रहकर योग साधन कर मुक्तिको प्राप्त करने वाले तुम सरीखे कितने हैं ? ।

विषम विषों को खाकर उसके प्रभावको न कुछने समान करनेके लिये तुम सर्वथा सनर्थ हो । विषम वित्तको आत्मामें तुमने लगाया है । अतएव हे राजन् । तुम राजर्षि हो ।

हे राजन् ! तुमको जो देखते हैं उनका पापनाश होता है । तुम्हारे नाम लेने वालोंको पुण्य वध होता है । मैंने चापलूसी नहीं की है । आखे देखी बातको कही है ।

भरत महाराजकी महिमा अपार है, उनके गुण गाये नहीं जा सकते । कवियोंने उनकी यह तारीफ की है कि ऐसी कोई कला या शास्त्र नहीं है जिसका निर्णय भरत न कर सकें । इसी प्रकार उनके गरीरको " आयुर्वेदो नु मूर्तिमान् " ऐसा कहा है । उनका पुण्य भी अर्चित्य था उनका यह सारा अनुभव इसी जन्मका अनुभव अथवा विज्ञान नहीं था अनेक भवोंसे उसका संचय किया था । तब इस भवमें वे लोकोत्तर पुरुष हुए ।

हे राजन् ! तुम प्रतिममय उचित रूपमें जिन व सिद्धबंदना करनेको भूलते नहीं । इसलिये आत्मयोग तुम्हें दिव्यता है । अतुल भोगको तुम भोगते हो परंतु वह शील संगत है । इसलिये तुम्हारी स्तुति करें इसमें अनुचित भी क्या है ।

जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करता है उसी प्रकार मत्पात्र दानी, तत्त्व विज्ञानी, व आत्मानुभवीको संज्जन लोग आश्रय करते हैं इनमें कोई अनुचित बात नहीं ।

हे राजन् ! देव गुरु धर्मके तुम जीर्णोद्धार करनेवाले हो । जिनयज्ञ संबंधी कथाको सुननेवाले हो । जिनमंथकी पूजामें तुम्हें अनुपम भक्ति है । प्रजायोंको तुम अपनी भंतानके समान रक्षा करते हो । फिर ऐसा कौन विप्रेकी गनुष्य इस भंमारमें होगा जो तुम्हारा वर्णन नहीं करेगा ?

(यहा कवि मचमुचमें राजा भरतकी अतिशयोक्तिमें स्तुति करता हो वह बात नहीं । भग्नमें ऐसे २ अद्भुत गुण थे जिनका वर्णन करना माननीय शक्तिके बाहर था । यहातक कि यह भरत तीर्थकरोंके गुणमें भी प्रशंसनीय था । अनेक राज वैभवोंको भोगते हुए भी योगी रुढ़लानेका अधिकार, गार्हस्थ्य जीवनमें ही आत्मानुभव करनेका अद्भुत सामर्थ्य क्या किसीको सहज प्राप्त हो सकता है । उसकेलिये जन्मातर्ममें कठिन तपश्चर्या करनी पड़ती है । जिस भरतको स्वर्गमें देवेंद्र भी प्रशंसा करता है फिर भी उसका गुणवर्णन पूर्ण नहीं होता है उसके विषयमें अन्यलोग स्तुति करें तो भी अतिशयोक्ति क्या है ? कवि नृप न होकर भी वर्णन करता है)

हे राजन ! आप काल कालके लिये उचित जिनभक्ति सिद्ध-भक्ति आदि कार्योंमें प्रमाद नहीं करते हैं, इन सबको करते हुए

आत्माको देखनेम भी आप भूल नहीं करत, शीलम अमंगत भोगमें आपको घृणा है। भोगमें भी आप शीलमें च्युत नहीं होने, फिर तुम सरीखे राजाओंको फान स्तुति नहीं करेगें ?

यह स्वाभाविक बात है कि लोकमें मत्पात्र दानी, तत्त्वविजानी व आत्मानुभवी पुरुषको जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करते हैं मज्जन लोग आश्रय करते हैं इसमें आश्चर्य क्या है ?

हे राजन् ! जीर्णोद्धार कराना, जिन पूजा करना, पुण्यानुबंधिनी कथाओंको सुनना, जिन मंघ सेवा करना आदि शुभकार्य तुल्यारी मुख्य दिनचर्या है। इन सब बातोंको करते हुए प्रजाओंको पुत्रवत्पालन करने में आप कभी असावधान नहीं करते हैं। फिर आपकी स्तुति कौन न करेंगे भला ?

जिन भक्ति, सिद्धभक्ति, गुरुभक्ति व शास्त्र सेवा आदि तुल्यारे स्वाभाविक कार्य हैं। इस प्रकारके स्वभावको देखकर पिता को देखनेपर पुत्र जिस प्रकार प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार प्रजासब संतुष्ट होती हैं।

जो व्यक्ति जिनस्वरूप व सिद्धस्वरूपको अच्छी तरह विचार न कर ध्यान करता है उसको उसका कोई उपयोग नहीं, परंतु जो जिन सिद्ध रूपको अपने मनमें लीनकर ध्यान करता हो उसे राजा प्रीति करता है, सौवश्य, राजवश्य, जनवश्यके लिये इससे अधिक और कौनसा मंत्र है ?

अंतरंगमें जिस समय आत्माके रूपको जो देखता है वहा साक्षात् अरहंतके रूपको धारण करता है, उस अवस्था में उस व्यक्तिको व्यंतरवश्य, विद्यावश्य आदि करना कोई कठिन है क्या ? ये तो जाने दो, उसे मुक्तिकाता भी सहजमें वश हो जाती है।

हे राजन् ! शरीर ही जिनेन्द्रमंदिर है मन ही सिंहासन है । निर्मल आत्मा यही जिनेन्द्रभगवत है । इस प्रकार बाहरके अन्य विकल्पोंको छोड़कर आंखमीचकर देखें तो सचमुचमें जिनदेव अंदर दिखते हैं ।

जिस प्रकार कोई बातको भूलकर फिर सावधान होकर उसकी ओर उपयोग लगानेमें जिस प्रकार उस पदार्थपर चित्त स्थिर होता है उसी प्रकार खोये हुए पदार्थको ढूंढनेके समान एकाग्रतासे ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है इस प्रकारकी चिंता शरीर के अंदर फिरे तब यह आत्मा दिखता है ।

जिस प्रकार कोई विद्यार्थी अभ्यास किया हुआ पाठको भूल गया हो तो अध्यापकके पूछने पर मनमें ही उसे बहुत दत्तचित्त होकर विचार करता हो उसी प्रकार ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है ऐसा समझकर एकाग्रतासे शरीरके अंदर चित्त लगावे तब आत्मा दिखाता है ।

जिस प्रकार सुंदर छायामूर्तिका रूप हैं उसी प्रकार आत्माका भी रूप है इस प्रकार स्मरण करते हुए आंख मीचकर आत्माको देखें तो अवश्य दिखता है । प्राभृतशास्त्रोंको अच्छी तरह अध्ययन व मनन कर, शरीरस्थ वायुवोंको भृत्योंके समान वशमें कर, जिस समय चित्तमें त्रिलोकीनाथ भगवानका स्मरण करते हैं उस समय आत्मा प्रत्यक्ष होता है ।

सूर्य चंद्रो (नासिका रंध्र को बंद करके प्राण व अपानवायु को जिस समय ब्रह्मरंध्र को चढ़ाते हैं उस समय शरीरके अंदर के अंधकार नष्ट होकर होकर प्रकाशस्वरूप आत्मा दिखता है ।

कोई २ वायुवोंको वश करके आत्माको देखते हैं । कोई २ वायुवोंको वश न करके ही देखते हैं । कोई शरीरको ही आत्मा समझते हैं । गेद है

हो इस बातको दम मंत्र स्वीकार करते हैं ।

हे राजन ! आप अध्यात्मदूर्य हो । आपके सामने हम लोग अध्यात्म रसका जो वर्णन करते हैं वह नचगुनमें दूर्यको दीपक दिग्याना है ।

चंदन के वृक्षोंके आसपासमें रहनेवाले अन्य वृक्ष भी उसके संगर्भसे थोड़ा सुगंधित होजाते हैं, उसी प्रकार हे राजन ! तुम्हारी संगर्भसे आत्माविशुद्धिरे मार्गको हम भी अल्प स्वन्य समझ लेंगे इसमें आश्चर्य क्या है ?

आज उम्मी आपसे सिरा हुआ अनुभवको आपकी सेवामें उपस्थित करने पर आपको संतोष हुआ । आपके भक्तोंको भी हर्ष हुआ । आज मैंने ' यथा राजा तथा प्रजा ' या स्वामी जैसे होता है वैसे ही उसके परिवार होते हैं ' इन वाक्योंका ठीक २ अर्थको साक्षात्कार किया।

इस प्रकार विविजरत्नाकर पवित्री रचनाको राजा भरतने बहुत अनुपत्ताके साथ सुना और इतना ही नहीं वह सब विषय उसके हृदयमें जाकर लगे । क्योंकि अध्यात्मविषयको सुननेके लिए उसकी चट्टी इन्छा रहती है ।

राजा भरत मन मनमें ही विचार कर प्रफुल्लित होता है कि इस कविने मेरे अंतरंगको पहिले क्यों आगो देगा तो जैसे कहा है । कितनी बुद्धिमत्ता है ? इस कविको आत्मध्यान जरूर प्राप्त हुआ है । यदि नहीं तो इस प्रकार उग विषयका वचन चातुर्थ कैसे आसकता है, लोकमें वचन ही मनके भावोंको झलका देता है इस प्रकार वह चमत्कारी अपने मनमें ही विचार करने लगा ।

लोकमें भूमिमें जलमें चाहे जिधर चलना सरल है परंतु बिना आधारके कोई आकाशमें चल सकता है क्या ? नहीं, इसी प्रकार चाण लोग मंत्र लोकका वर्णन कर सकते हैं । परंतु अध्या-

न्म विषयको वर्णन करना उन लोगोंके लिये कर्मा अर्थ नहीं होमकता ।

शब्द समुद्रको प्रवेश करके एक शब्दको भेकटो अर्थ करने वाले विद्वान लोग नैयाय होमकते हैं, परन्तु शब्दगर्हित आत्मयोगको वर्णन करना यह सामान्य ज्ञान नहीं ।

नरुणात्ममें गति प्राप्त कर परस्पर विवाद करनेवाले विद्वान नैयाय होमकते हैं । परन्तु अर्थ (मर्थ) के समान रहनेवाले आत्माको जानकर वचनमें कहना यह बहुत कठिन है ।

आगम, फाट्य व नाटकके वर्णनमें लोगोंको प्रसन्न करके उन्हें मुला मकने हैं । परन्तु आत्मयोगका वर्णन कौन कर सकता है ?

मित्रियोंकी बेणी, युग व कुचोंको वर्णन कर लोगोंको खुश करना सहज बात है । परन्तु वचनागोचर परंज्योति आत्माको ज्ञानोम वर्णन करना क्या सहज बात है ?

युद्धका वर्णन करके मुनेवालेके हृदयमें जोश भर सकते हैं । आत्माका वर्णन करके दृमरोंके हृदयमें परमान्माकी चिन्ता उत्पन्न करना यह अन्यत कठिन है ।

ना अति आमन्नमन्त्र हैं उन्ही लोगोंको अभ्यान्म विचार प्राप्त होना है । हर एकको नहीं, आन्मन्यानको करनेवाले ही आन्मज्ञानकी बात कहते हैं । दृमरोंको यह कला नहीं आमकनी । जिस प्रकार प्रत्यक्ष किसी विषयका देखनेवाला व्यक्ति उसका स्पष्ट वर्णन करता है उसी प्रकार आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाला व्यक्ति उसका वर्णन करता है । आत्माको प्रत्यक्षकर फिर वर्णन करनेपर भी अभन्त्र उसको नहीं मानते हैं । भन्त्रोत्तमोंके लिये यह अमृत है ।

यह कवि जरूर आमन्न भन्त्र है । मिदल्लोरुका पयिक

हे इस प्रकार चक्रवर्ति मनमें ही विचार कर रहा था। फिर अपने मुखसे स्पष्ट कहा कि हे दिविजकलाधर ! तुम सचमुचमें मुकवि हो इधर आवो ! इस प्रकार उसे अपने पासमें बुलाकर उसे अपने हाथसे पारितोषिक दिये। सुवर्णकंकण, कण्ठमाला, कुण्डल आदि सेरुडो आभूषण व वस्त्र उसे देविया इतना ही नहीं बहुतसे ग्रामोंके जागीर देकर उसकी दारिद्र्यताको दूर किया। फिर चक्रवर्ति थोड़ा हस कर कहने लगा कि तुमने बहुत अच्छा कहा, जो तुमने अंदर देखा है वही बाहर कहा है। बहुत देरसे तुम थक गये होगे। इसलिये अब जरा बैठो इस प्रकार कहकर उसे उसके स्थानमें जानेको कहा।

तब वह दिविजकलाधर हर्षमें कहने लगा कि हे राजन् ! यह जैनागम है, यह कथन करनेके लिये क्या मरल है। मैं क्या चीज हूँ ? आपके आस्थान विद्वान् ही इस विषयको जान सकते हैं। यह सब आपकी ही कृपाका फल है, इसमें हमारा कुछ भी नहीं। आपके ही प्रसादसे प्राप्त अमूल्य रत्नोंको आपकी ही सेवा में मैंने अर्पण किये हैं। इसमें मैंने क्या बड़ी घात की ? इस प्रकार कहकर वहाँमें आनंदसे चला गया।

तब सभामें उपस्थित लोग भी विचार करने लगे कि चक्रवर्तिके अंतरंगको कोई पहिचानते नहीं, परंतु इस विद्वान् कविने उसे जानकर वर्णन किया है। सचमुचमें यह बहुत बुद्धिमान् व दूरदर्शी विद्वान् है इत्यादि प्रकारसे उस कविकी प्रशंसा करने लगे। कविके ज्ञानको राजा व राजाकी उदारता देखकर सर्व प्रजा जिस समय प्रसन्न हो रहे थे उसी समय भों भों करके शंखका शब्द सुननेमें आया। उसी समय सब लोगोंने विचार किया कि अब चक्रवर्तिके भोजनका समय हुआ है, ऐसा निश्चयकर सब लोग राजाको नमस्कार कर वहाँसे उठे, दण्डधारी लोग सभी लोगोंको यथोचित सम्मान सूचक शब्दोंके साथ वहाँमें भेज रहे थे।

दरबार बरगाम्न हुआ राजा भरत भी जिनशरण शब्दको उच्चार करके बहाम उठा निम्न समय चारों आरम्भ जयजयकार शब्द मुननमें आरहा था ।

राजा भरत जिम प्रकार प्रजावांका पालन करता है उमी प्रकार रत्नत्रय बर्म पालक सायुर्वोंकी सेवा करनेमें भी वत्तचित्त ह । प्रतिनित्य सायुर्वोंको आहार दिय बिना में भोजन नही करूंगा इस प्रकारकी उम कठिन प्रतिज्ञा ह । इसलिय दरबारमें जाकर मुनियोंको पटिगाहन (प्रतिग्रहण) करनेकेलिय तैयारी करनेलगा । बीच बीचमें उम दरबारकी बात याद आरही थी । कविने भेरे हृदयकी बात जानली थी इस बातको स्मरण करते २ मन मनमें गुश होरहा था । उमक नाद मुनियोंकी मार्ग प्रतीक्षा करनेक लिये तैयार हुआ ।

इति ऋचिवाक्य मन्त्रि

अथ मुनिशुक्तिसंधि ।

(भिद्व परमेष्ठीका स्वरूप अपार ह, लोकके भक्त्योंको अजरामूर पद देनेवाल, स्वभावभावस्थाको प्राप्त किए हुए, मोहनीय कर्म कां वश किए हुए प्रसिद्ध आत्मा भिद्व स्थानपर विराजमान हैं तेमे विशुद्धिआत्माने सब लोग प्रार्थना करे कि हमें सुबुद्धी दे) भरतचक्रवर्तीके हृदयकी बात जिनेंद्र भगवन्त ही जाने । मुनियोंकी चर्याका समय जानकर राजमहलके दरवाजेकी ओर वह चला

जिस समय वह दरबारमें आया उस समय उसने शरीरके समस्त राज जिन्होंको उतार लिया । दरवारी वस्त्राभूषणोंको उतार लिया तो भी क्या उमही सुंदरतामें कोई कमी हुई ? नही शरीर शृंगारस युक्त होकर वह द्वार प्रतीक्षाके लिये चला छत्र, चामर, रत्न, पादरक्षा आदि राज जिन्होंकी अब उसे जरूरत, नही रही थी, कबल अब वह पात्र दानकी अपेक्षा करनेवाला एक सामान्य श्रानकके समान हे ।

पात्रदानकी प्रतीक्षाके लिये जाते समय उसके बाँधे हाथमें अक्षत पुष्प आदि भंगल द्रव्य व दाहिने हाथमें जलका कलश था। लोगोंको उनकी सख्त आज्ञा थी कि मेरे साथ नहीं आवे और न कोई मुझे मार्गमें नमस्कार करे। कोई निधिकी अपेक्षा रखनेवाला व्यक्ति जिस प्रकार उक्त निधिकी पूजाकर फिर उसे लानेके लिये जारहा हो उसी प्रकार भरतचक्रवर्ती भी तपोनिधियोंको लानेके लिये जारहा है। राजाके सामने सेवकको गुरुके सामने राजाको किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये यह वह राजनीतिज्ञ भरत अच्छीतरह जानता था।

दान पूजा करना यह गृहस्थका स्वकर्तव्य है। यह परहस्त से होना उचित नहीं ऐसा समझकर वह स्वतः ही उस कार्यको करनेके लिये जारहे थे।

वह जिस समय आगे जारहे थे उस समय साथके लोगोंको तो पीछे रोक दिया फिर भी भरत महाराजके शरीरसुगंधसे मुग्ध हुए भ्रमर उनके पीछे २ झुण्डके झुण्ड आने लगे। भरतने उनकी भी बहुत कहा कि मेरे साथ तुम लोगोंकी भी जरूरत नहीं। परंतु वे भ्रमर फिर भी रुक नहीं। हां 'ठीक बात है। मनुष्योंको कान है। उन लोगोंने मेरी आज्ञा सुन ली, परंतु इन भ्रमरोंको कान नहीं। चतुर्गिद्रिय प्राणी है। इसीलिये इनको रोकनेसे कुछ मतलब नहीं ऐसा समझकर चुपचापके चला। आखरको किसी प्रकार उस रास्तेको तय कर राजमहलके बाहरके बरान्डे में आकर भरत महाराज खड़े हो गये।

हाथके पूजा सामग्री व जलकलशको नीचे रख दिया है। साधुओंकी प्रतीक्षा बहुत उत्सुकताके साथ कर रहे हैं।

उम समय उनकी शोभा अपार थी। शायद उस अयोध्या

नगरकी शोभा देखनेके लिये स्वयं देवेन्द्र ही नहीं आकर नहीं सड़ा हुआ हो ।

भरत बड़ी चिन्तामें पड़े हुए हैं । उन्हें मनमें यह चिन्ता लग रही है कि मैं इस ससार समुद्रको पारकर मुक्ति कब जाऊंगा ।

उस राज महलके इधर उधरसे तीन बड़े २ राजमार्ग तीन दिशामें गये हुए थे । भरत महाराज उन तीनों मार्गोंके तरफ देख २ कर शांत भावसे मुनियोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

जिस प्रकार कुमुदिनी चंद्रमाकी प्रतीक्षा करती है उसी प्रकार राजा भरत मुनियोंकी इच्छा कर रहे हैं ।

कभी चर्म दृष्टिसे मार्ग की ओर देख रहे हैं और कभी ज्ञान दृष्टिसे शरीरस्थित आत्माका निरीक्षण कर रहे हैं । अंदरसे आत्माको बाहरसे मुनियोंके मार्गको देखते समय उनके कार्यमें कोई प्रमाद नहीं हो रहा है ।

चारों ओरसे स्तब्धता फैली हुई है । महलसे लेकर बाहरतक कोई हल्ला गुल्ला नहीं है । क्योंकि सब कोई जानते थे कि यह भरतचक्रवर्तीके मुनिदान का समय है । फिर भी कुछ सेवक आस-पासमें छिपकर दान विधिको देखनेके लिये बैठे हैं । भरत उनको देख नहीं रहे हैं । शायद यह बात होगी कि वे अपनी चर्यासे यह बात बतला रहे हैं कि लोक सब मुझे देख रहा है तो भी उनसे मैं अलिप्त हूं । झमलिये ही वे एकाकी होकर खड़े हैं । उस समय भरत इस प्रकार मालुम होते थे जैसे कोई आत्मविज्ञानी पंचेन्द्रियोंसे युक्त होनेपर भी उनसे अलिप्त रहता है ।

उस समय उनके चित्तमें निर्मल योगियोंको दान देनेके सिवाय भोजन वगैरह करनेकी कोई चिन्ता नहीं ।

उस दिन उस नगरीमें चर्याके लिये बहुतसे योगिराज आये थे ।

परंतु रामने ही बहुतसे भावकोंने उनका प्रतिग्रहण कर लिया इसलिये भरतके महलकर कोई नहीं पहुँच सके । भरतचक्रवर्ती बड़ी चिंतामें मग्न हैं । कभी दाहिने ओर कभी बायें ओर देखते हैं परंतु किसी जिनरूपको न देखनेमें फिर चिंतामग्न होते हैं । बहुत दूर तक भी दृष्टि पसारकर देखें तो भी कोई नहीं दिख रहे हैं । तब उनको मनमें दुःख हो रहा है ।

क्या आज पर्वोत्सवानका दिन है ? आज कौनसी निधि है ? नहीं ! आज कोई पर्व दिन नहीं । फिर क्यों नहीं आये ? क्या कारण है कि मेरे महलकी ओर नवोनिधि आने नहीं । कोई वृष्ट हाथी घाड़े घेरकर उनको कष्ट दिया ? क्या कोई दुष्टोंने उनकी निद्रा की ?

मेरे राज्यमें किसीने मुनिनिद्रा की तो फिर मेरे राज्यकी इतिश्री होगई ? फिर मेरे अस्तित्वमें क्या प्रयोजन ? मुझे ऐसी हालतमें कोई पट्टपण्डके अधिपति कौन कहेगा ? नहीं ! नहीं ! हमारे राज्यमें मुनिनिद्रा करनेवाले मनुष्य नहीं हैं । फिर आज मुनियोंका आवागमन होता क्यों नहीं ?

छा ! आज मुनियोंकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है । मचभु-चमें एक दिन भी रिक्त न होकर मुनियोंको आहार दान देना बड़े सौभाग्यकी बात है ।

जिसप्रकार द्वीपमें जानैवालें जहाजमें अनेक सामान भरकर भेजा जाता है उसी प्रकार मुक्ति जाने वाले मुनियोंके हाथपर अन्नको रखकर भेजना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है ।

आत्मा और शरीरको भिन्न समझकर ध्यान करनेवाले योगीको अपने हाथमें आहार देनेका भाग्य हर एकको मिलता है क्या ?

रत्नत्रयोंके धारक परमधीनरागी तपस्वी जो कि आत्मामृतको

आत्माको अपण करते हैं एवं भव्यात्माके द्वारा दिये हुए अन्नको शरीरको देते हैं ऐसे योगियोको आहार देनेवाला गृहस्थ धन्य नहीं क्या ?

चिद्रुणान्नको आत्माकेलिये व पुद्रुलान्नको पुद्रुल शरीरके लिये देनेवाले सद्गुरुवोंको आहारदान दे तो इससे सद्गति होनेमें कोई संदेह है ?

ब्रम्हा नाम आत्माका है । उस ब्रम्हासे उत्पन्न अन्नको ब्रम्ह-णान्न कहने हैं । परपदार्थोंसे उत्पन्न अन्नको गूढान्न कहते हैं ।

सुक्षेत्रमें बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता है । उसका अंकु रोत्पादन होकर फल आदि अग्न्य उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार मोक्षगामीके हाथमें दिया हुआ आहार व्यर्थ नहीं जाता है । उसका इहलोकमें ही प्रत्यक्ष फल मिलते हैं ।

सीपमें पडा हुआ स्वाती नक्षत्रका वृन्द व्यर्थ जाता है क्या ? नहीं । वह उत्तम मोती बन जाता है । इसी प्रकार ऐसे सद्गुरु-वोंको दिया हुआ आहारदान व्यर्थ नहीं जाता है । उससे मुक्ति भी प्राप्त होजाती है ।

भोजन करनेको नहीं जाननेवाली मूर्तिको अर्चना द्रव्यसे पूजा करना यह उपचार भक्ति है । भोजन करनेवाले जिनरूपधारी गुरुवोंको आहार दान देना यह मुख्य भक्ति है ।

इस प्रकार भरतचक्रवर्ती अनेक विचारमें भग्न हो गये । परंतु अभीतक कोई मुनिराज नहीं आये । वे और भी चिंतामें पड़े ।

क्या कारण है आज मुनिराजाका आगमन नहीं हो रहा है ? इतनेमें एक आश्चर्यकारक घटना हुई । आकाशमें एक अद्भुत प्रकाश दिखनेलगा । इधर उधर देखनेको बंदकरके उस कातिकी ओर ही भरत महाराज देखने लगे । अभी वह काति दूरसे दिख

रही है। चक्रवर्तिकी उत्सुकता बढ़ने लगी।

यह क्या है ? दूसरे एक सूर्यके समान यह अद्भुत प्रकाश क्या है ? जिन ! जिना ! यह क्या है ?

इतनेमें वह प्रकाश एकके स्थानपर दो अलग २ होगये। भगवन् ! यह एक था अब दो होगये। पहिले सूर्यके समान दिख रहा था अब सूर्य व चंद्रमाके समान दिख रहा है। इतना विचार कर ही रहे थे कि वह दोनों प्रकाश पास पासमें आगये।

आहा ! यह चारण मुनियोंका शरीर है। और कुछ नहीं इस प्रकार उन्होंने निश्चय किया।

सूर्यके विमानमें रहनेवाली जिन प्रतिमावोंका दर्शन अपने महलसे करनेवाले चक्रवर्ती लिए इन मुनियोंको पहिचाननेके लिए इतनी देर न लगती। परन्तु उस दिन आकाश बादलसे घिरा हुआ था, इस लिए उसने अच्छीतरह विचारकर निर्णय किया।

चिंता दूर होगई। हर्षसे रोमाच होने लगा। आहा ! मेरा भाग्योदय हुआ ! ऐसा कहकर अर्चना द्रव्यको हाथमें लेकर नीचे उतरे।

इतनेमें वह चंद्रमण्डल व सूर्यमण्डल इस धरातलमें उतरे।

गरीब मनुष्य जिस प्रकार निधियोंको देखकर नाचता है इसी प्रकार भरतचक्रवर्ती उन मुनिनिधियोंको देखकर अत्यंत हर्ष चित्तसे उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

ओ मुनिमहाराज ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ! इस प्रकार बहुत भक्तिसे चक्रवर्तीने कहा। तब दोनों मुनिराज वहां खड़े होगये तब अपने हाथके गंध पुष्पाक्षत आदि सामग्रियोंसे दर्शनांजलि देकर तदनंतर भावशुद्धिसे जलधारा दी। तदनंतर अत्यंत भक्तिसे तीन प्रदक्षिणा देकर उनको साष्टांग नमस्कार किया। तब कुछ लोग इधर उधरमें आकर जयजयकार मचाने लगे। कहने

लगे कि चक्रवर्ती भरत यहा लड़े : ध्यान कर रहे थे । इस लिये उन ध्यानके बलमे ये दोनों मुनि आगये हैं ।

भरतचक्रवर्ती जिस निषिको लेजानेको आये थे वह निषि अब उनको मिलगई है । अब उस निषिको अपने महलमें बहुत दुगियारीमे लेजारहे हैं ।

जिस प्रकार कामदेव दारकर उन मुनियोंमे प्रार्थना कर अपने घर ले जाता हो इसी प्रकार वह नग्नोच्छा कामदेव उनको अपने महलमें लेजारहे है ।

जहा मुनियोंको भीदियोंमे उतरना पड़ता था तब चक्रवर्ती उनको अपने हाथका सहारा देना था और जिस समय उपर चढ़ने थे तब भी बहुत भक्तिमे हाथ लगाना फिर कहने लगता कि स्वाभिन ! आप लोग आकाशमें बिना सहारेके चलनेवाले हैं आपको सहारेकी जरूरत नहीं यह केवल हमारा उपचार है ।

यह भी जानें दो ! देखिये तो सही, हमारा महल जब इतना बड़ा है तो हमारा अब हृदय कितना बड़ा होगा ? हमारा महल बड़ा मनबड़ा, फिर भी आप अपने गिप्यके ऊपर कृपाकरके यहा पधारे इसमे अब हमारा मन व महल दोनों भीधे होगये ।

भरतचक्रवर्तीके धर्म विनोदको सुनते : मुनिराज मन : में ही प्रसन्न होने लगे परन्तु कुछ बोले ही नहीं, क्योंकि उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि जोजन करनेके पहिले किसीमे बोलेंगे नहीं, फिर भी मनमें उसके भक्ति रमके प्रति अत्यंत लुब्ध होकर जा रहे थे ।

इस प्रकार भय और भक्तिसे जिस समय उन योगियोंको वह चक्रवर्ती महलमे लेगये तब भरत चक्रवर्तीकी राणिबा सामने आई । मुनियोंको देखते ही भक्तिसे सबके सब रोमांचित हुई । तत्क्षण आरती उतारी गई । फिर सब राणियोंने मुनिराजोंको साष्टांग नमस्कार किया । जिस प्रकार कामदेव विगंबर तपस्वि-

योंके प्रति स्पर्धा करके हारगया हो फिर वह उसी हारसे अपने महलमे लाकर अपनी स्त्रियोंसे हार स्वीकार करा रहा हो और इसीलिए स्त्रियां उन मुनि राज्योंके चरणमें पड़ती हो इस प्रकार उस समय भरतचक्रवर्तिकी शोभा मालुम हुई ।

उस समय महलमें एकको नहीं दो को नहीं रुक्को एक त्यों हारका दिन मालुम हुआ । त्योंहारका दिन भी क्या । शादीके बारातके समान खुशी थी । इसी खुशीमे उन सतियोंने किन्नरवीणा आदि लेकर अन्नदानकी महिमाको गानेके लिये प्रारंभ किया ।

वे मुनिराज जिम समय महलके अंदर जारहे थे तब वे स्त्रियां दोनों तरफमे चामर डाल रही थी । सेवकके घर मालिक आवे तो जिस प्रकार सेवक अनेक प्रकारसे भक्ति करता है उसी प्रकार भरतचक्रवर्ति उन तपस्वियोंके अपने महलमें आनेपर अनेक तरहसे अपने स्त्रियोंसे युक्त होकर उनकी भक्तिकी और अपने भाग्य ससझा ।

उन मुनिराजोंको चक्रवर्तिने हमको नमस्कार किया इसका कोई अभिमान नहीं आया और न उन सुंदरी राणियोंको देखकर कोई मनमें विकार उत्पन्न हुआ । केवल अपने मनको आत्मामे दृढ़कर चक्रवर्तिके साथ गये ।

जिन योगियोंने अपने शरीर को भी तुच्छ समझकर आत्मा की ओर चित्त लगाया भला कुछ बाह्य पदार्थोंको देखकर उनका मन विचलित होसकता है ?

तदनंतर उन योगियोंके पादकमलोंको प्रक्षालन कर अमृत गृहमें पदार्पण कराया । उस घरमें कोई अंधकार नहीं था लोगोंको ऐसा मालुम होता था कि क्या यह कोई सूर्यका जन्म स्थान तो नहीं ?

वहापर उन योगियोंको ऊंचा आमन दिया । फिर अपने धर्मपत्नियोंसे युक्त होकर भक्तिमे उनकी पूजा की । तदनंतर भक्तिसे आहार दान दिया ।

दाताघोमें चक्रवर्ति भरत उत्तम या पात्रोमें वे चारण मुनी-श्वर उत्तम थे । इसलिये उत्तम दाताने उन उत्तम पात्रोको सिद्धात शास्त्रोमें प्रणीत विधिके अनुसार उत्तम दान दिया ।

दानके समय बाहर घंटा बाद्य आदि मंगल शब्द होने लगे क्योंकि चक्रवर्तिके आहारदानका संभ्रम सामान्य नहीं ।

इस जगत्में जितने उत्तम पदार्थ हैं वह सब उस भरतचक्रवर्तिके महलमे हैं । इसलिये उनको किस बातकी कमी होसकती है ! उन ज्ञानशील तपस्त्रियोंको उस चक्रवर्तिने अमृतान्न देकर वृत्त किया । सचमुचमें उस समय अनेक प्रकारके भक्ष्य, स्त्री, शाक, पाक, फल, आदिको सोनेके बरतनोंसे निकालकर देते हुए चक्रवर्ति कल्पवृक्ष काम धेनु व चिंतामणिको भी मात कर रहे थे

उम समय भरतचक्रवर्तिकी राणियोंकी परोसनेकी युक्ति और उन अमृतप्रासोको मुनिराजोंके हाथमें रखनेकी चक्रवर्तिकी युक्ति सचमुचमे देखने लायक थी ।

दोनों मुनि राज किसी अभिलषित पदार्थोंकी ओर इशारा न करक भरतने जिस दिव्य अन्नको दिया उसे भोजनकर वृत्त होगये ।

जिन मुनिराजोंके तपःप्रभावसे नीरस अन्न हाथमें आनेपर भी वह सरस बन जाते हैं अब वह चक्रवर्तिके द्वारा दिये हुए सरस अन्न किस प्रकार हुए यह वर्णन करनेकेलिये अशक्य है ।

स्वर्गके देवगण जिस अमृत आहारको खाते हैं उसके समान अपने लिये निर्मित आहारको अपने हाथसे पट्खण्डाधिपतिने मुनिराजोंको समर्पण किया सका क्या वर्णन करें !

भुक्तिसे उन चारण मुनियोंको तृप्त किया इतना ही नहीं भक्तिसे भी तृप्त किया। साथ भुक्ति और भक्तिसे सुखितपथ केलिये तैयारी की।

सप्त विध दातृ गुण व नवविध भक्तिसे युक्त होकर जब चक्रवर्तीने उन योगियोंको आहार दान दिया तब उन्हें तृप्ति होगई।

उन योगियोंने जिस समय भोजन समाप्ति की उस समय आयुष्य उन लोगोने यह विचार किया होगा कि परमात्मा को स्वात्मानन्द ही भोजन है। भोजन शरीर के लिये है। आहारान्निक भेवन करना यह शरीर स्थितिके लिये कारण है। इसलिये शरीरको विशेषतया पुष्ट करना ठीक नहीं है इस प्रकार हसक्षीर नीरन्यायसे समझकर भोजन को अत किया।

वद्ध पल्यकामनमें धिराजमान होकर चारण योगियोंने मुग्ध शुद्धि की। तदनंतर हस्त प्रक्षालन कर सिद्ध भक्ति के अनंतर उन लोगोने आत्म मीचकर आत्मदर्शन किया।

इतनेमें घंटाध्वनि रुक गई। चारों ओरसे गणिया आकर खड़ी होगई। योगियों की निश्चल ध्यानमुद्रा देखकर चक्रवर्ती मनमनमें खुश होने लगे।

अभी उन मुनियोंका देह जरा भी हिल नहीं रहा है। एक पत्थरसे बनी हुई मूर्तिके समान निश्चल है। वे सिद्धांतोक्त मंत्रोंके जप करते हुए आत्माको बहुत दृढ़ताके साथ निरीक्षण कर रहे हैं।

आंखोंको खोलकर जब आनन्दसे गजाक्षी ओर देखा तब भरतने बहुत उत्साह व भक्ति से नमोस्तु किया।

“अक्षयं दानफलमस्तु ते” इस प्रकार चक्रगति मुनिने और “निर्मलात्म सिद्धिरस्तु” इस प्रकार आदित्य गतिने उनको आशिर्वात् दिया।

उन चारण योगियोंके पवित्र आशिर्वादको पाकर उस चक्रवर्तीको हृदयमें कितना आनंद होगया हो वह परमात्मा ही जानें। मुक्ति उसके हाथमें आगयी हो मानों उसी प्रकार वह उस समय नाचने लगा। ठीक ही है। सत्पात्रोंके हाथमें आनेपर किसे हर्ष नहीं होगा ?

उसी समय भरत चक्रवर्तीके राणियोंने भी मुनियोंको नमोस्तु किया। मुनियोंनेभी उन सबको गीर्वाण भपामें आशिर्वाद दिया।

भरतेशकी दानचर्यासे उस समय देव भी प्रसन्न हुए। उन्होंने इस हर्षमें नर्तन किया। आश्चर्य की बात है कि उस समयपाच घटनाओंके द्वारा देवोंने भूलोकको चकित कर दिया।

१—एक दम किसी सुगंधी फूलों के वगीचे में प्रवेश किये के समान गीत व सुगन्धयुक्त पवन बहने लगा।

२—दूसरी बात उसी समय अध्येक्षयो भरत के महल में स्वर्ग से पुष्पवृष्टि होनेलगी।

३ स्वर्ग से देवगण भरत के महल पर रत्नवृष्टि व सुवर्ण-वृष्टि करने लगे।

४—देवगण हर्षसे अनेक प्रकार से वाद्यध्वनि करने लगे।

५—आकाशमें देव खड़े होकर भरत चक्रवर्ती के प्रति जयज-याकार शब्द करते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे।

यह दान उत्तम है। दाता उत्तम है पात्र तो उत्तमोत्तम हैं।

हे भरत ! स्वर्गलोक में उत्पन्न होकर स्वर्गीय सुखको अनुभव किया तो क्या हुआ तुम्हारे समान पात्र दान करने का भाग्य हमें कहा है ?

व्रतसे, तपसे, व दानसे यह स्वर्ग हमने प्राप्त किया यह सत्य है परंतु ऐश्वर्य है कि यहा व्रत नहीं, तप नहीं व दान

देनेका अधिकार भी नहीं। हे भरत ! तुझारा भाग्य हमें क्या ?

अन्न देनेकी शक्ति हमें भी है परंतु कदाचित्त हम आहार दान करनेका विचार करें तो हम श्रुती नहीं हैं। अन्नही होनेसे हम दान देवे तो जिन मुनि हमें ग्रहण नहीं करेंगे।

हे राजन् ! हम जिनैद्रकी पूजा करते हैं परन्तु वह केवल उपचार है क्योंकि उन को उदरगमि नहीं है। इन मुनियोंको उदरगमि है। उनकी उपशानि करनेका अधिकार हमें नहीं तुम्हें है, इसलिए तुम भन्य हो।

भूलोफमे आहार दान देनेवाले बहुतसे राजा मिल सकते हैं, परंतु उनमें दान देनेकी युक्ति नहीं, कर्त्तारिन युक्ति होती भक्ति नहीं युक्ति व भक्तिसे युक्त मुनिमाधक दाता तुम ही हो।

जो सौभाग्य व संपत्ति मनुष्योंको मर उग्रम करता है उनमें तुम्हें स्पर्श भी नहीं किया है। उस भोगकी मूर्च्छा तुम्हें नहीं आई है। हम प्रकार अनेक तरहमें श्रेयोंने चक्रवर्ति भरत की महिमा गायी। ठीक बात है। धर्मात्माओंके धार्मिक गुणपर सुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करना धार्मिक पुरुषोंकाजानि चिन्त है।

“ धर्म साम्राज्यों विरहाल पालन करो ”

हम प्रकार देवदाणी करके देवगण अंत रान हुए।

आप चरचर्त्तोंके दानकी महिमा अपागर्ह। उपर्युक्त प्रकारसे पंच आश्रय घटना ये भरत के दान के प्रत्यक्ष प्रभाव को सूचित करती हैं।

“ जिनशरण ” शब्द को उच्चारण करते हुए मुनिगण गद्ग मे जानैको बड़े, उमी समय भरत भी “ हमें आप ही शरण हैं ” ऐसा कहकर उनके पीछे ही उठकर चलने लगा।

भरत को उन मुनिगजोंने आज्ञा दी कि “ तुम ठहर जाओ, अब हम जाते हैं ” परंतु भरतने उनमें सविनय निवेदन किया

कि “ आप पधारे ” ऐसा कहकर एक दम अपने दो रूप बना लिया एवं दोनों रूपोंमें दोनों मुनिराजों को हाथमें धरकर चलाते जाने लगा ।

चार आठ गज जानेके बाद मुनियोने फिर कहा कि “ अब तो ठहर जावो ”

“ स्वामिन् । थोड़ी सेवा और करने दीजियेगा। आप पधारिये ” भरतने कहा ।

थोड़े दूर जानेके बाद फिर मुनियोने कहा कि ‘ अब आगे नहीं आना, ठहर जावो ’

‘ भगवन् आपको उचित है कि भक्तों को आगे बुलाकर उद्धार कर, परंतु आप लोग हमारा तिरस्कार करके आगे न आनेका आदेश कर रहे हैं । क्या यह आपको उचित है ” ? इस प्रकार भरतने विनोदसे निवेदन किया ।

भरतके विनयको देखकर मनमन में प्रसन्न होकर मुनिगण जा रहे थे । यह भगवान्का पुत्र तो है न ? ऐसा समझकर मनमें विचार करते हुए जा रहे थे ।

“ राजन् । भोजनको देरी होती है । जावो, अब तो जावो ” ऐसा कहकर मुनि ठहर गये ।

परंतु भरत वहासे भी जाने को तैयार नहीं हुआ । वह कहने लगा कि “ भगवन् । चलिये, कुछ दूर और, ” ऐसा कहकर भक्तिसे आगे बढ़ा ।

इस प्रकार उन मुनियोंके साथ वह चक्रवर्ति अंतिम दरवाजे पर्यंत गया । वहासे भी उनको छेड़कर आनेकी इच्छा नहीं थी ।

ठीक बात है । जो सतत आत्मानुभव करते हैं ऐसे योगिरत्नोंको छोड़कर कौन मोक्षगामी जाना चाहेगा ? ।

अब भी यह पीछे नहीं जाता है । ऐसा समझकर मुनियोने

कहा कि “ अब भगवान् आदिनाथ का अपथ है, ठहर जावो ”
ऐसा कहकर ठहराया भरतने भी भक्ति पूर्वक उन तपस्वियोंको
नमस्कार किया । साथ ही अपने दोनों रूपोंको एक बना
लिया ।

वीतरागी तपस्वियोंने भी उनको आशिर्वाद दिया एव आकाश
मार्ग से बिहार कर गये । भरत भी उनकी ओर आंख लगाकर
बराबर देखने लगा ।

दोनों मुनिवर आकाशमार्ग में जाते ममय चंद्र और सूर्य के
समान मालुम होते थे । ठीक है । वे नामसे भी चंद्रगति और
आदित्यगति थे ।

वे जबतक दृष्टि पथमें आ रहे थे तबतक चक्रवर्ती खड़े होकर
बड़ी उत्सुकता के साथ उनको देखते रहे । तदनंतर निराश होकर
वहां से महलकी ओर चले ।

सेवकोने आकर मोनेके खड़ाऊ लाकर दिये । डधर उधर
से चामरधारी आकर चामर डोलने लगे । चक्रवर्ति इस प्रकार
राजवैभवसे महलके तरफ चले ।

इति मुनिमुक्ति मंत्रि

—

अथ राज मुक्ति संधि

पवित्र है मूर्ति जिनकी, उज्ज्वल है कीर्ति जिनकी, त्रैलोक्यमे
एक पवित्राकार तथा गभीर ऐसे जो सिद्ध भगवान हैं वे हममें
रक्षा करें ।

राजाधिराज भरतचक्री मुनिदानानन्तर महल के प्रति आने
लगे । उस समय रास्तेमें वे सुन्दर दुपट्टा धारण किये हुए ऐसे
चलते थे जैसे कि मानो कोई हाथीके चञ्चा चल रहा हो उस प्रकार
दुपट्टा हिलते हुए चलने लगे तथा पैरमें सोनेके गवडाऊ पहने हुए
अपनी चतुरताको दिखाते हुए धीरे २ लीलासे चलने लगे ।

मेरे आज उत्कृष्ट पात्र दान हुआ है इस प्रकार मनमें आन-
न्द से सेवकों को आदर सत्कार करते हुए महल के अंदर पैर
रखने लगे । तदनन्तर एक नौकर को बुलाकर कहा कि “ जाओ
उस सोनेकी राशि मे सोना निकाल कर पुरवासी गरीबों को
तथा भिक्षुओंको देवो ” इस प्रकार आज्ञा देते हुए महलके अन्दर
चले गये ।

इधर इनकी रानिया मुनि के गुणों की स्तुति करती हुई तथा
दान में हुए अतिशयों में हर्ष मनाती हुई बड़े आनन्द से पति के
आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं ।

इतने में अपने सामने पति के चमकती हुई मुख की काति
को देख कर सभी चक्रवर्ती की लिया परस्पर बात चीत करने
लगीं कि—

आज राजाधिराज भरतचक्री के (स्वामी के) मन बड़े प्रफु-
ल्लित है ऐसा मालूम होता है कि इनको कोई न कोई उत्तम वस्तु
प्राप्त हुई है ।

फिर आपसमें इस तरह कहने लगीं कि वहन ! तुम उनके
मुख को तो देखो या वहन तुम देखो मेरा कहना सच है या झूठ

इस प्रकार परस्पर पूछने लगीं ।

कोई २ कहती है कि तुम्हारी बात सच है झूठ नहीं है इस प्रकार हम लोगों को भी देखने में आता है ऐसा कहती हुई सब के मन आनंदित होती हैं । और कोई २ कहती हैं कि अपने आप परस्पर में संदेहास्पद बात कर ने से कुछ प्रयोजन नहीं अतः स्वामीके पास जाकर अपने संदेहको दूर करें ।

इतने में सभी स्त्रियां भरतचक्रीके पास जाकर पूछने लगीं हे नाथ ! हम लोगोंको तुम्हारे मुखकी प्रसन्नता देखकर जो भाव हुआ है, वह सच है या झूठ । तब उन्होंने कहा कि सच है । मेरे हृदयके भावों को तुम लोगोके सिवाय और कौन जान सकता है । इतना कहकर कहने लगे कि चलो हम सब भोजन करेंगे ।

तदनन्तर पाद प्रक्षालन करके जब भोजन करने गये तब उन्हें अकेलेकी ही भोजन की तयारी देखकर वहीं खड़े होकर सोचने लगे कि बहुत देर होगई अतः सभी रानियों के साथ ही भोजन करना ठीक है इत्यादि सोचते हुए निम्न लिखित नामोंसे सबको प्रेमसे पुकारने लगे । कन्नाजी, कमलाजी, विमलाजी, सुमनार्जी, होन्नाजी, मधुराजी, रन्नाजी, चेन्नाजी, चिन्नाजी, कांताजी, मुकुराजी, कुसुमाजी, सताजी, मधुमाधवाजी अन्तरगर्जी, सुखाजी, सुखवती, शाताजी, शृङ्गलोचना, नीललोचना, कुरंगलोचना, सारंगलोचना, पुष्पमाला, शृङ्गारवती, गुणवती, चन्द्रमती, वीणादेवी, विद्यादेवी, सुरदेवी, वाणीदेवी, श्रीदेवी, वाणादेवी, भद्रादेवी, कल्याणीदेवी, अजनादेवी, कुंकुमदेवी, मल्लिकादेवी, सुदेवी उत्साहादेवी, चित्रावती, चित्रलेखा, पद्मलेखा, ललितान्गी, विचित्राङ्गी, कनकलता, कुंदलता, कनकमाला, जिनमती, सिद्धमती, रत्नमाला, मणिमाला, कातिमाला आदि को बुलौकर

कहने लगे कि आज सब साथ ही बैठ कर भोजन करेंगे ।

इतनेमें सभी स्त्रिया आकर कहने लगीं कि हम लोगोंको नियम है कि पति भोजनानन्तर हम लोग भोजन करेंगी अतः आप कृपाकर पहले भोजन कीजिये इस प्रकार हाथ जोड़ कर कहने लगीं ।

तब भगतेय कहने लगे कि यह नियम कैसा है ? आज मेरी बात सुनो आओ सभी एक पक्षी में बैठ कर भोजन करे ।

सभी अवला परम्पर मुग्न देग्य कर विचारने लगीं । सभी का विचार एक प्रकार नहीं होते हैं अतः वे भी आपसमें छोटी बहान बड़ी बहान में कहने लगीं । जीजी हम स्वामी की आज्ञा पालने वास्ते साथ बैठकर भोजन करेंगी तो दोष नहीं होगा । इस प्रकार की बात सुनकर एकने कहा कि जिस प्रकार स्वामी मुनि आहार दिये बिना आहार नहीं करते, उसी प्रकार हम भी अपना धर्म क्यों छोड़ें ? पति का भोजन कराकर बाद भोजन करनेवाली स्त्री स्वर्ग गामिनी होती है अतः एक साथ भोजन करना ठीक नहीं है ।

आर एक ने कहा कि हम अपने आप ही भोजन करेंगी तो दोष है किंतु यह तो वे स्वतः भोजन करनेके लिये कहते हैं इस लिये इसमें कोई दोष नहीं है ।

इतने में फिर एक ने कहा कि इनको हमारे ही सबब से भोजन के लिये इतनी देर हो रही है ।

कोई २ मनमें ही विचारने लगी कि कितनी देर से कह रहे हैं परंतु क्या किया जाय, पति को जबाब देना अधर्म है । इस लिये कुछ समझमें न आने के कारण कोई तो गूगोंके समान चुपचाप रहे, कोई तो अपने ही मन में अनेक प्रकार से चिंता करने लगीं, कोई तो एक दो बातें भी करने लगीं ।

इस प्रकार वे सब राजस्थानों किङ्कर्तव्य विमूढ़ होकर विचार कर रही हैं इतने में उनके अभिप्राय को समझकर भी भरत धोलने लगे कि:—

‘आवोजी ! आरो ! आप लोगोंको यह घन किस गुरुने दिया है। मेरी उजाड़त के बिना घन लिया जागरता है क्या ? यह घन मेरी आशासे लिया गया हो ना चाहे नहीं, परंतु मेरी यातना मानना तुम लोगोंका धर्म नहीं क्या ?

प्रागनाथ ! हम लोगोंने गुरु साक्षि देवसाक्षि पूर्वक यह नियम नहीं किया है। आपके अपथ पूर्वक हम यह बात कह रही हैं। केवल पहिले मान आठ रोज हम रोज हमारी इच्छामें चलायी हुई आई। अब भी उसे बराबर पालन करनी हुई आरही है।

“जाने दो ! ठीक है। गुरु देव साक्षीपूर्वक तो आप लोगोंने यह नियम नहीं लिया। क्यों कि नियम देनेवाले गुरु आप लोगोंमें अलग भोजन है। फिर भी आप लोगोंने यह घन है मंभी कल्पनाकर इसे अवतल पालन किया है क्या ? क्या आप लोग इसे घनके रूपमें पालन कर रही हैं। हमारा उत्तर ही नियमा । भरतने पटा ।

“म्यामिन ! हम क्या जाने ! इन पदार्थोंको ” इन मयदानों-को घनप्रदणके विशेष विधि जादिलो आपही जाने । पतिशुक्त अपान्नरो भोजन करना हमको बहुत प्रिय मालूम होता है । जिन प्रकार लोग धीनिमें घन पालन करने हैं उसी प्रकार हम इसे प्रेममें पालन करनी आरही हैं । हमारे हृदयमें कोई घनकी कल्पना नहीं ।

“अच्छीबान ! गुरुने आपको घन दिया नहीं । आपलोगोंने भी घन है ऐसी कल्पना की नहीं । केवल खेलकालमें जो बात हुई है उसे घन घन कह कर क्यों हठ करनी है समझमें नहीं आता ।

आधो ! अपन भोजन करे आपलोगोंको ध्यानमें रहे कि मैं मेरे स्वार्थ व सतोपके लिये आपलोगोंके व्रतशीलको कभी भग नहीं करूंगा । इसमें आपलोगोंको कभी संदेह न रहे यह बात मैं पितृमाश्रीपूर्वक कह रहा हूँ । अब आप लोग सब आवे । आपको कोई दोष नहीं है " तरुणी रमणिया ! आवो । अपन सब लोग मिलकर मुनिभुक्त शंपात्रको भोजन करे । यह अमृतान्न है । आपलोग मकोचकर मेरे हृदयको क्यों दुःखाती है, समझमें नहीं आता । अब आपलोगोंको मैं तरुणिया कहूँ या निष्करुणिया कहूँ यह भी मुझे समझमें नहीं आता । रंग ! अरी ! निष्करुणी तरुणिया ! अब तो आवो ! भोजन करे । बहुत देरी हो चुकी है " भरतने उन लोगोंको जग लज्जित कर रहा ।

इतने में सब स्त्रियोंने उनकी आज्ञा पालन करने के लिये स्वीकृति दी । हर्ष पूर्णक पतिके आज्ञाको शिरोधार्य किया । इसमें आश्चर्य क्या है ? जब पट्टरङ्गके मनुष्य मात्र उसकी आज्ञा पालन में जग भी देरी नहीं करने फिर कुछ स्त्रियोंकी बात क्या ? वे भी ग्राम उम्मीके अतपुत्रकी राणिया ।

सुवर्णके जल पात्रको स्वयं अपने हाथमें भरतने उठाया । और सब स्त्रियोंको हाथ पाव धोकर भोजन को चलने के लिये कहा ।

इतनेमें वहा एक विनोदनी घटना हुई। भरतजी जिस समय उस सुवर्ण कलशको हाथ लगाकर जल्दी २ में एक राणीको दे रहे थे उस समय उस कलशका जरासा धक्का भरत को लगा । चोट बगैरह कुछ भी नहीं आई । केवल स्पर्श होनेसे किंचित् दबकर स्पर्श हुआ । इतनेमें उस राणीने भरत विशेष प्रसन्न होवे इसके लिये कहा कि जिन ! जिना ! मिद्ध ! हा ! आपको लगा ? ऐसा दुःख प्रदर्शित करने लगी । उसका मुख कुंद पड़ गया, वह

आंग उठाकर देर नहीं मारी। इसी ओंठ मूग गई। और दुःखी होकर फटने लगी स्वामिन ! आप बड़े तो मानते नहीं, आप ही गडबडी करने हैं। अब आपको लग गया हमने मेरा क्या दोष है ?

इतनेमें चाफ़ी मियोने भी दुःख प्रदर्शित करनेको आरंभ किया।

कोई नौभेंके महारे टिककर गयी होगई कोई दिवालके महारे कोई शास्त्रिक और कोई मानमिर हम प्रकार कई तरहसे दुःख प्रदर्शित करने लगी।

भरतको हम दुःखको देखकर हमी आई, फटने लगा कि हा ! फट है। भरतका कैसा भाग्य है। इस समय यह क्या स्थिति है।

हम प्रकारके घबर्नोमें उन मियोंका गिन जरा बिचलने लगा। वे अब विरल पसंगतो मरमरूप देनेकी फांशिम करने लगी।

वे हमकर आगे आने लगी। आकर “प्राणनाथ ! आप जो बड़े बड़े हैं सो बिल्कुल मर्त्य हैं। हम लोग यदि जरा टिककर गयी होगई तो क्या हुआ ? हमारे सुखकी काति कहीं चली गई क्या। आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं। हम लोगोंने जोड़ी देर विनोद किया। हममें तेरी कोई बात नहीं।

स्वामिन ! अपराधियोंको दण्ड देनेवाले राजा ही यदि अपराध करें तो फिर क्या करें ? हम प्रकार उन मियोने हसते हुए फटा और भरतके मन दरनरहमे प्रमत्त करने लगी।

यम ! अब रहने दो विनोद ! आप लोग सब थक गई हैं। अब अपने मय लोग भोजन करें जैसा कहकर चक्रवर्ती भरतने उन सबको अपने साथ ही भोजनको बिठाल लिया।

मंगलामन जो भरतके लिये पहिलेमे ही निश्चित था उसमे वह बैठ गया। बाकी इधर उधरमे पंक्तिवद्ध होकर वे खिया बैठ गई। भूकात भरतको बीचमे कर कातामणिया बैठ गई थी। उन समय सचमुचमे यह मालुम होगया था कि आयद लतावोंके बीच वसंतराजेद्र ही हो। अथवा रत्नहारोंके बीचका मुख्य रत्न ही हो।

कुछ खिया तो भोजमको बँठी थी। और कुछ खिया बहुत प्रेमसे भोजनको परोसनेकी तैयारी करनेके लिये इधर उधर फिर रही थी।

रत्न, सुवर्ण व चादी आदिसे घने हुए वरतनोंको लेकर जब वे खिया इधर उधर जा रही थी तब आयद विजलीके चमकनेका आभास हो रहा था।

भरतजी जिस समय भोजन करनेके लिये अपनी खियोंके साथ वहापर बैठे थे उम समय वहा एक वरातके पंक्तिभोजनके समान मालुम होता था।

परोसनेवाली राणिया बहुत चतुराईसे परोस रही थी। इस समयकी शोभा अत्यंत विचित्र ही थी।

क्या चद्रकी पंक्तिमें अमृत पान करनेके लिये तारागनायें तो नहीं बैठी थी। अथवा देवामृतको खानेके लिये देवेंद्रकी पंक्तिमें देवागनायें तो नहीं हैं। अथवा कामदेवके पंक्तिमें मोहनदेवी तो नहीं हैं। इस प्रकार देखनेवालोंको तरह तरहके विचार आ रहे थे।

परोसनेवाली खिया भी ऐसी ही मालुम हो रही थी कि देवलोकसे ही उतरकर परोस तो नहीं रही हैं ?

अमृतान्न, भोज्यान्न, देवान्न, दिव्यान्न, व अमृत रसायन इस प्रकार पचामृतोंको क्रमसे उन्होंने परोसा।

अनेक प्रकारके शाक, श्रीग्वट, पूरणपोली, आदि भक्ष्य वि-
जेषोंको बहुत सावधानपूर्वक सबको परोसने लगी ।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके भक्ष्य विशेष जो थे उनको
बहुत आनदसे वे स्त्रिया परोस रही थी जैसा कोई उस दिन
लौहार ही हो ।

ये सब स्त्रिया अपने पतिके पंक्तिमें घैठकर भोजन कर रही हैं
और हम इनको परोसनेके काममें लगी हुई इस प्रकार मनमें जरा
भी मयत मत्सर उन स्त्रियोंके नहीं हैं । हम और इनमें कोई भेद
नहीं ऐसा समझकर वे परोसनेके काममें लगी हैं ।

लोकमें प्रायः स्त्रियोंमें सबत मत्सर विशेषतया पाया जाता
है । परन्तु उन विवेकी स्त्रियोंमें यह बात नहीं थी ।

इस प्रकार बहुत भक्तिसे सब तरहके भोजनको परोसकर
चक्रवर्ती भरतको उन स्त्रियोंमें आगती उत्तारी और नमस्कार कर
एक तरफ सरकर खड़ी होगई ।

भरत भी इन स्त्रियोंकी नवीन भक्तिको देखकर जरा हँसे ।

उस समय भरत भोजनके लिये शुद्धिमें विराजे थे । उस
समय तिलक यज्ञोपवीत सुवर्णके कटी मूत्र, उत्तरीय व अंतरीय
वस्त्रके निवाय और कोई राजकीय ठीवी उसके शरीरमें नहीं थी ।

हस्त प्रक्षालन आदि विधिमें निवृत्त होकर प्रशस्त पल्यकास-
नमें बैठ गये । अर्थात् दाहिने गुल्फको बायें गुल्फके ऊपर रखा
और उसके ऊपर बायें हाथपर दाहिने हाथ रखकर बैठ गये ।

तदनंतर शातभावसे आग मीचकर अपने उपयोगको लोकाग्र
भागमें पहुँचाकर श्री खिद्र परमेष्ठियोंका स्मरण किया । और
श्री सिद्ध परमेष्ठीको अपने अंतरंगमें लाकर स्थापित किया व
उनकी भावपूजा की । और उन्हे यथास्थान पहुँचाकर आँखें
खोल ली ।

आगोंमें अन्नपानीको अच्छी तरह देग रहे थे । और ज्ञान-चक्षुसे आत्माको देख रहे हैं ।

इसके बाद सोनेके कलशसे पानी लेकर मंत्रजप करते हुए उन्होंने थोड़ासा पान किया अर्थात् भोजन करनेको प्रारम्भ किया इतने घंटा बजने लगा ।

भरत दिव्यामृतके समान दिव्य अन्नपानोंको अब भोजन करने लगे हैं ।

ज्ञानान्नको आत्माको और वाकी अन्नपानको शरीरके लिये एक कालमें भरत अर्पण कर रहे हैं । ज्ञानियोंके सिवाय भरतेशके हृदयकी बात और कौन जान सकते हैं ?

भक्ष्यके सुप्तका अनुभव भरत शरीरको करा रहे हैं और आत्माको मोक्षके सुप्तका अनुभव कराते हैं । मोक्ष गामियोंके सिवाय उस दक्षकी हृदय परीक्षा कौन कर सकता है ?

उस मीठे २ अन्नको उस शरीर को खिला रहे हैं । खिलाते हुए शरीरसे भरतजी कह रहे हैं कि “ देखो ! तुम को मोटे ताजे बनाने के लिये मैं यह खिला नहीं रहा हूँ, तुम मेरे आत्माकी अच्छीतरह सेवा करना ” । सचमुचमें भरत के हृदयका विचार आसन्न भव्य ही जान सकते हैं ।

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल व मधुर इन पांच रसोंका अनुभव जीभको कराते हुए जिस समय जा रहे हैं उसी समय आत्माको दर्शन, ज्ञान, वीर्य व सुखका अनुभव करा रहे हैं ।

शरीरको तण्डुलान्न खिला रहे हैं । आत्माको बोधपिंड दे रहे हैं ।

भोजन करते समय थाली कटोरी वगैरहमें हाथ पहुँचकर मुहमें जैसे पहुँचता था उसी प्रकार उनका हृदय सिद्ध लोकमें पहुँचकर आता था ।

जिस प्रकार किसी मनुष्यको भूख तो न हो परंतु वधुयोंके आमहमे भोजन कर रहा हो उसी प्रकार की गति चक्रवर्ती की होगई थी अर्थात् बहुत उदासीन भावसे भोजन कर रहे थे। क्यों कि असमपुण्योद्भूत श्री भरत को मोक्षके निवाय कोई विषयमें आनंद ही नहीं आता था।

जिस प्रकार किसी दुष्ट राजाके राज्यमें जब तक कोई मज्जन रहे तबतक तो उस दुष्टकी यात सुननी पटती है उसी प्रकार चक्रवर्ती भरत यह विचारकर भोजन कर रहे थे कि जयन्तक इस दुष्ट कर्मजन्य शरीरके मायमे हूं तबतक मुझे उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जैसे घर पर आये मेहमानको सत्कारकर पहुंचानेके बाद मनुष्य अपने घरमें आकर स्वस्थ बनजाता है उसी प्रकार भरतजी उस शरीरको मेहमान समझते थे। उसे खिलाकर घं अपने घर जो आत्मा है उसमें पहुंचकर सुखसे रहते थे।

इस प्रकार भरतजी अपने आत्म विचार करते हुए भोजन कर रहे हैं फिर भी उनकी राणिया चुपचाप बैठी हैं। उन्होंने अभी भोजन करनेको प्रारंभ नहीं किया है। तब चक्रवर्तीने जरा आग्रह कर कर उनके तरफ देखा फिर पृच्छने लगे कि आप लोग क्यों बैठी हैं? भोजन क्यों नहीं करती हैं? तब किसी एकने भरतजीके कानमें कुछ कहा। भरतने सम्मतिके इशारा किया। तत्क्षण एक राणीने भरतकी थालीमें कुछ पकान्न लेकर मद्यको परोस दिया। तब कहीं सबको संतोष हुआ। उन पतिव्रता स्त्रियों को पतिभुक्तपेपात्रको खानेकी प्रतिज्ञा थी। इस प्रकारकी पति-भक्ति घरघरमें होसकती है?

जीवबल, देह बलकी वृद्धिके लिये भरतजीने ३२ ग्रास भोजन करके वृषि की। फिर उन राणियोने भी हितमितमधुर

भोजनकर वृत्ति प्राप्त की। वे नदा संतोषान्नको खाती रहती हैं। इसलिये उनको क्षुधाग्नि विशेष नहीं है।

भरत व उनके राणियोंने निर्मल जलमें हाथ धोलिया। और भरत कहने लगे कि अब हम भोजनात्मकी क्रिया करनी है। आप लोग अब उन परोमी हुई राणियोंको भोजन करावे। ऐसा कहकर वे स्वयं आख भीचकर बठ गये और मित्रात मन्त्रके ध्यान करने लगे।

राणियोंने भी 'बहिनो' आप लोग आइये। आप बहुत थक गई हैं। हम अब आप लोगोंको परोसेंगी' ऐसा कहकर बाकी बची राणियोंको बहुत आनन्दसे भोजन कराया।

भरत चक्रवर्ती आस खोलकर "जिन सिद्ध शरण" ऐसा उच्चारण कर बहामे उठे एवं विश्रांतिके लिये चन्द्रमालामे पहुचे। वहापर भी राणिया पहुचकर पतिसेवा करने लगी। कोई पखा करने लगी। कोई गुलाब जल छिडकने लगी कोई पैर धुवाने लगी इसतरह तरह तरह की सेवा करने लगी।

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप बहुत विचित्र है। लियनेको नहीं आता, सुधारनेको नहीं आता। मंथन करनेपर भी नहीं मिल सकता। तुम अभव हो। इसलिये मेरी कामना है कि मेरे हृदयमे सदा रहो यह भरतका नित्य विचार है।

इति राज भुक्ति पथि



अथ राजसौध संधि.

हे परमात्मन् ! तुम्हारा रूप विचित्र है । कोई कुशल चित्रकार तुम्हारे चित्रको चित्रित करना चाहे तो वह नहीं कर सकता है । बिगड़जाय तो सुधारनेकी बात तो दूर ही रहे । समुद्रके मथन करनेपर जिस प्रकार अनेक प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसी लोकोक्ति है, वहीँको मथन करनेपर जिस प्रकार लोणी निकल सकती है उस प्रकार किसीको मथन करनेपर तुम मिल सकते हो ? नहीं ! क्यों कि तुम्हे रूप नहीं । आकार नहीं । कोई तुम्हे स्पर्श नहीं कर सकता । देख नहीं सकता । तुममें कोई आवाज नहीं । इसलिये सुन नहीं सकता । तुममें कोई गंध नहीं इसलिये कोई सूँघ नहीं सकता । फिर भी हे आत्मन् ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदय में तुम वैसे ही अंकित रहो जैसे किसीने तुम्हारे चित्रको लिख छिपाकर रखा हो ।

हे सिद्धात्मन् ! तुम्हारी महिमा अपार है । अंतरहित अमृत संपत्तियोंको धारण करनेपर भी लोकको एक गरीबके समान दिखते हो । आभरणों के नहीं होनेपर भी अत्यन्त सुंदर—हो ! तुम्हारी बातें दिखऊ नहीं हैं । असली हैं । क्योंकि तुम असलीपदको प्राप्त होचुके हो । मक्त अपने विचारोंके विकारसे कुछका कुछ समझें यह दुमरी बात है । हे भव्येश्वर ! मुझे तुम्हारे सच्चे रूपको देखनेका सामर्थ्य दोगे ? वैसेी सद्बुद्धी मेरे अंदर उत्पन्न होगी ? भगवन् ! मेरी आशा को पूर्ण कीजिये ।

एक दिन की बात है भरतेश प्रातःकालकी नित्य क्रियाओंसे निवृत्त होकर अपने यहां ऊपरके महलमें नवरत्नमय मण्डपमें जाकर विराजे हैं ।

सोनेके उस महलमें स्थित नवरत्नमय मण्डपमें लालकमलके समान सिंहासनपर आसीन राजेंद्र देवेंद्र के समान मालुम होते थे ।

पीछेकी ओर झलरीदार मुलायम तकिया, इधर उधर शीतल हवा बहानेवाली देव दासिया, साक्षात् राजाके देहपर स्थित देवाग वस्त्र सचमुचमें अद्भुत शोभा दे रहे थे ।

इतना क्यों? शरीरकी काति, आभूषण की काति, उस मण्डपकी काति आदि के फैल जानेसे उस समय जनपति भरत उस दिनपतिके उदय कालमें साक्षात् दिनपति (सूर्य) ही मालूम हो रहे थे ।

इतनेमें अंतः दरबारके योग्य सर्व परिकर वह एकत्रित होने लगा । अनेक मंगल द्रव्योंको लेकर दासिया सेवामें उपस्थित हुई, वीणा, किन्नरि, वेणु आदि वाद्योंको लेकर गायन करनेवाली स्त्रिया आईं । फिर भरतको बहुत विनयके साथ नमस्कार करने लगी ।

हाथमें वेतको रखनेवाली व्यवस्थापक स्त्रिया हटो, रास्ता छोड़ो, इन्हें बुलावो उन्हें बुलावो आदि शब्दोंको करते २ अपनी सेवा बजा रही थी ।

भरतेशकी राणियोंको काव्यका अध्ययन जिसने कराया था वह पंडिता नामकी दासी भी वहां आकर उपस्थित हुई । राजेंद्रको प्रणाम कर अपने स्थान में बैठ गई ।

इसी प्रकार सब राणिया श्रृंगार करके भरतेशके दर्शनके लिए अपने हाथमें उत्तमोत्तम भेटोंको हाथमें लेकर उस महलपर चढ़ रही थी ।

कामदेवके दर्शन करनेके लिए उनकी प्रिय स्त्रिया मेरू पर्वत को चढ़ रही हो ऐसा मालूम होरहा था ।

बहिन ! देखकर आवो, हुशियारीसे आवो, जरा हमारे हाथको तो पकड़ो, इस प्रकार मुझे छोड़कर क्यों दौडरी हो ? घबरावो मत आवो आवो बहिन इस प्रकार परस्पर कई तरहके

वार्तालाप करती हुई वे उस महलको चढ़ रही थी।

“तुम आगे क्यों भागी जा रही है ? , भागो ! भागो !
=आगे लिये राजा प्रसन्न होकर जरूर कुछ न कुछ देगा, जल्दी
वो इस प्रकार कोई आगे जानेवाली राणीसे कह रही थी।

वह लज्जित होकर ‘अच्छा बहिन ! जिनके पैरसे चला
नहीं जाता वे कुछ भी बोल सकती हैं। आपकी मर्जी ! बोलो !
ऐसा कहकर जा रही थी।

कोई राणी सबसे कह रही थी जरा जल्दी चलो बहिन !
इतना धीरे क्यों चल रही हो ! इतनेमें उमकी हंसी उड़ानेकी दृष्टि
से दूसरी राणिया कहने लगी कि देखो इसे क्या जल्दी लगी है।
न मालूम पतिके मुखको देखकर कितना दिन हो गया हो ! इस
लिये जल्दी दौड़ रही है ! तब वह लज्जित होकर ‘अच्छी बात !
आप लोगोंको हितकी बात कही यही गलती हुई। अब मौनमें
रहूंगी ” ऐसा कहकर चल रही थी।

एक राणी गर्भिणी थी। उसे देखकर दूसरी राणियां कहने
लगी कि हा ! बहिन देखो ! यह ऊपर चढ़ नहीं सकती। स्वयं
चढ़ती है और पेटमें एक बच्चेको लेकर चढ़ रही है।
इसे कितना कष्ट हो रहा होगा। क्या भ्रतको दया नहीं है ? इसे
क्यों बुलाया है। जरा हाथका सहारा लगावो बहिन ! ”

तब वह स्त्री कहने लगी कि बस ! रहने दो तुम लोगों की
बात ! मैं तुम लोगोंसे आगे जा सकती हूँ। परन्तु आगे जानेपर
आप लोग यह कहती हैं कि इसे पतिको देखने की गड़बड़ी है।
इसलिये मैं पीछेसे धीरे-२ आ रही हूँ। ”

इस प्रकार बहुतसे विनोद करती हुई वे राणियां महलको
चढ़ रही हैं। उनमेंसे एक राणी मौनसे चढ़ रही थी। तब उसे
देखकर दूसरी कहने लगी कि देखो कि यह मौन धारण करके

जा रही है। शायद मनमें पतिका ध्यान करती जा रही है। इसके मनमें क्या है ? ममझमें नहीं आता ? बहिन ! तुमको ऐमा ध्यान किसने सिखाया है ?

तब वह राणी कहने लगी कि बहिनों ! ध्यान गान तो तुम और तुम्हारा पति जाने। हम सरीखी उसे क्या जानें। हा ! तुम लोगोंके वार्तालाप को सुनती हुई व मनमें प्रसन्न होती हुई मौनसे आरही हू। और कोई बात नहीं।

पीछे रहे, आगे जावे, बोले या मौनमें रहे तो हर हालतमें आपलोग कुछ न कुछ कल्पना करती है। तुमलोगोंको जीतनेकेलिये पतिदेव ही समर्थ हैं।

अब रहने दो विनोद ! दरबार पास आगया है। अब बहुत ग-भीरतासे आईयेगा। अपनी बात उधर सुननेमें आयगी। इसलिये बहुत सावधानचित्तसे चलो।

इस प्रकार तरह के विनोद करती हुई वे राणियों महल चढकर आईं। अब दरबार गृह विलकुल पासमें है।

राणिया आनंदके साथ महलपर चढकर आ रही हैं यह समाचार व्यवस्थापक दासियोंसे राजाको पहिलेसे मिलगई।

सबकी सब राणियां उस दरबार गृहको प्रविष्ट होगईं। और पंक्तिबद्ध खड़ी हुईं, फिर एक २ राणी भेंट समर्पण करने लगी।

एक राणी निंबू लाकर भरतके चरणमें समर्पण कर अलग जाकर सुवर्ण बिंबके समान खड़ी होगईं।

दूसरी नीलांगी नील कमलको समर्पणकर अलग जाकर इंद्र-नील मणिके बिंबके समान खड़ी होगईं।

एक राणी लाल कमलको समर्पण कर भरतके बाये तरफ माणिक की पुतलीके समान खड़ी रही।

एक राणी चपाके फूलको अर्पणकर स्त्रियोंके बीचमें सिर गईं

एक कृष्ण वर्णकी राणी अपने करकुशलसे रचित पुष्पमालाको लाकर भरतको उपहारमें देने लगी । जैसे रतिदेवी ही काम देवको उपहार देरही हो ।

जिस प्रकार रति देवी कामदेव को पुष्पके खड्ग व बाण भेंट में देती है उसी प्रकार कोई राणी श्री भरतको केवड़ेके फूल लाकर समर्पण करने लगी ।

एक जवान राणी पहाड़ी कमलको भरतके चरणमें रखकर अलग जाकर बहुत विभवसे खड़ी होगई ।

एक राणी लज्जित होकर सामने ही नहीं आरही थी । सब के पीछे २ जा रही थी । उसे दूसरी राणी हाथ धर कर लाई व उसके हाथसे भेंट दिलाई ।

एक राणी डर डरकर आई । व जिस समय भेंट समर्पण करने लगी उस समय उसके हाथका जाईका फूल एकदम नीचे गिर गया । तब बहुत लज्जित होगई । दूसरी राणियां उस समय हंसकर कहने लगी कि यह भेंट नहीं । पुष्पांजलि है ।

एक मुग्धा राणी लज्जित होकर आई । मल्लिका पुष्पको समर्पण करते समय वह पुष्प हाथसे सरककर पड़ गया । वह और भी लज्जित हुई । भरत कहने लगा कि इतना लज्जित होने की क्या जरूरत ? पुष्प पड़ा तो क्या हुआ ? हमारे ऊपर ही पड़ा न ? लज्जित न होना ।

एक राणीने पादरी पुष्पको लाकर भरतके चरणमें रखा । तब चक्रवर्तिने पैरसे उसको जरा सरका दिया ।

तब पण्डिता कहने लगी कि राजन् ! आपने ठीक किया । क्या परदार सोदर भरतके पास पादरी आसकता है क्या ? आपने पैरसे लात मारा तो बहुत ठीक किया । ऐसा कहकर राजा को थोड़ा हंसादिया ।

राजन् । तुम्हारी खिया अत्यधिक मीलवती है । उनके तरफ यदि पादरी आया तो उसको पकड़कर तुम्हारे पास लाई । तुम्हने उसे हात मारकर दण्ड दिया यह उचित ही किया ।

इतनेमें दूसरी राणी आकर आम्रफलको समर्पण कर एक और रखी होगई । एक राणी जो मोतीके हारको पहनी हुई थी वह अपनी भेंट समर्पण करने लगी ।

एक राणी अपने हाथमें माणिक्य रत्नको ले आकर भरतके हाथमें देती हुई नमस्कार करने लगी ।

दूसरी राणी मोतिके एक हारको बहुत भक्तिके साथ भरतके हाथमें रखकर प्रणाम करने लगी ।

इतने में पण्डिता विनोदसे कहने लगी कि राजन् ! लोकमें मुखसे मुख स्पर्शकर चुंबन देनेकी पद्धति तो है । परंतु यह आश्चर्यकी बात है कि दोनों हाथ परस्पर स्पर्शकर चुंबन देते हैं ।

इस प्रकार चांदीके फूल, कई सोनेका फूल, आदि अर्पण कर अपने २ स्थानमें खड़ी हो गई ।

पंक्तिबद्ध स्थित वे राणिया उस समय देवोंगनाके समान मालुम होती थी ।

राजा भरतने सबको एकदफे देख लिया । और कुछ देर बाद हाथके इशारेसे सबको बैठनेके लिये कहा । तब पतिकी आज्ञा पाकर सबकी सब वहां बैठ गई ।

वहा मृदु गादी बिछी हुई थी । उसपर राणिया बैठ गई । पासमें ही पण्डिता भी बैठ गई । एवं गायकी जो आई हुई थी उनको भी इशारा किया तो वे भी अपने स्थानमें बैठ गई ।

उस समय वह काम देवका दरबार मालुम होरहा था । भरतके सिवाय वहा कोई पुरुष नहीं था । चामर ढारनेवाली उन तरुणियों के बीच भरत अत्यन्त सुन्दर मालुम हो रहे थे ।

इतनेमें भरतने गायकियों के तरफ अपनी दृष्टी दौड़ाई ।
इतनेमें गायनका आरंभ हुआ ।

कमल रसको खींचनेवाला भ्रमर जिस प्रकार उसीमें गुंग होकर
गूजता है उसी प्रकार गायन कलामें प्रवीण गायकियां गाने लगी ।

उनकी दृष्टि राजाकी तरफ, स्मरण रागकी तरफ, हाथ वीणा
के तारपर इन बातोंमें एकाग्रताको पाकर गारही थी ।

प्रातःकालमें बहुतसी पक्षियां सूर्यके सामने जिस प्रकार मधुर
ध्वनि करती हैं उसी प्रकार राजा भरतके सामने वे दासिया उप-
स्थित थी ।

सबसे पहिले उनलोगोंने उदय रागको गाया । इतने अच्छी
तरहसे कि उस समय यदि देवेंद्र भी वहासे निकलता तो वहीं ठ-
हर जाता । अर्थात् बहुत उत्तम रीतिसे गारही थी ।

मालुम हो रहा था कि उस समय एक दफे वे
गायन समुद्र को प्रवेश होकर फिर उसमें डुबकी लगाकर
आरही हो ।

नाभिसे उस स्वरको उठारही थी । फिर उसे हृदयमें लाकर
फैलाती थी । फिर सुंदर कंठमें ध्वनित कर बाहर निकालती थी ।
सचमुचमें श्रीदेवी का मंगल गान मालुम हो रहा था ।

उन गायकियोंने उदयरागमें गाकर फिर देवगांधारि, भूपाळि,
धन्यासि, वेळावलि, सौराष्ट्र आदि शुद्ध रागोंके आश्रयकर वहा-
पर गायन किया ।

केवल गायन ही नहीं उसके साथ जो हाव, भाव, विलास,
विभ्रम, आदि अनेक क्रियाओंको भी करती जाती थी । सुननेवा-
ली दरबारकी सभी स्त्रियां सिर झुल रही थीं ।

जिस समय वीणाके तारको वह उगलीसे ठोंक रही थी उस
समय भरत मनमें विचार रहे थे कि यह कुशल गायकी इस -

ससारको नीरस समझकर उस बातको प्रकट करनेके लिए यह क्रिया कर रही है।

स्वर मंडलसे जब वे गायन कर रही थी उसे यदि सुरमंडल भी सुनता तो मुग्ध होजाता फिर परमण्डलको जीतनेमें समर्थ भरत उसपर संतुष्ट क्यों नहीं होगा। इतना ही नहीं। वह कर्मरूपी अरिमण्डलको जीतने के लिये भी सर्वथा समर्थ है।

सुननेवाले कहते थे कि इनके सामने, किन्नरी, विद्याधरी व अप्सराओंकी किमत क्या है? भिन्न व अभिन्न भक्ति युक्त किन्नरि वाद्यसे भी उन्होंने सभाको मोहित कर दिया।

इसमें आश्चर्य भी क्या बात है? वे गायक्रिया सामान्य नहीं थी। भरत चक्रवर्तीके गायन तालीममें पली हुई थी। इस लिये सुननेवालोंको अत्यंत मोहको उत्पन्न करनेके लिये उसमें किस बात भी कमी होगी।

सबसे पहिले अरहत भगवंत बादमें सिद्धपरमेष्ठी एवं मुनिगणोंको बहुत भक्तिसे स्मरण कर, तदनंतर भोग व योग विचारको मिश्रकर गाने लगी।

क्यों कि वे अच्छीतरह जानती थी कि भरतके मनमें क्या है? वह भोग योग दोनोंको हृदयसे पसंद करता है। उसीको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे भोग व योग विचारको उन्होंने निम्न लिखित प्रकार गाये।

क्या सुखका अनुभव करना क्या सरल है? उसके लिये बड़े भारी कुशलताकी जरूरत है। इह लोक् और परलोककी चिंता रखनेवाला चतुर है। सामनेके सर्व परिस्थितियोंको भी जानना चाहिये। और अपनेको भी जानना चाहिये। वही कुशल है।

आत्मज्ञानी को तीन आंखें होती हैं अथवा जिसको तीन नेत्र हैं वह इस लोकमें विजयी होता है। दो आंखोंसे तो वह लोकको देख सकता है। परंतु आत्माको उन आंखोंसे नहीं देख सकता है। उसके लिये तीसरा ही ज्ञानरूपी नेत्रकी जरूरत है। उस ज्ञानरूपी नेत्रसे वह आत्माको देखता है। इसलिए त्रिनेत्रीको ही सुख की सिद्धि होती है। सबको नहीं।

वह विवेकी तरुणी स्त्रियोंके बीचमें भी रहे। और आत्मरति रूपी क्षीर समुद्र में भी रहें। अनेक विषयवासनावोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवकी प्राप्तिकेलिये उद्योग करना चाहिये। सुखकी सिद्धि उद्योगी पुरुष पुंगवोंको नसीब हो सकती है। आलसियोंको वह क्यों मिलेगी ?

एक दफे वह उत्तम स्त्रियोंसे वार्तालाप करें। उधर फिरकर सरस्वती (शास्त्र) से वार्तालाप करें। परसतियोंमें मौन धारण कर मुक्ति सतिका प्रति ध्यान रखें। इस प्रकार उस विवेकी को चतुर्मुख रहे।

कमलाक्षी स्त्रियोंके चित्त व अपने चित्तका अंतर जो समझनेमें समर्थ है उसीको आत्मसिद्धि है। उसे अर्ह कहते हैं। जिसमें इस प्रकारकी शक्ति है वही श्रीमंत है। वही प्रभु है। ऐसे श्रीमंतोंको ही सुखसिद्धि होती है। गरीबोंको नहीं होती।

जो लोग शरीर संबंधी सुखमें पागल होकर आत्मसुखके स्वादको नहीं लेते हैं और इन्द्रियके सुखको ही भोगते हैं सचमुच में वे बड़े भारी भूल करते हैं। उनकी गति ठीक वैसी ही है जैसे कोई पागल मुसेको बचाकर रखकर चावलको फेंक रहा हो।

उसी प्रकार यह अज्ञानी भी सार सुखको छोड़कर असार इंद्रिय सुखको ग्रहण करता है।

लोकमें असमर्थ मनुष्य गुणोंकी प्राप्तिके लिये बहुत कोशिश

करता रहता है। मुझे अमुक गुण चाहिये। धन चाहिये। शक्ति चाहिये इस प्रकार लोग रात दिन मटपट किबा करते हैं। परन्तु उनको प्राप्त नहीं होते। किन्तु आत्मयोग धारण करनेवाले योगियोंके पास से यदि वे उन गुणों को धक्का देनेपर भी वे जाते नहीं। और वे महागुण उन्टा उम व्यक्तियों अपने आप आभय पानेको आते हैं।

जिसके हाथमें पारम या बिनामणिरत्न है उसे संवत्तियोंको प्राप्त करने के लिये क्या कठिनता होगी?। इसी प्रकार जिसके हाथ आत्मानुभव रूपी रत्न आगया उनको ऐंसे कौनसे पदार्थ हैं जो नहीं मिलसकेंगे। तीन लोक ही उसकी मुट्ठीमें हैं ऐसा समझना चाहिये।

जिसने आत्मानुभवको प्राप्त किया उसे भवभवमें भोग मिलेगा। तीन भव, चार भव, दस भव, जबतक भी वह संसारमें रहेगा बहुत सुखके साथ रहेगा। तदनंतर उस भवका नाश कर कैवल्य सुखको प्राप्त करेगा। इस आत्मानुभवके बराबरी करनेवाला भाग्य क्या कोई और है? नहीं। वह सबसे बड़ा भाग्यशाली है।

वह आत्म विनोदी यदि स्वर्ग लोकमें जाकर जन्म लेता है तो देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले सौंदर्यको प्राप्त करता है। यदि भूलोकमें आकर जन्म लेता है तो वह कामदेव सदृश सुन्दर होकर जन्म लेता है।

स्वयं वह कुछ चाहता है। परन्तु सौभाग्य तो अहमहमिका रूपसे उसके आभयको पानेके लिये स्वयं आते हैं। वह सौभाग्यकी इच्छा नहीं करता। इसलिये वे भी आते हैं। आत्म रसिकके मनमें लोककी चिन्ता नहीं रहती है। फिर भी लोक सब उसकी चिन्ता करता है। लोकके तरफ उसका उप-

योग नहीं होता है। परंतु आश्चर्य है कि लोक के विचारमें उसी-का ध्यान रहता है।

जो आत्मविवेकी है वह अपने सामने कोई स्त्री एकदफे भी निकल जाय तो उसके हृदयकी बात समझ लेता है। जो स्त्रिया पुरुषोंको फांसनेमें प्रवीण हैं उनको हराकर अपने पीछे फिराता है। परंतु उनकी ओर उसकी उपेक्षा रहती है।

थोडासा मंद हास करने मात्रसे उन स्त्रियोंके हृदयमें अपार आनन्द उत्पन्न करता है। परन्तु उन स्त्रियोंको यह पता नहीं है कि आत्मरसिकका इन्द्रिय और आत्मा अलग २ है। वह इन्द्रिय से हंसता है। आत्मा से नहीं। उसकी आत्माको बाहरकी बातोंसे जाननेवाले कौन है ?

कभी २ वह आत्मज्ञानी मुग्धा स्त्रीको मोहन कला सिखाकर उसे विदग्धा (चतुर) बनाता है। कभी २ उस चतुर स्त्री को भी अपने वचन चातुर्यसे मुग्धा बना देता है। जिस समय फिर उसे मौन रहना पड़ता है।

स्त्रियोंके साथ विशेषरूपसे वह सरस, हास्य वगैरह करनेको उद्यत नहीं होता। कदाचित् किसी समय वैसा करें तो उसमें विरसता को भी आने नहीं देता। उस हास्यालापसे उन स्त्रियों को अपने वंशमें कर लेता है। इतना सब होते हुए भी अपने आत्मपरिणतिमें वह प्रमाद नहीं करता है। उसमें बहुत सावधान रहता है। यह उसमें खूबी है।

वह किसी के प्रति क्रोधित नहीं होता। और न क्रोधित होना वह जानता ही है। न वैसी इच्छा कभी उसे होती है। यदि थोडासा क्रोधित हुआ तो उसी समय उस क्रोधको भूल जाता है। और ज्ञान प्राप्ति कर लेता है। जिस प्रकार पानीको तपाया जाय तो वह जैसे जल्दी ठण्डा होजाता है उसी प्रकार उसे मंदकपाय होजाय तो भी जल्दी शांत होजाता है।

स्त्रियोंके साथ प्रेमव्यवहार करे तो [नग्नहति दन्तहति आदि कर विशेष आसक्त नहीं होता। कदाचित् करे तो दूसरों को वह है कि नहीं यह भी मालुम नहीं होपाता है।

स्त्रियोंके साथ वह प्रणय कलह कभी नहीं करता है। यदि कदाचित् करे तो भी क्षणभरमें उससे पलटकर गभीरतामें रहता है। यह निष्पाप भोगियोंका लक्षण है।

स्वयं अपने अभिमान, गभीर आदि गुणोंका पूर्ण ध्यान रखकर वह आत्मविवेकी चलता है। उसी प्रकार उनकी स्त्रिया भी आचरण करती हैं। उसकी लीला ठीक वैसी ही है जैसे कोई हाथी जंगलमें हथिनियोंके बीचमें रहकर खेल कूद कर रहा हो।

यदि किसी एक स्त्रीके प्रति उसका अगर विशेष प्रेम भी हो तो उसे बाहर किसीको बतलाता नहीं। एक पुरुष एक पत्नीके साथ जिस प्रकार रहता हो वह उसी प्रकार अनेक पत्नीयोंके साथ समदृष्टिसे रहता है।

स्त्रियोंको आकर्षण भी करता है। उनके प्रति प्रीति भी करता है। उन स्त्रियोंकी इच्छाको नित्य पूर्ति करता है। और उन्हें आनंद उत्पन्न करता है। एवं उन्हें हरतरहकी नीति, रीतिको सिखाता रहता है। एवं वीव बीचमें अपना अनुभव करता रहता है।

वह आत्मज्ञानी बहुतसे जालोमें फंसा हुआ है ऐसा देखने वालोंको मालुम होता है परंतु वह किसीमें फंसा हुआ नहीं है। काम सेवनमें मदोन्मत्त होगया हो ऐसा मालुम तो होता है। परंतु कभी वैसा होता नहीं। ठगोंके समान उसका आचरण दिखता है परंतु सचमुचमें उसमें धोकेबाजी नहीं है। यह जिसने अपनी आत्माका अनुभव किया है उसकी लीला है। अदर एक और बाहर एक रहनेपर भी वह आत्म कल्याणका साधक है इस लिये मायाचार नहीं।

एकदफे वह किलेके समान बनता है। फिर कभी ग्रामके समान बनजाता है। कभी फूलके वगीचे के समान रहता है। जिस समय उन स्त्रियोंको संसर्ग सुखका अनुभव कराता है उस समय उनको ऐसा मालूम होता है कि शायद स्वर्ग ही पुरुषके रूपमें आया है।

जिस प्रकार कोई जवान मनुष्य बच्चों के साथ अनेक प्रकारसे सरस वार्तालाप विनोद आदि करता है परंतु वह कुछ ही समय के लिये हुआ करता है इसी प्रकार यह आत्मज्ञानी उन रमणियों के साथ विनोद परिहास आदि करता रहता है फिर भी इसके मनमें भिन्न ही विचार रहता है। वह अपने को नहीं भूल जाता है।

शहर के रहनेवाले चालाक लोग गांवड़ेके रहनेवालोंके साथ अनेक प्रकारसे विनोद करते हुए कहीं जा रहे हों उसी प्रकार मोक्षको जानेवाले इस पथिकका यह मार्ग में अनेक प्रकारसे मोह-लीला है।

बाहरसे जो लोग उसका वर्ताव देखते हैं उनको मालूम होता है यह नीति मार्ग नहीं है यह मार्गच्युत हुआ है। परंतु वस्तुतः वह सन्मार्ग में ही रहता है। आत्मज्ञानीकी चाल बहुत विचित्र है। उसके मनकी बात कौन जान सकता है। उसके हृदयको एक मात्र जिनेंद्र भगवंत ही जाननेको समर्थ हैं।

बड़े २ साड, हाथी वगैरह जिस मार्गसे जाते हैं उनके पाद चिन्हको हरएक जान सकते हैं परंतु हवाके भी पाद चिन्ह को कोई पहिचान सकता है क्या ? नहीं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंकी चित्त प्रवृत्तिको जान सकने पर भी तत्वशील विवेकी के हृदयको जानना साधारण विषय नहीं।

वे गायकियां कहने लगी कि यह हमारे भरत चक्रवर्ती की

दिन चर्या है। और जगह यह विषय नहीं पाया जायगा। भरत में भी इम प्रकार की प्रवृत्ति की प्राप्ति क्यों हुई। यह उन्होंने पूर्वजन्ममें जो मनःपूर्वक आत्मभावना की उसका फल है। इस-लिये आज आदर्श महापुरुष कहलाते हैं।

इतनेमें उपर्युक्त विषयको सुनकर भरतको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उभी समय उनको पासमें बुलाकर अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्र आभरण वगैरह देकर उनका सत्कार किया।

एवं कहा कि “शाहवास! तुम लोग बहुत अच्छी तरह गाईं”। इस वचनको सुनकर वे स्त्रियां और भी अधिक प्रसन्न हुईं। फिर सम्राट के पादकमलोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार कर अपने अपने स्थानमें जाकर बैठ गईं।

चारों तरफसे कमलोंके द्वारा घिरकर बीचमें बैठा हुआ ब्रह्मा जिम प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार वह भरत उस समय उस स्त्रियोंके दरबारमें बैठे २ शोभाको प्राप्त हो रहे थे।

भरतको इम प्रकारका वैभव क्यों प्राप्त हुआ? वह इस प्रकारकी भावनामें निरत रहते हैं कि हे आत्मन्! तुम संसारके भयमें जो कोई भी प्राणी तुम्हारे पास शरणागत होकर आवे उनकी रक्षा करने के लिये वज्रके पींजड़ेके समान हो कोई उसे तोड़मोड़ नहीं सकता। और तुम स्वाभाविक आभूषणोंसे युक्त हो अतएव सहज सुंदर हो। अनंत सुख तुममें है। उज्ज्वल ज्ञान ज्योतिको धारण कर रहे हो। इस लिये मेरी रक्षा करनेमें तुम सर्वथा समर्थ हो। मेरी रक्षा करो। मेरे हृदयमें रहो। आत्मन्! सचमुचमें तुम ससारको नाश करनेवाले हो। मुझे भी सिद्धि की ओर लेजाओ।

इस प्रकार सतत भावनामें रहनेसे सम्राट भरतने असाधारण वैभवको प्राप्त किया।

इति राजसौध संधि

अथ राजलावण्य संधि

जय भरत अंतः दरबार में बहुत वैभव के साथ विराज रहे थे तब एक गायत्री ने पण्डिता के कानमें कुछ कहा ।

तब वह पंडिता एकदम उठी और सम्राटको हाथ जोड़ कर कहने लगी कि स्वामिन् ! मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है । आशा है आप आज्ञा देंगे ।

“ अच्छा ! कहो । ” भरतने कहा ।

आपकी सेवा में मैं एक नवीन काव्यको उपस्थित करना चाहती हूँ । कृपया आप उसे सुननेका कष्ट करें । ऐसा पंडिताने कहा ।

तब विचार कुशल सम्राट भरत कहने लगे कि उस काव्यको किसने रचा है । उसमें किमका वर्णन है । उस नवीन कृत्तिके संशोधक कौन हैं ?

दूसरोंने उस काव्यकी रचना नहीं की ? दूसरोंका वर्णन उसमें है नहीं । दूसरे उसे संशोधन करनेके लिए पात्र नहीं । हे राजन् ! वह रचना तुझारी महलमें ही रची गई है । और उसमें तुझारा ही वर्णन है । उसे तुम ही संशोधन करो यही दासीकी प्रार्थना है ।

महलमें जो रचना नवीन रूपसे रची गई है उसको करने वाले कौन समझें । रचना करनेवालोंका नाम तो बताओ । इस प्रकार मंद हामके साथ राजा बोले ।

राजन् ! महलमें सौ० कुसुमाजी राणीने अपने मनकी बात को एक तोतेके साथ कही । उसे पढोसमें रहनेवाली सौ० सुमना जी राणीने सुनी व चरित्रके रूपमें रचना की ।

सुमनाजी राणीके नहलको कल लीला विनोद के लिये अमनाजी आई हुई थी। उस समय कुसुमाजी अमृत वाचक नामक अपने तोतेके साथ बातचीत कर रही थी। तब दोनों राणियोंने उसको जोड़कर चरित्रका रूप डेरिया।

अमनाजि सुमनाजीसे यह कहने लगी कि कुसुमाजीने जो कहा सो बहुत अच्छा हुआ। तुम बहिन! उनकी रचना करो। मैं उसे अच्छी तरह लिखती जाती हूँ।

फिर वैसा ही तैयार हुआ काव्य यह है। राजन्! आप इसे सुनें ऐसा पण्डिताने कहा।

तब भरत कहने लगे कि अच्छीबात! मैं उसे सुनूंगा। किमी से उसे वाचनेके लिये कहो। तुम बैठी रहो। ऐसा कहनेपर वह पण्डिता उस पुस्तकको किसी एक लीके हाथमें देकर उसे वाचनेको कहने लगी व स्वयं बहापर पानमें बैठ गई।

इतने में उस समामें कुसुमाजी राणी जो बैठी हुई थी एक-दूसरी उठी व साम्राट से प्रार्थनाकर कहने लगी कि आज दिनमें मेरा एक व्रतविधान है। मुझे अभी मंदिरमें जानेका है, इसलिए मैं अब जावूंगी ऐसा कहकर जाने लगी।

इतनेमें राजा हंसकर कुछ धोळने लगे। “अच्छीबात! तुम जा सजती है। परन्तु तुम्हारे व्रतविधान की निर्विघ्न परिपूर्णताके लिये यह सुवर्ण कंकण को देता हूँ। लेती जावो, चुपचाप क्यों जाती हो। इसे लेजावो।” ऐसा कहाकर यों ही हाथको आगे बढ़ाया।

तब कुसुमाजी इस बातको सबी समझ कर पासमें आई। और कंकण लेनेके लिये उसने हाथको आगे बढ़ाई। इतनेमें हाथी जिस प्रकार अपनी हथिनीके हाथ को धरता है उसी प्रकार भरत ने उसके हाथको धर लिया।

प्रिये ! तू किसे ठग रही है ? मुझे अज्ञात रखकर तुझे आज व्रत किसने दिया है ? रहने दो ! यहां बैठी रहो ! तुझे मेरा शपथ है । ऐसा कहकर भरतजीने उस कुसुमाजीको अपने पासमें बैठा लिया ।

तुमने जो चरित्र दिल बहलानेके लिये तोतेके साथ कहा उसको सुनकर तुम्हारी बहिनोंको हर्ष हुआ । इमीलिये उन्होंने उसकी रचना की । अब मैं उसे सुनकर अपना दिल नहीं बहलाऊँ क्या ? ऐसे आनन्दके समयमें क्यों उठकर जाती हूँ ? विचार तो करो ।

हा ! मैं तुम्हारे उठकर जानेका कारण समझ गया हूँ । तुमने जो एकातमें तोतेके साथ बातचीत की थी वह बाहर पड़ गई है इस शर्मसे उठकर जा रही है न ? अपने हृदयकी बात दूसरोंको मालुम न होने देना यह कुल स्त्रियोंका धर्म है । परंतु यह तो सोचो कि यहांपर दूसरे कौन हैं ? यहां तो सब अपने ही लोग हैं । फिर तुझे इतना संकोच क्यों ? चुप चापके यहां बैठी रहो । और इस काव्यको सुना ।

पुनः भरतजी पंडितामे कहने लगे कि पण्डिता ! देखलीं तुमने ? कुसुमाजी कुसुमके गँदके समान किस प्रकार उल्ललकर जा रही थी ? “ राजन् ! देखली ! स्त्रियोंके हृदय की बात आप सरीखे और कौन देख सकता है । स्वामिन् ! उमे अप ना गुप्त वार्तालाप दूसरोंके सामने आया इस बातकी लज्जा हुई । यह सबजन स्त्रियोंका धर्म है । आपने जो उसे समझाया सो बहुत अच्छा हुआ । ” पण्डिताने कहा ।

तब सम्राट् कहने लगे कि यह तो जानेदो ! पर यह तो देखो कि एक व्रतके बहानेसे मुझे किस प्रकार ठगरही थी ?

तब पण्डिता कहने लगी कि स्वामिन् ! वह तुम्हें जीतने का

स्पर्श न करके जो निराधार खड़े हैं ऐसे आदिनाथ स्वामीके पाद-
कमलोंको नमस्कार हो ।

जिनको शरीरका भार नहीं, ज्ञान ही जिनका शरीर है और
जो तनुवातवलय के बीचमें स्थित सिद्ध शिलामें विराजमान हैं
ऐसे सिद्ध परमेष्ठीयोंके पादकमलोंको मैं अन्तरंग से स्मरण
करती हूँ ।

तीन कम नव करोड़ मुनीश्वरोंको भावशुद्धिपूर्वक मैं नमस्कार
करती हूँ । तथैव शारदादेवीको प्रणाम करती हूँ । और भेदाभेद
रत्नत्रयकी मैं सदा भावना करती हूँ ।

सम्राट् भरतके हृदयमें जो प्रकाश रूपमें रहनेवाला परमात्मा
है उसे मैं शुभचिन्तसे नमस्कार करती हूँ ।

कमलको स्पर्श न कर आकाश प्रदेश में खड़े हुए हमारे
भामाजी (श्वसुर) को नमस्कार कर भावाजी (पतिदेव) को
बहिन अमराजी की आज्ञासे इस चरित्रको वाचकर सुनावूंगी ।

कुसुमाजी राणीने जो अमृत वाचक तोतेके साथ विनोद-
वार्ता की थी उसे एक चरित्रके रूप देकर यहां वर्णन किया
जायगा ।

कुसुमाजी कहती हैं कि हे अमृतवाचक ! सुनो ! भरत-
चक्रेश्वरने सबको मोहित करनेवाले इस सुंदर रूपको किस पुण्यसे
प्राप्त किया । पूर्वमें इसके लिये उन्होंने कौनसे व्रतका आचरण
किया होगा ? इस जवानीमें इस सौंदर्यको पाकर स्त्रियोंके बीचमें
रहनेपर भी अपने हृदयको न बताकर चलनेवाली गंभीरता वह
उनको किससे प्राप्त हुई । लोकमें यौवन, संपत्तिको पाना कठिन
नहीं है । परंतु उसके साथ विनयादिक सद्गुणों को प्राप्त करना
यह कठिन है ।

आकाशमें रहनेवाला एक ही सूर्य जल भरे हुए अनेक घड़ेमें

जिस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार यह एक ही भरत अनेक स्त्रियोंके हृदयमें प्रतिबिम्बित होता है ।

उत्तम तपोधन जिस जंगलमें रहते हैं वहा क्रूर मृग जो रहते हैं वे अपने परस्पर वैर विरोध छोडकर रहते हैं उसी प्रकार राजर्षि भारत जहां रहते हैं वहापर रहनेवाली स्त्रिया सवत मत्सरको छोडकर रहती हैं । यह आश्चर्य की बात है ।

हम लोगोंके मायके को मुलाकर रात दिन अनेक प्रकारके मिष्ट व्यवहारोंसे हम लोगों को आनन्द उत्पन्न करनेवाला साहस उसमें कहासे आया ?

लोकमें एक व्यक्ति को एक दफे देखकर पुनः देखनेपर पहिले के समान नहीं रहता है । वह पुराना हो जाता है । परंतु आश्चर्य है कि यह भारत प्रतिनित्य नये नयेके समान ही मालूम होता है

अमृत वाचक ! पट्खण्डके राज्यको पालन करने वाले हमारे पतिदेवको मैं मकुटसे लेकर पादतक वर्णन करूंगी तुम सुनो ।

इस प्रकार कहकर उस कुसुमाजीने सम्राट् भरतके प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका वर्णन बहुत खूबीके साथमे किया । वह जिस समय चक्रवर्तीका वर्णन कर रही थी उस समय उसके हृदयसे पतिदेवके प्रति भक्तिरस टपक रहा था ।

प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका वर्णन करनेके बाद कहने लगी कि अमृत वाचक ! ऐसा मत कहो कि भरतजी मेरे पति हैं इसलिये मैंने उसकी प्रसंसा की है । परन्तु तुम ही विचार करो कि जिसके शरीरमे मल मूत्र नहीं ऐसे पवित्र शरीरवाले चक्रवर्तीका सौंदर्य किस प्रकार होगा ?

सम्राटको देखकर यह हक्का बक्का हो गई इसलिये इसने इस प्रकार चक्रवर्तीका वर्णन किया है ऐसा मत कहो । वह तो प्रथम तीर्थंकरका प्रथम पुत्र है । उसका वर्णन पूर्णरूपसे

वर्णन करनेके लिये क्या मैं समर्थ हूँ ?

वह सब मनुष्योंका स्वामी है । व्यंतीरोंका अधिपति है ।
विद्वानोंका राजा है । उसका वर्णन कौन कर सकता है ।

सब राजाओंका वह राजा है । बुद्धिमानोंके समूहका वह
स्वामी है । तीन लोक मे प्रसंशाके योग्य हमारे पति वही एक है ।

उनके अन्दर जो गुण हैं उनके अंतको पाकर वर्णन करनेके
लिये मैं सर्वथा अममर्थ हूँ । तथापि अमृत वाचक ! यह तो केवल
उनके गुणोंकी सूचना तुम्हे दी है । ऐसा तुम समझो ।

परन्तु ध्यान रखो, कि मैंने जो २ बातें कहीं हैं उनको अपने
मनमे रखो । दूसरे किसीको कहना नहीं । तुमको मेरे प्रिय समझ
कर तुम्हारे साथमे कहा है और किसीको मैं कहनेवाली नहीं ।

अमृतवाचक ! तुम अभी तक चुप चापके सुन रहे हो ।
परन्तु कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो । मैं जो कुछ भी कह रही हूँ
सच है या झूठ ? तुम्हारे मनमें ये सब बातें पटती हैं कि नहीं ?
बोलो तो सही इस प्रकार आग्रहसे पूछने लगी ।

तब वह अमृतवाचक बोलने लगा कि वहिन ! तुमने जो
कुछ भी रहस्य कहा वह मेरे चित्तमें आता ही नहीं । आया तो
भी मैं उसे कह नहीं सकता । पक्षियोंकी जानिमें जिसने जन्म
लिया मुझे वह चातुर्य कहाँसे आयगा वहिन !

लोकमें मैं सबकी बोल व चालको देख सुनकर उसे सीख-
सकता हूँ परन्तु वहिन ! तुम व तुम्हारे पुरुष की चाल व बोल
कुछ विचित्र ही है । वह किसी दूसरेको आ नहीं सकती है । इस
लिये मैं चुपचाप के सुनता जा रहा था । अब तुम बहुत आग्रह
कर रही है इस लिये मुझे जो कुछ भी समझमें आया उसे कहता
हूँ । सुनो !

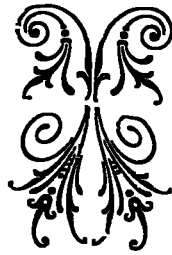
पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतने उस प्रकारके अंगलावण्यको

या अलौकिक सौंदर्यको किस प्रकार प्राप्त किया ? उसके लिये कैसे उद्योग किया था ?

वह इस जन्मके उद्योगका फल नहीं है । पूर्व जन्मसे ही उन्होंने इसके लिये बड़ी तैयारी की थी । वह निरंतर भावना करते थे कि परमात्मन् ! तुम भयंकर संसाररूपी जगलको जलानेकेलिये अग्निके समान हो ! उत्तम केवलज्ञानको धारण करनेवाले हो ! भंगलस्वरूप हो ! तुम्हारा धैर्य मेरुके समान अचल है । इसलिये संसार के नाश करने के लिये मेरे अन्तरंगमें तुम्हारा निवास रहें । मुझे उसके लिये सामर्थ्य प्रदान करो ।

इसका यह फल है ।

इति राजलावण्य संधि.



अथ शुकसलाप संधि

(सिद्धपरमात्मन् ! भक्त्योंके हृदयको आप सतोष उत्पन्न करनेवाले हैं और तपोधन मुनिराज आपकी सेवामें मदा निरत रहते हैं. इसलिए हमें भी आपकी सेवाके योग्य सुबुद्धि दीजियेगा.)

वह्नि ! कुसुमाजी ! सुनो ! तुम्हारे सामने मैं कहनेकेलिए समर्थ तो नहीं हूँ फिर भी तुमने आग्रह किया है । तुम्हारी आज्ञाको उहंघन करना मेरा काम नहीं है । इसलिए मेरे दिलमें जो बात आई है तुम्हें कहूँगा ।

वह्नि ! तुम जितनी भी बात तुम्हारे पतिके पारमें फट चुकी हो वह बिलकुल सत्य है । उसमें जग भी अगत्य नहीं है । तीन छत्राधिपति भगवान आदिनाथके उग्रपुत्रकी वगधरी करनेवाले इन दश दिशाधोम कौन हैं ?

राजाधोम उसके वगधरी करनेवाले राजा लोकमें कोई नहीं है और तुम राणियोंकी वगधरी करने वाली स्त्रियाँ भी लोकमें नहीं है । इतना ही नहीं तुम्हारे साथ प्राप्तचित्त करने करनेवाले मेरे समान भी कोई नहीं ऐसा कहाजाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

जिम्हने उस पट्टपण्डाधिपतिसे जन्म दिया है वह यक्षरक्षती भी जगन्माता है । एवं तुमलोग वनकी गणिया होकर उत्पन्न हुई हैं इसके लिये भी पूर्वमें अतुल पुण्यका मंषादन किया होगा ।

उत्तम सनियोंके साथ उत्तम पुरुषोंका मिलाप उत्तम सुवर्ण के आभारणके बीचमें उत्तम रत्नकी जड़ावके समान मालुम होता है ।

वह्नि ! जवान स्त्री व जवान पुरुषका मिलाप सचमुचमें आम्रवृक्षपर लगी हुई मल्लिकाके समान है ।

सुंदर भक्तके साथ सुंदरी आपलोगोंका मिलाप अक्षोक वृक्षके साथ लगी हुई जाई की लताके समान मालुम होता है ।

भक्त चंदनके समान सुगंध है आपलोग कपूरके समान हैं ।

चंदन वृक्षपर लपटी हुई सुगन्धी लताके समान आपकी दशा है । पुरुषोंमें भरत रत्न है । स्त्रियोंमें आप लोग रत्न है । इसलिये आप लोगों की जोड़ी रत्न रत्न को मिलाकर बनाये हुए रत्न हा-रके समान मालुम होजाती है ।

लोकमें अनेक प्रकारके अनमेलपना पाये जाते हैं । यदि पति धार्मिक हो तो पत्नी नहीं रहती है । पति धार्मिक हो तो पति नहीं, पति बुद्धिमान् हो तो पत्नी मूर्खा, पत्नी बुद्धिमती हो तो पति बुद्ध, पति वीर हो तो पत्नी डरपोक, पत्नी शूर हो तो पति कायर, पति व्यवहार कुशल हो तो पत्नी भोली, पत्नी कार्य चतुर हो तो पति डब्बू इस प्रकारकी विलक्षणतासे संसार भरा पड़ा है । परतु बहिन् ! पतिपत्नियों की समानतामे तुम सरीखे प्रसंशा पानेवाले लोक में कौन हैं ? तुम लोगो में पतिके अनुकूल पत्नी, पत्नीके अनुकूल पति के गुण मौजूद है । सब लोग तुम्हारे पुरुषकी भी प्रसंशा करते हैं । और तुमलोगोंकी भी प्रसंशा करते है ।

सर्वकलाविशारद पुरुषको पाना यह स्त्रियोंका पूर्वजन्म में किया हुआ पुण्य समझना चाहिये । एवंच उन कलावोंमें प्रवृत्ति करनेकेलिये अनुकूल ऐसी स्त्रीका पाना उस पुरुषका भी महत्पुण्य समझना चाहिये लोकमें स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर अनुकूल प्रवृत्ति मिलना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है । इसके लिये अनेक जन्मोंका संस्कार भावना, व पुण्यकी आवश्यकता होती है । कुसुमाजी ! बहिन् ! मुझे यह कहनेमें हर्ष होता है कि तुम लोगोमें व भरतमें जो अनुकूल प्रवृत्ति है वह लोकमे आदर्शरूप है । अन्यत्र इस प्रकारका दृश्य देखनेको नहीं मिलेगा । बहिन् ! तुम लोगोने कितना पुण्य किया है । क्या व्रत पालन किया है । किस प्रकारकी शुभ भावना की है ? कह सकती है ?

बहिन् ! विद्वान् पति व विदुषी पत्नीका मिलाप सचमुचमे बहुत भीठा मालूम होता है । जिस प्रकार कि धीन का तार मिल कर भीठा स्वर निकलता हो । उनका उस प्रकारका योग हाथीपर सवार होनेके समान है । मूखोंका योग बैलपरकी सवारी है । विशेष क्या ? उन लोगोंकी जोड़ी साक्षात् कामदेव व रति देविकी जोड़ी है ।

बहिन् ! समयको जानना चाहिये, योग्यायोग्य विचार जानना चाहिये । अपने पतिके चित्तको देखना चाहिये । समय समय पर नूतन शृंगार करना चाहिये । यह उत्तम सुखियोंका लक्षण है ।

पत्रिका शृंगार पत्नीको प्रिय, प नीका शृंगार पतिको प्रिय, इस प्रकार के आचरण रखना यह स्त्रियोंका धर्म है ।

स्त्रियोंको प्रत्येक विषयकी चिंता की आवश्यकता है । गंभीरता । वे प्राप्त करें । उग्रता को दूर करें । बहिन् ! धीरता की है । आचार शीलोंका पालन करना उनका परमधर्म उत्तम भोगियोंका यह लक्षण है ।

२ । कामसुखको अत्यासक्त होकर नहीं भोगना चाहिये । अग्निकी तीव्र मंद आदिको जानकर जितने जरूरत हो भोजन करें तो हितकर होता है । नहीं तो अनेक प्र-
३ । की संभावना हैं । कामसुखको भी इसी प्रकार हिये । अतिकामसे दुःख होगा । यही उत्तम भोगियोंका

का मद, चढ़े उतना ही उसे भोगकर ठण्डा
री आदि तत्रोंसे उस का-

यदि ठीक

तौगमे पचकर अगीरके अवयवोंमें पहुँच जाय तो ठीक है । त्रावण स्तमन आदि प्रयोगकर उन आहारोंको पचानेका उद्योग करना यह सुख नहीं है दुःख है ।

नवयौवन शक्तिसे उत्पन्न काम सुख स्वर्गीय गंगाके जलके समान मीठा रहता है । घौतु पौष्टिक अनेक औषधियोंमें उत्पन्न मद्यमें भोगा हुआ भोग यह लवण मसुद्रके जलके समान है ।

स्वाभाविक शक्तिमें भोग न कर जो लोग औषधि आदिके बलसे भोगते हैं उनको आखेरको जाकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । इंद्रिय वर्गरह नष्ट होते हैं ।

बहिन् । यदि किसीको भूख न हो वह भोजन करें तो उसे जिस प्रकार अजीर्ण रोग जरूर होगा उसी प्रकार अपनी शक्ति व इच्छाको नहीं जानकर काम भोग करें तो अनेक रोग जरूर उत्पन्न होंगे ।

अपनी विवशताको देखकर जितनेमें वह मद्य उतर जाय वहा तक भोगने में शोभा है । अत्युत्कट भोग भोगनेपर महान् अहित करेगा । उमसे प्यास लगेगा, बुद्धि भ्रष्ट होगी । विधेय क्या ? वह सुख अपनेको शत्रु बनकर बैठता है ।

स्त्रियोंके साथ हान्य विलास विनोद वर्गरह करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये ।

संसर्ग सुख तो कुछ ही समयके लिये होना चाहिए । यदि पच गया तो वह सुख है नहीं तो महा दुःख है ।

बहिन् । अपने अतरंगको जानकर, इच्छाको देखकर व शक्तिको पहिचान कर जो कुशल पति पत्नी भोग करते हैं उनकी जय होती है । उन्हें आनन्द मिलता है । उनके चेहरेमें तेज रहता है ।

इंद्रियोंके वश स्वयं न बनकर उन मदीन्मत्त इंद्रियोंको ताबे

में लाकर भोगनेमें बड़ी शोभा है । वह सरस कविता है । शृङ्गार है ।

रतिक्रीडासे थककर बनाई गई रचना कविता आदि वेद्योंके शृङ्गारके समान है । सशक्त मस्तकसे उत्पन्न शब्दमाधुर्य, अर्थ गांभीर्य आदि गुणोंसे युक्त रचना ब्राह्मणीके शृङ्गारके समान हैं ।

बहिन् ! पति व पत्नी परस्पर एक दूसरेके चित्तको अपहरण कर भोगें तो उसमें बड़ी शोभा है । एक तरफा भोग, सुख नहीं है वह कंठका खड़ है ऐसा समझो ।

श्री पुरुष अंतरंग हृदयसे मिले तो मधुर फलको चखनेका आनंद आता है । नहीं तो कड़वा रस आता है ।

कुसुमाजी ! एक दूसरेके गुणपर मुग्ध होकर जो पतिपत्नी भोग बिछासमें रहते हैं उन लोगोंका सुख मार्ग इतना सरल रहता है जैसे कि जलके अंदर रहने वाले बड़े भारी पत्थरको उठानेमें कोई कठिनता नहीं होती । परंतु केवल धन, कनक आदिके कारणसे उत्पन्न प्रेम है उसमें कोई शोभा नहीं है । जमीनपर पड़े हुए पत्थरको उठानेके समान उनका मार्ग भी कठिन है ।

कुसुमाजी बहिन् ! तुम्हारे पति व तुमलोगोंका रूप समान है । उमर भी योग्य है गुणगण भी समान है । इन सब बातोंकी जोड़ी तुम लोगोंके अंदर प्राप्त हो गई है । इसीलिये तुम पतिपत्नियोंमें इतना प्रेम है । दापत्य जीवनकी सर्व सामग्री अविकल रूपसे तुमलोगोंको प्राप्त है ।

सम्राटने रूपसे तुमलोगोंको जीत लिया । मरस कलालापोसे तुम लोगोंके मनको प्रसन्न किया, वह राजाके रूपमें कामदेव है । इसलिये उसने तुम लोगोंका सर्वापहरण किया है ।

बहिन् ! मुझे मालूम होता है कि सभी राणियोंमें तुमपर सम्राट्को अधिक प्रेम होगा या तुम्हारा प्रेम उसपर अधिक होगा ।

अन्यथा इस प्रकार चक्रवर्ति की सुंदरता या अग प्रत्यंगोंके वर्णन करनेकी चतुरता तुममे कहासे आसकती है ।

जिस जगहपर मन प्रसन्न होजाता है वहीं कार्य की भी प्रसन्नता जाहिर होती है । और फिर तदनुकूल वचनकी प्रवृत्ति होजाती है । इसलिये हे सत्सतिकुलमणि ! तुमने अपने पसंदके पतिकी प्रशंसा की यह उचित हुआ ।

तुम क्या बोली । तुम्हारे पतिका प्रेम ही ऐसा है वह तुमसे बुलाये बिना नहीं रहसकता । ऐसा कौन स्त्री होगी जो पतिसे प्राप्त आनंद रसका वर्णन नहीं करेगी ? अपने पतिके कृत्यपर किसे हर्ष न होगा ?

कुसुमाजी ! लोकमें कष्ट पुरुषोंकी कष्ट स्त्रियों, निष्ठुर पुरुषों की निष्ठुर स्त्रियोंके बारेमें कितने ही बार सुना है वैसे उदाहरण रात्रिदिन हमारे सामने आते रहते हैं । परंतु शिष्ट पुरुषोंकी शिष्ट स्त्रियोंका वृत्त सुनने को ही दुर्लभ है । वैसे स्त्री पुरुष हमें देखनेको ही नहीं मिलते ।

बहिन ! तुम्हारे रग रगमें भरतेश का प्रेम भरा हुआ है । इसलिये तुम्हारा हृदय उसकेलिये समर्पित है । यह सच है कि नहीं यह तुमसे मैं पूछना नहीं चाहता, तुम्हारे वचन ही इस बातको स्पष्ट कह रहे थे ।

अपने पतिके कृत्यके प्रति सतुष्ट होनेवाली शीलवती स्त्रियोंको लोकमें कौन वर्णन नहीं करेंगे । बहिन ! मैं तुम्हारे शपथ पूर्वक कहता हूं कि मुझे सज्जन सत्तियोंके चरित्रमें बड़ा आनंद आता है । उसको सुनकर मेरा हृदय भर जाता है ।

इस प्रकार वह अमृत वाचक तोता कुसुमाजीको दापत्य जीवनके रहस्य कहने लगा ।

कुसुमाजी बैठी उस तोतेके रहस्य पूर्ण वचन व वाक्चातुर्यको

सुन रही थी। अपने मनमें ही विचार करने लगी कि इसने जो भी बात कहीं नवीन व रहस्य पूर्ण हैं। इससे मालूम होता है कि यह तोता नहीं है। पक्षियोंको जितना सिरावें उतना ही बोल सकती है। परंतु यह तो मुझे ही सिखाने लगगया है। और कलाको सिखा रहा है। यह तोता कभी नहीं है। या तो कोई व्यंतर इस शरीरपर प्रविष्ट होकर बोल रहा है या कोई देव। बाकी तोतेका चातुर्य यह नहीं।

हा ! इसमें पुरुषके शब्द नहीं हैं। स्त्री शब्दके समान हैं उसमें भी जवान स्त्रीके यह शब्द हैं। अथ यह युवती कौन है इस बातका पता लगाना चाहिये ऐसा विचार कर कहने लगी कि पक्षी ! तुझारे वचन सबके सब सत्य हैं परंतु तुझारा वेप सत्य मालूम नहीं होता है। इसलिये तुम अपने छोटे वेपको छोड़कर बड़े वेप को धारण कर मेरे साथ बोलो।

बहिन् ! आपने मुझसे छोटे वेपको छोड़कर बड़े वेप धारण करनेके लिए कहा है। परंतु यह मेरा वेप सत्य ही है। मेरा छोटा वेप तो वचनमें ही चला गया है।

देखो ! मेरे साथ इस प्रकार चालाकी करना ठीक नहीं है। तुम मेरी प्रिय सखी है। इसलिये अपने निजरूपको दिखलाओ। इस प्रकार कुमुमाजीने जोर देकर कहा।

इतनेमें उस तोतेके नीचे अनेक रत्नाभरणोंसे भूषित एक जवान स्त्री उठकर खड़ी हो गई। अपने छुपे हुवे रूपको अपने बुद्धिचातुर्यसे जाननेवाली राणीके कौशलपर वह देवी हंमने लगी।

सुंदरी ! तुम कौन है ? और यहा क्यों आई ? बोलो। राणी ने पूछा।

देवी ! मैं एक व्यंतर कन्या हूं, इधर उधर पर्वत जंगल व-गैरह में रहती हूं। लीला विनोदसे आकाश मार्गसे जारही थी।

तब बहिन ! तुम इस तोतेके साथ जो बोल रही थीं उन मन मोहक वचनोंसे आकृष्ट होकर यहाँ सुननेकेलिये आई हूँ । अलग खड़ी रहकर सुनती तो शायद तुम अपने मनकी बात मुझ से नहीं कहती इसलिये इस पक्षीके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुमसे बोल रही थी । तुम मेरे रहस्य को समझ गई । बहुत अच्छा हुआ । सचमुचमें तुम विवेकी भरतकी अर्धांगिनी है ।

बहिन ! रूप, यौवन, संपत्ति व बुद्धिचातुर्य आदिको प्राप्त करना कठिन नहीं है । परंतु इस प्रकारकी पतिभक्तिको पाना अत्यंत कठिन है । पुराणपुरुष सम्राटकी अर्धांगिनी होकर तुम ही लोगोंने उसे प्राप्त किया है । दूसरोंको वह पतिभक्ति कहासे मिलेगी ?

वह भरत जिनेंद्र भगवतके पुत्र है । तुमलोग जिनेंद्र भगवंत के पुत्रवधू हैं ! इसलिये तुमलोगोंका आचरण पुण्यमय है । यह सब किसी के लिये नसीब कैसे होसकता है ?

वह सम्राट मेरे लिये और कोई नहीं । वह लोभमें परनारी सहोदरके नामसे प्रसिद्ध है । इसलिये मुझे भी वह सहोदर भाई हैं । अब मैं उसे भाई के नामसे ही कहूंगी । देवी ! अभीतक तोतेके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुम्हें बहिन के नामसे सम्बोधन कर रही थी परन्तु अब मैं तुम्हें बहिन न कहकर भावीके नामसे कहूंगी ।

भावी ! मेरे भाईके प्रति तुमने जो असली प्रेम रखा है उसे देखकर मुझे चित्तमें अत्यंत हर्ष होता है । इसके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हारी सेवामें क्या भेंट समर्पण करूं समझमें नहीं आता ।

हमारे पुंभाई नवनिधिके स्वामी हैं । उसने तुम्हारे लिये इच्छित रत्नमय आभरणोंको दे ही रखा है । ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारे लिये क्या दूं ? यदि दूं तो भी तुम लेनेवाली नहीं हैं इस बातको मैं जानती हूँ । अब तुम्हारे लिये वस्त्राभूषणोंको देनेकी

घात जाने दो। तुम्हारे लिये जिसमगध मेरी जरूरत हो स्मरण कर लेना मैं तुम्हारी मेघामे उपस्थित हो जाऊंगी। इस प्रकार कहकर वह व्यन्तरकन्या अन्ध हो गई।

कुसुमाञ्जी इसा यकशा होकर डभर डभर देने लगी। परन्तु व्यन्तर कन्या घटा नहीं।

वह धीती हुई घटनाको मनमें विचार करती २ जरा हमने लगी। व 'जिनमिद्व' ऐसा उच्चारणकर आश्चर्य करने लगी कि मैं कोई स्थान तो नहीं देख रही हूँ ?

इनमें वह बहुतभी स्त्रियां कुसुमाञ्जीके साथ गेलनेके लिये आईं। कुसुमाञ्जी धीती हुई आश्चर्य घटनाओंको किसीसे नहीं बोलती हुई मन्दाकी भांति गेलों लगाई।

इस प्रकार कुसुमाञ्जीके चरित्रको सुमनाञ्जीने रचकर तैयार किया और अमराञ्जीने उसे लिखा। यह सामान्य नहीं है। चक्रवर्तीकी पुण्यसंपत्तिरा यह वैभव है।

इसमें कोई प्रकार दोष हो तो आप भीमान मक्षोभन कर दें।

भरतने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। यह काव्य जिन शरण होकर सर्वकाल इस भूमण्डलको सुशोभित करें।

इस प्रकार उपर्युक्त चरित्रको वाचकर उस सुग्रीने ग्रंथ को वाप दिया।

सम्राट भी चरित्रको सुनकर मनमनमें ही आनंदित हो रहे थे। विचार करने लगे कि कुसुमाञ्जी बहुत चतुर है किम कुशलतासे वह तोतेके साथ घात चीन कर रही थी ? उसको सुनकर कविता वद्ध रचना करनेवाली ये राणिया भी कम चतुर नहीं हैं।

तोतेके साथ घातचीत करती हुई उसने स्वर्गसे ही तोतेके शरीरमें प्रविष्ट व्यन्तर कन्याको पहिचान ली यह आश्चर्य की बात है

अच्छा हुआ कि तोतेके शरीरमें व्यतर कन्या थी, इस नि-
श्रयसे ही कुसुमाजी वहाँ बैठी रही। यदि उसके शरीरमें कदा-
चित् पुरुष होता तो यह कभी वहाँ नहीं बैठ सकती थी। पहि-
लेसे घबराकर डर उधर भाग जाती। यह एक मैरियत हुई।

इस प्रकार भरत अपने मनमें अनेक प्रकारके विचारोंमें
प्रसन्न होकर जिसने काव्यको वाचा उसे अनेक वस्त्र आभूषणोंसे
सत्कार किया। एवं इस काव्यकी रचयित्री दोनों राणियों व
कुसुमाजीको फिर अच्छी तरह सन्मान करूँगा यह विचारकर
वहाँसे महलकी ओर जानेंके लिये उठे। इतनेमें वह दरवार जय-
जयकार शब्दसे गूँज उठा।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि सम्राट भरतकी इस प्रकार प्रशंसा
क्यों होती थी? उसमें ऐसी अद्भुत विवेक जागृति क्यों हुई थी?
इसका सीधा साधा उत्तर यह है कि भरत महाराज सदा अपनी
आत्मासे गुणों की प्राप्तिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करते थे कि
हे आत्मन्! तुम बोलनेमें चतुर हो, चलनेमें चतुर हो, व्यक्त
होनेमें व अन्वय होनेमें चतुर हो, इसलिये सुचतुर हो। लोकमें
सबसे अधिक तुम विवेकी हो। इसलिये हे विवेकियोंके स्वामी!
तुम सदा मुझपर कृपाकर मेरे हृदयमें रहो जिससे कि मैं भी
तुम्हारे समान ही लौकिक पारमार्थिक मार्गमें कुशल बनजाऊँ।

इसीका यह फल है।

इति शुकसंल्लाप सधि.



अथ उपहार संधि

सम्राट भरत उस काव्यकी रचनाके संबन्ध में अपने हृदयमें खुश हुए। साथ ही प्रकटमें बोले कि हममें कुछ विचारणीय विषय है। यह सुमनाजी राणीकी कविता नहीं है। यह अमराजीकी ही रचना है। इसको सुनकर दोनों राणिया एक दूसरेके मुरझाये देखती हुई हँसने लगी। सुमनाजी कहने लगी कि बहिन ! मैंने उसी समय कहा था कि यह भार मेरे ऊपर नहीं लादना। देखा लिया ! अब वह रहस्य बाहर पड़ ही गया है।

नाथ ! आप जो कुछ फरमा रहे हैं वह बिल्कुल ठीक है। बहिनने मुझसे इस काव्यकी रचनाके लिये कहा था, परन्तु मैंने कहा कि इसकी कविता करना कठिन काम है इसलिये मुझसे यह नहीं हो सकेगा तब अमराजीने इसकी रचनाकी। मैंने केवल उसको लिखा है और कोई बात नहीं।

मैंने वहींपर बहिन से कही थी कि इस बातको छिपाना नहीं। पतिके सामने जिसने रचना की हो उसी के नाम प्रकट करना। परन्तु बहिनने मेरी बात सुनी नहीं। मैं इस बातको जानती ही थी कि हमारे पति देवके मामले कोई भी बातको छिपावें तो भी वह छिप नहीं सकती है, वे तो हर एक के चित्तके स्वभावको जानते ही हैं। इसलिये बहिन से व्यर्थ विवाद करने से क्या प्रयोजन ? ऐसा मनमें विचार कर लिखती गई। परन्तु स्वामिन् ! विवेकियोंको लोकमें कौन ठग सकता है। इस बातकी सत्यता यहीं पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। अब अच्छा हुआ ! मेरे ऊपर जो झूठा भार लादा हुआ था उसे आपने उतार डाला। इस प्रकार सुमनाजी बहुत संतोषके साथ बोलने लगी।

तब सम्राट् कहने लगे कि पहिले आधे भागमें सुमनाजी की रचना है। उत्तरार्ध भागमें तुम्हारी रचना है। तब अमराजी बहुत खुशीके साथ बोली कि यह बिलकुल ठीक बात है।

सुमनाजी बोली कि बहिन् ! मैंने पहिले से कहा था कि तुम ही इसकी पूर्ण रचना करो, उसे न सुनकर तुम चुपचाप बैठ गई फिर मैंने थोड़ीसी रचना कर उपाय से आगेके काव्यको रचना करनेके लिये तुम्हे प्रवृत्त किया।

स्वामिन् ! आदि मंगल तो मेरी ही रचना है। परन्तु मध्य मंगल व अन्त्य मंगल यह सब कुछ अमराजीकी रचना है। आप इन सब बातोंका भेद स्पष्ट रूपसे समझ गये। क्या भगवान् आदिनाथने तो आकर आपको नहीं कहा न ? बहिन् ! देखो तो सही ! हमारे पतिगजको हम लोग कैसे जीत सकती हैं ? हमारे अन्तरङ्गको वे किम खूबीके साथ जानते हैं इस प्रकार कहती हुई सभी स्त्रियां परस्पर हर्ष मनाने लगी।

सम्राट् बोलने लगे कि आपलोगोंका काव्य सुनकर मुझे हर्ष हुआ। तुम लोगोंको कविता करनेका अभ्यास भी अच्छा है। मैं इस काव्यकी रचनासे प्रसन्न होगया हूं। तुम लोगोंको इस प्रसन्नतासे इस समय मैं क्या दू। आपलोग जी चाहे पदार्थको मागना। मैं उसे देनेकी आज्ञा करूंगा।

स्वामिन् ! आपको प्रसन्नकर आपसे कोई धन दौलतके इनामको पानेकी इच्छासे हम लोगोंने इसकी रचना नहीं की है। हम लोगोंके मनमें कोई लोभ नहीं है। आपके मनमें जो खुशी हुई है वह आपके ही खजानेमें जमा रहे। ऐसा उन दोनों राणियों ने कहा।

“ अच्छी बात ! इस प्रसन्नताके प्रतिफलको आप लोग जब चाहेगी तब हम देंगे। अभी मैंने जिन आभूषणों को पहन रखे हैं

उनमें से तुम लोगोंको मैं दूंगा ” इस प्रकार सम्राट् बोले ।

“ स्वामिन् ! हमें अभी आपकी दयासे कोई आभरणों की कमी नहीं है । इतना ही नहीं आवश्यकतासे अधिक आभरण हमारे पास हैं । इसलिये आभरण देनेकी घोषणा भी आपके ही खजानेमें जमा रहे । हमें अभी उसकी आवश्यकता नहीं है । ” इस प्रकार बहुत संतोषके साथ बोली ।

सम्राट् बोले कि पहिलेके यदि आभरण हों तो क्या हुआ ? अभी मैं इस प्रसन्नताके प्रसंगमें मेरे आभरणमेंसे तुमको देना चाहता हूं । आवो ! लेवो ! इस प्रकार कहकर उनको अपने पासमें बुलाने लगे ।

हा ! हम लोग तो कितने ही चार मना करती हैं तो भी पति देव मानते ही नहीं । हम क्या करें । ऐसा कहकर सभी राणियोंको इशारा करती हुई, उनको भी साथमे लेकर आई व भरतके चरणमें साष्टांग नमस्कार करने लगी, उस समय ठीक उस प्रकारका दृश्य दृष्टिगोचर हुआ जैसे कि एक बड़े भारी आंधीसे किसी वृक्षसे कोई लता जाकर जमीन पर पडती हो ।

यह क्या हुआ ? मैंने तो इनाम देनेके लिये इन दोनों राणियोंको बुलाया था । परंतु ये सबकी सब आकार क्यों साष्टांग नमस्कार कर रही हैं ? इस प्रकार विचार करते हुए पण्डिताके मुखकी ओर देखने लगे । पण्डिता सम्राट्के मनकी धानकी समझकर बोलने लगी ।

स्वामिन् ! आपने इन राणियोंसे जो अपने पहने हुए आभरणोंको देनेकी बात कही वह बात उन लोगोंको पसंद नहीं आई । उत्तम सतियोंका यह लक्षण है कि वह कभी अपने पतिके अलंकारको विगाडकर अपने शृङ्गार करना नहीं चाहेगी । वे अच्छी तरह जानती हैं कि तुम्हारा जो शृङ्गार वही हम लोगोंका भी

आखका शृङ्गार है। ऐसी अवस्थामें तुम्हारे आभरणोंको निकल-वाकर अपना शृङ्गार वे करना नहीं चाहती हैं। उनके हृदयमें सच्ची पतिभक्ति है। इसलिये ऐसा करनेकी इच्छा न होनेसे सबकी सब आकर आपके चरणों में नमस्कार कर रही हैं। यही उन लोगोंका अभिप्राय है और कुछ नहीं। उन लोगोंने कई तरहसे नकाररूपसे अपना अभिप्राय प्रकट किया फिर भी आपने माना नहीं। आग्रह ही किया। ऐसी अवस्थामें पतिराजको कोई उत्तर देना हमारा धर्म नहीं ऐसा समझकर मौनसे आकर आपको साष्टांग प्रणाम कर रही हैं।

तब सम्राट कहने लगे कि:-

अच्छी बात! फिर हमने तो दोनों राणियोंको आभरण देने के लिये बुलाया था। ये सबकी सब आकर क्यों नमस्कार कर रही हैं। इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये।

स्वामिन्! क्या आप इस बातको नहीं जानते हैं? आप हंसी करते हैं। मालुम होते भी नहीं के समान करते हैं। उसको छिपा रहे हैं। मैं जानती हूँ कि आप बड़े चतुर हैं। आप इस बातको जानते हुए भी अनजान बनकर मुझसे पूछ रहे हैं। क्या आप यह नहीं जानते हैं कि आपकी राणियोंमें परस्परमें कोई भेद भाव नहीं है। एक दूसरे पर आई हुई आपत्तियोंको वे सब की सब अपने ही ऊपर आई हुई समझती हैं। उन लोगोंका स्नेह ही इस प्रकार है।

- स्वामिन्! देवियोंको आपके चरणमें पड़कर बहुत देरी हो चुकी है अब विशेष विनोद की जरूरत नहीं है। उनको आप उठने के लिये आज्ञा दी जियेगा। तब सम्राट् हँसकर बोले कि आप लोग बहुत थक गई होंगी। अब आप लोग उठकर खड़ी हो जावो। इस बातको सुनकर सब राणिया उठकर खड़ी होगईं।

तब भरतजी कहने लगे कि अच्छीबात ! यदि तुम लोगोंको मेरे पहने हुए आभरण पसंद नहीं हों तो और नवीन आभरणको दूंगा। इस बातके लिये आप लोगोंको इतना संकोच क्यों ? स्पष्ट क्यों नहीं कहती है। तब वे स्त्रियां स्पष्ट बोली कि आजके दिन आप कुछ भी कहें हम लेनेको तैयार नहीं हैं। हमारा यह व्रत है।

इस प्रकार दृढ़तासे बोलनेपर भरत बहुत पशोपेशमें पड़ गये. अब क्या करना ? इन लोगोंके ऊपर मुझे आनंद हुआ। उसके फल रूपमें मैं इनको कुछ देना चाहता हूं। परंतु ये लेनेमें राजी नहीं हैं। इन लोगोंको कुछ न कुछ दिये बिना मेरा उमड़ता हुआ आनंद रुक नहीं सकता। अब इसकेलिये क्या उपाय है ? ठीक है। ये लोग सौना (सुवर्ण) नहीं चाहती हैं तो नहीं सही। परंतु इनको एक दफे आर्लिगन तो देदेना चाहिये। परंतु ये लोग मेरे पास में आनेमें भी शर्मती हैं। ऐसी अवस्थामें क्या करना ? इस प्रकार विचार करते हुए उपायके साथ उनको पासमें बुलाने का तंत्र किया।

अरी सुमना ! अमरा ! तुम दोनों इधर आवो। तुम लोगोंके काव्यको सुनकर कुसुमाजी को चित्तविभ्रम होरहा है। उसके मनकी बात बाहर पड़नेका उसको परम दुःख है। इस लिये उसके मनको शांत करनेका जो उपाय है उसे तुम लोगोंके कानमें गुप्त रूपसे मैं कहना चाहता हूं। इस लिये मेरे पास आवो ! ऐसा कह कर उनको पासमें बुला लिये। दोनों राणियां हसती २ पासमें आईं, आनेके बाद दोनोंको अपने दाहिने व बांये तरफ खड़ी कर पहिले उन दोनोंके कानमें कुछ कहनेके समान उनके कानकी ओर मुख लेजाकर बादमें दोनोंको जोरसे आर्लिगन दिया। उस समय ऐसा मालूम हो रहा कि कल्प वृक्षकी दोनों ओरसे दो कल्पलतायें ही हों। या कामदेव विनोद

विहारगे दोनों ओरसे पांचालिकावोंको आलिंगन जिस प्रकार देता हो वैसा ही मालुम होरहा था ।

दोनों राणियां घबराईं। इधर उधरसे वचनेका प्रयत्न किया, भरतने भी अपने मनकी बात पूर्ण होनेके बाद उनको छोड़ दिया।

इतनेमें सबकी सब राणिया हंसगईं । भरतजी भी जरा हंसे । परन्तु कुसुमाजी सबसे ज्यादा हंसी और कहने लगी कि अच्छा हुआ ! ऐसा ही होना चाहिये मैं जो कुछ भी अपनी महल में गुप्त रूपसे चोली थी उसे तुम लोगोंने आकर यहापर पति देवको कह दिया । क्या तुम लोगोंको भी देखनेवाला कोई दैव नहीं है? उसका फल प्रत्यक्ष रूपसे तुम लोगोंने देख लिया । लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि किसी के गुप्त विषय को कोई प्रकट कर दूसरों के सामने हंसी करते हैं, उन लोगोंके सम्बन्धमें दैव स्वयं जागृत रहता है। उनको लोकपें किसी न किसी प्रकार वह हसीका भाजन बना देता है । इस बातका अनुभव बहिनो ! तुम लोगोंने प्रत्यक्ष रूपसे किया ।

अब कुसुमाजी बहुत शर्मिदा न हो रही थी । पहिले के समान अब खंभेके पीछे नहीं जा रही है । हा ! पतिके सामने कुछ लज्जासे युक्त होकर उन दोनों राणियों के प्रति जोर २ से कहने लगी कि मेरी हंसी उठाने के लिये तुम लोगोंने प्रयत्न किया । परन्तु दैवको यह नामजूर होनेसे तुम ही लोगोंकी हसी उडगई । सम्राट् भी अभीतक मुख नीचेकर बैठी हुई कुसुमाजी को फूल फूलकर बोलती हुई देखकर खुश हुए ।

अमराजी व सुमनाजी कुछ आगे आईं। और कुछ नीचे मुखकर कहने लगी कि स्वामिन् ! सब लोगोंके सामने इस प्रकार का व्यवहार करना आपको उचित है क्या ? आप ही विचार करें ।

तब भरतजी बोले कि इनमें दूसरे कौन हैं? ये सबकी सब राणियां मेरी ही तो हैं? और सबकी सब तुझारी बहिनें हैं। पुरुषोंमें मैं अकेला ही हूं। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको लज्जा क्यों होती है? मुझे तुम लोगोंकी काव्य रचनामें हर्ष हुआ तब मैंने आप लोगोंको आर्लिगन दिया, इसमें क्या दोष है। मेरी स्त्रियोंको मैं आर्लिगन दूं इसमें अनुचित क्या है?

स्वामिन ! उस विषयपर हमारा कुछ भी कहना नहीं है। परंतु कुसुमाजीके संबंधमें हम कुछ उपाय कहेंगे ऐसा कहकर आपने चालाकीसे व झूठे तंत्रसे हमें क्यों पासमें बुलाया। इस प्रकार वे कहने लगी।

इस संबंधमें मेरा तंत्र झूठ क्यों हुआ। इस उपायसे कुसुमाजी हंसी नहीं क्या? यही तो मैं चाहता था। इसीके लिये उपाय कहना था सो करके दिखाया इसमें क्या त्रिगडा? विचार तो करो। इस प्रकार उन्हें सम्राटने उत्तर दिया।

तब दोनोंकी दोनों परस्पर कहने लगी कि बहिन् ! अपन लोग पतिदेवको जीत नहीं सकती हैं। ऐसी अवस्थामें उनसे अधिक बातपर स्वार्थ अपनी फजीती कर लेना है। इसलिये यहांसे अपनी बहिनोंके पास जाना अच्छा है ऐसा कहकर उधर जाने लगी।

तब कुसुमाजीको सामने देखकर कहने लगी कि बहिन् ! तुम जो कुछ बोली वह सत्य हुआ। हम दोनोंने तुम्हारी स्तुति की उसका फल हम लोगोंको इस प्रकार मिला। क्या विचित्रता है?

ठीक बात है। बहिनो ! तुम लोगोंने मेरी झूठी प्रशंसा क्यों की? मेरे अदर ऐसे कौनसे गुण हैं। विशेष गुणी लोग हीन गुणियोंकी प्रशंसा कभी न करें। अन्यथा इसका परिणाम ऐसा ही होता है। कदाचित् मैं छोटी हूं। आप लोगों की प्रशंसा करूं तो कोई हर्ज नहीं। ऐसी अवस्थामें तुम लोग मेरी प्रमत्ता करें यह

अच्छी बान है क्या ? छोटी बही में कोई भंड ही नहीं क्या ?
बहिन ! क्या आप लोग इम नहीं जानती हैं ?

तब वे दोनों कहने लगी कि बहिन ! तुम इतना रुष्ट क्यों
होती है ? हम लोगों विनोद के लिये तुम्हरी प्रमत्ता की है ।
और कोई बान नहीं ।

तब तो मैं भी विनोद के लिये ही रुष्ट होगई हूं, और कोई
बान नहीं । कुमुमाजी ने कहा ।

मग्नजी इन बहिनों के विनोद व्यवहार को देखकर अंदर ही
अंदर हस रहे थे ।

इनमेंसे कुछ रागिया कहने लगी कि बहिनों ! इसमें क्या बिगडा ?
आप लोग इम प्रकार चर्चा क्यों कर रही हैं ? विशेष बाबाल बनना
भी स्त्रियों का धर्म नहीं है । मृदु के साथ रहनेवाले दोरे के समान
अपने पतिकी आज्ञा पालन करती हुई रहना यह कुलस्त्रियों का धर्म
है । स्वामी के मन को जो बात पसंद है वही बात हम लोगों के लिये
भी पसंद होनी चाहिये । हमारे पतिके समान वैभव अन्यत्र अपन
लोगों को कहा देगन को मिलेगा ? कभी भी हमारे पति देवने
सभामें सुंदर खोलकर अपनी प्रमत्ता जाहिर नहीं की । आज उन्होंने
जो प्रमत्ता को प्रकट किया है यह बड़े भाग्य की बात है । इम
प्रकार सब स्त्रियों ने हर्ष मनाया ।

विनोद घटना हुई । नवीन काव्य को अपन लोगोंने सुन लिया
पतिदेव को भी हर्ष हुआ । अब चलो ! अपन सब चलकर स्वामी
की सेवा में बैठ खबर आनंद में उनको नमस्कार करें । इम प्रकार
कहकर सब स्त्रिया सम्राट के पास गई ।

तदनंतर हर एक स्त्री ने एक २ आभरण को भरत के चरण में बैठ
खबर बहुभक्ति से भरत को नमस्कार किया । बातों ही बात में
वहां पर आभरण का पहाड़ गड़ा होगया ।

सम्राट भी राणियोंकी विचित्र भक्तिको देखकर प्रसन्न हुए और पण्डितासे कहने लगे कि पण्डिता ! देखो तो सही ! अमराजी, सुमनाजी व कुसुमाजी का विवाद किधर चला गया । अब तो वे लोग प्रसन्न दिखती हैं । अभी तक वे तीनों आपसमें झगडा कर रही थी । अब शांत हैं, इसका कारण क्या है ?

स्वामिन् ! ठीक है । क्या सुमनाजी व कुसुमाजीमें कभी मनोवैपम्य हो सकता है ?

आजी का अर्थ युद्ध है । खड़के युद्धमें अपाय हो सकता है । फूल (कुसुम-सुमन) के युद्ध में वह क्यों संभव हो सकता है ? दूसरी बात असुरों के युद्धमें कठोरता भले ही हो परंतु देवोंके युद्धमें [अमराजी] वह कठोरता क्यों हो सकती है ?

पण्डिता के इस चातुर्यवचनको सुनकर सम्राट अत्यंत प्रसन्न हुए । कहने लगे कि तुमने बहुत अच्छा कहा । लो ! तुम्हारे लिये यह सोनेके आभरण भेंटमें देता हूं ऐसा कहकर पण्डिताको इनाम दिया ।

स्वामिन् ! इन गुणनिधिस्वरूप नारीमाणियों के बीचमें चिर-कालतक रहकर आप भोग साम्राज्यका पालन करे इस प्रकार पण्डिता कहकर अलग जाकर खड़ी होगई ।

फिर न मालुम भरतजीके मनमें क्या आया हो पण्डिताको बुलाकर कहने लगे कि पण्डिता ! हम आज हमारे महल में भोजन करें यह ठीक है या हमारी किसी एक राणीके महलमें जाकर भोजन करें तो ठीक होगा ? बोलो तो सही ।

पण्डिता समझगई कि सम्राट् कुसुमाजी के प्रति प्रसन्न होगये हैं । उसके महलमें जाकर भोजन करनेकी इनकी इच्छा है । कहने लगी कि स्वामिन् ! किसी एक राणीके महल में जाकर भोजन करना यह आपके लिये श्रेयस्कर है ।

तो फिर कहो किम राणीके महलमें जाऊं ?

पण्डिता—स्वामिन ! इसका उत्तर जरा विचार करके दूगी ऐमा कहकर मौनमे पड़ी होगई । फिर आम्ब मीचकर जरा विचार करके कहने लगी कि स्वामिन ! आज कुसुमाजी राणीके महलमें भोजनको जाना यह उत्तम होगा । तब मम्राट् ने प्रश्न किया कि यह क्यों ?

तब पण्डिता बोली कि स्वामिन ! नवीन काव्यकी रचना के उपलक्ष्य में आपने दो राणियोंका सम्मान इस दरबारमें ही किया परंतु तीसरी राणीका सम्मान नहीं किया है । वस्तुतः देखा जाय तो यह कुसुमाजी ही उस काव्य की जननी हैं । इसका सम्मान अवश्य होना चाहिये । इसलिये आप उसके घरमें जाकर भोजन करे यही उसका सम्मान है ।

पण्डिता की मूर्खको देखकर सब राणिया खुश होगई । कहने लगी कि ठीक है । ठीक है ! ऐमा ही होना चाहिये ।

पण्डिताने कुसुमाजीमें भी कहा कि वहिन आज तुम्हारे महलमें पतिदेवका भोजन होगा । जावो ! भोजनकी सब तैयारी करो ।

इस प्रकार कहनेपर कुसुमाजी और भी अधिक लज्जित हुई । तब अन्य स्त्रियोंने मालुम किया कि यह हमारे मामने लज्जित हो रही हैं । इस लिये इसकी लज्जा दूर करवनी चाहिये ऐमा विचारकर वे चतुर राणिया कहने लगी कि वहिन् ! जावो ! जावो ! आज पतिदेवको भोजन करानेका भाग्य तुम्हे मिला है । यह तुमको मिला हुआ भाग्य इस सबको मिला है ऐसा हम ममझती हैं । जावो सब तैयारी करो ऐमा कहकर सबने उसे भेज दिया ।

कुसुमाजीके महलमें आज भगतका भोजन होगा । सचमुचमें वह भाग्यवती है यही बात नहीं वह गुणवती भी है । व्यतरकन्या

ने जिम्मी मुक्तकंठसे प्रशंसा की, जिसने अपने मनोगत विचारसे भरत चक्रवर्तिके हृदयको भी हिला दिया ऐसी कुसुमाजी सचमुच में प्रशंशनीय है। इसलिये भरतके चित्तने उसके मदलमें भोजन करनेकी स्वीकृति देदी।

अब सभा बरखास्त हुई। सभी स्त्रियां एक २ कर भरतको नमस्कार कर वहाँसे जाने लगी। घेन्नधारिणी दासियां भी सबकी प्रशंसा करती हुई उनको भेजने लगी।

अमराजी मुमनाजीको भी वे दासिया कहने लगी कि माता ! आप लोगोंके मुखमें आज हर्ष रेखा है। इसका क्या कारण है। हा ! हम समझगई। चक्रवर्तीने आज सभामें आप लोगोंका सम्मान किया, इसीका हर्ष होगा।

इस प्रसार कई तरह से विनोद करती हुई वे राणियां सबकी सब वहाँसे चलीगई।

सबके जाने के बाद भरतने विचार किया कि अभीतक मेरा समय स्त्रियोंके बीचमें व्यतीत हुआ है, इसलिये आत्म विचारके लिये कुछ भी समय नहीं मिला। विनोदलीला में ही सब काल व्यतीत हुआ। इसलिये थोड़ी देरके लिये आत्मविचार करना चाहिये।

तदनंतर सर्व प्रकार के शल्योंका त्यागकर भरतजी पल्यंकासनमें आश्रम सींचकर बैठ गये। एवं अन्दर नैर्मल्य योगको धारण करने लगे।

अभीतक स्त्रियोंके बीचमें रहकर उन लोगोंसे विनोद कर रहे थे। वह विचार किधर गया। उसका तो लेश भी उनके हृदय में अब नहीं है। दस हजार वर्षोंसे तपश्चर्या करनेवाले मुनिके समान इनके चित्तकी अब निर्मलता है। आश्चर्य की बात है।

हा। वह चक्रवर्ति है। उसकी आज्ञा को कौन उल्लंघन कर सकता है? इन्द्रियों को वह आज्ञा देवे कि तुम अब अपना काम करो तो वे इन्द्रिया नौकरों के समान उसके उपयोग में आते हैं। यदि वह आज्ञा देवे कि जावो। अब हमें तुझारी जरूरत नहीं है। तो वे अपने आप भागते हैं। इसलिये अब भी सम्राटने उन्हें आज्ञा दी होगी। अतएव उनका कुछ उपयोग नहीं हो रहा है।

बालकगण पतंगसे जब खेलते हैं तब उनकी जब इच्छा होती है तब पतंगको खोलते हैं यदि उनको इच्छा न हो तो पतंगके डोरेको लपेटकर रखते हैं इसी प्रकार भरतके चित्तकी परिणति है। विषयाभिलाषामें उनकी इच्छा है तो वे अपने मन व इन्द्रियों को उधर जाने देते हैं नहीं तो उसे अपनी इच्छानुसार रोक लेते हैं। कभी अपने इन्द्रियोंसे बाहरका काम लेते हैं कभी उन्हीं इन्द्रियोंसे आत्मकार्य कराते हैं।

अपनी आखके उपयोगको बाहर लगाकर सेवकोंसे इच्छित कार्यको कराते हैं उन्हीं आखों से मीचकर अंदरसे उन इन्द्रिय सेवकोंसे अपनी आत्माकी सेवा कराते हैं।

बाहरसे इन्द्रिय भोगोंको भोग रहे है। अंदरसे अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करते हैं। इसीका नाम जितेंद्रियता है। इन्द्रियोंके भोगको भोगते हुए भी अतीन्द्रिय सुखका अनुभव होना यह सामान्य बात नहीं है।

लोकमें बहुतसे तपस्वी है। जो अपने शिर मुण्डाते हैं, शरीर को सुखाते हैं। अनेक प्रकारके कष्टों को सहन करते हैं परन्तु यह सब बाह्य तप है। भरतने मन के ऊपर आधिपत्य जमा लिया है। शिर मूँडने के बजाय मनको मूँडने में ज्यादा महत्व उनकी दृष्टिमें है। शरीर को सुखाने के बजाय कर्मको सुखाने में उनको

ज्यादा भजा आता है। चाहा द्रव्यों को देखकर किंगे जानेवाले तपोंकी अपेक्षा अपनेको देखकर करनेवाली तपश्चर्या उन्हें अधिक प्रिय है।

शास्त्रकी गहवड़ी में पटककर केवल चक्रको परिग्रह समझ कर त्याग किया हुआ यह मुनि नहीं है। अपितु चक्रके समान ही स्व-शरीर आदि तीन लोक व तीन शरीर यह सब परिग्रह है। ऐसा समझकर वह केवल आत्मा में लुप्त होनेवाला राजयोगी है। परिग्रहोंके बीचमें बैठे रहनेपर भी वह परिग्रहोंमें अलग है। शरीरके अंदर रहनेपर भी वह शरीर से भिन्न है सचमुच में उसमें अलौकिक शक्ति है।

लोककी सर्व स्त्रियोंको छोड़कर अपनी स्त्रीमें रत होनेवाला क्या वह जड़ ब्रह्मचारी है? नहीं। नहीं। केवल आत्मामें रत होनेवाला वह दृढ ब्रह्मचारी है।

विचार करनेपर आत्माका ही नाम ब्रह्मा है। अपनी आत्मा रूपी आकाशमें अपने मनका संचार कराना यही तो ब्रह्मचर्य है। और यही मुक्तिका बीज है।

स्त्रियोंका त्याग करना यह व्यवहार ब्रह्मचर्य है। अपने चित्त को आत्मामें लगाना यह निश्चय ब्रह्मचर्य है।

बाहरके सर्व परिग्रहोंको छोड़कर अंदरके परिग्रहोंसे भरे हुए लोकमें डंघाचारी मुनि बहुत होते हैं। क्या भरत बैसा है? नहीं। नहीं! देखा जाय तो भरतमें बाहर सब कुछ है। अंदर कुछ नहीं। अंदरके सब परिग्रहोंको उन्होंने खण्डन किया है। इसलिए बड़े आचार्य के समान है।

उसकी कितनी प्रशंसा करें। मोजन कर वह तपवासी है। भोगते हुए वह ब्रह्मचारी है। भूमण्डल उसके हाथमें होनेपर भी वह निष्परिग्रही है। शिरमें वालोंकी वृद्धि होने पर भी

उसके मन सुण्डित है। ऐसे अद्भुत तपस्वी मामान्य नहीं हैं।

जिन ! जिना ! आश्चर्य की बात है। भग्नने आग्व मीचकग अपने गरीरमें अपने आपको देखा। वहीं पर सिद्ध परमेष्ठिगोंका दर्शन किया व आत्म सुखका अनुभव किया।

भरतजीको इन समय सर्वागमे आत्मा चनकते हुए दिख रहा है। जैसे २ आत्मा दिखता है वैसे २ कर्म टीला होकर निर्जरा होती है। जैसे २ कर्म निकलकर जा रहा है वैसे ही प्रकाश गरीरके अंदर बढ रहा है एवं भरतजीको अपूर्व सुखका अनुभव हो रहा है।

कभी पुरुषाकारके रूपमें वह दिखता है। कभी केवल प्रकाश के रूपमें दिख रहा है। कभी बीचमें चंचलता आजाय तो एकदम अंधकार हो जाता है। वह प्रकाश नलिन हो जाता है।

इस प्रकार कभी अंधकार और कभी प्रकाश और कभी सलिन प्रकाश इस प्रकार कई तरहसे वह आत्मस्वरूप भरत को प्रत्यक्ष हो रहा है।

जब विलकुल प्रकाशित होकर वह रूप दिखता था तब आनंदसे भरतजी को रोमाच भी होता था। अंदरसे सुखकी भी वृद्धि होती थी। भरत जी आनंद व आश्चर्यमें नम्र होते थे।

अन्दरसे आत्माका प्रकाश स्पष्ट दीख रहा है। उसी प्रकाशमें उन्हें यह भी दिखता है कि बाह्य रेतके समान कर्म रेणु भी सरक २ कर पड रहे हैं। साथ ही आत्मसुख नरीके बाढके सनान बढता ही जा रहा है।

इस प्रकार भरतके चित्त की दशा हो रही है। इस बातको सब लोग नाननेको तैयार न होंगे। क्यों कि यह आत्मतत्त्वा अनुभव स्वसंवेदन ज्ञानके गोचर है। भग्योंको ही उसका अनुभव हो सकता है। भग्योंको नहीं। यह जैन शास्त्र का कथन

है। सिद्धांत का यह सिद्ध रहस्य है। अगव्यों के चित्त के लिये यह विषय परम विरुद्धके रूपमें मालुम होता है।

इस प्रकार श्रीभरतजी अपने आत्मयोगामृतमें डुबकी लगाते हुए अपने मनके लोभादिक दोषोंको धो रहे हैं। जैसे २ दोष धुलते जाते हैं वैसे २ धे अधिक सुखी हो रहे हैं।

उन्हे सुग्य समुद्रमें डुबकी लगाने दीजियेगा। अपन लोग संसारमें गोता ग्यारहे हैं। भरतजी संसार में रहते हुए भी आत्म सुखमें मग्न हैं। क्या ही विचित्रता है।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि इस प्रकारका मामर्थ्य भरतजी में क्यों आया ? उन्होंने इसके लिये कौनसे माधनका अवलंबन लिया था। जिससे उन्हे इंद्रियों के होते हुए भी अतींद्रिय सुखका अनुभव होरहा था। पाठकों को स्मरणमें रहें कि भरतजी सदा परमात्मासे प्रार्थना करते थे कि "हे आत्मन् ! लोकको देखनेके लिये मुझे इन जड नेत्रोंकी जरूरत नहीं है। तुम्हारे सारे शरीरमें नेत्र हैं। पशुधा के विचार करने के लिये मुझे मनकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे सारे शरीरमें मन ही मन है। आत्मांगमें सर्वत्र विचार शक्ति है। अत्यंत सुग्य व वीर्य है। इसलिये तुम अपने प्रकाशके साथ मेरे हृदयमें मग्न निवास करते रहो " ॥

इसी भावनाका यह संस्कार है

इति उपहार संधि



अथ सरससंधि

मैं आत्मा हूँ। मेरा त्वभाव ज्ञान है। ज्ञान ही मेरा शरीर है। इस प्रकार भरतजी अपने ज्ञाननेत्रके द्वारा परमात्माका दर्शन कर रहे हैं।

सबसे पहिले वे आत्मा मित्र है, शरीरमित्र है इस प्रकार के नेत्रको अनुभव करने लगे, तदनंतर वह विचार तो गया केवल आत्मापर ही आरुढ़ होने लगे।

उनके हृदयमें अब कोई नंकल्य नहीं। विकल्प नहीं। और कोई डर डरका विचार नहीं। केवल आनंद रसमें मग्न होकर डोल रहे हैं।

कर्मोंकी निर्जरा बराबर होरही है। प्रकाश बढ़ता जा रहा है ज्ञान व सुख की वृद्धि होरही है।

अब भरत अपने राज्यको भूल गये हैं। स्त्रियोंका उन्होंने त्याग किया है। शरीर की भी स्मृति अब उनको न रही है। वह राज्याधिपति उस समय सिद्धोंके समान निर्मल आत्मसान्नात्यमें मग्न थे।

उस समय जरा भी हिल डुल नहीं रहे हैं। देखने वालोंको मालूम होरहा था कि कोई सोनेकी पुतली को लाकर उस सिंहासनमें कीलित तो नहीं किया है ?

लोग कोई पूछें कि सम्राट् कहा है। उत्तर मिलेगा कि महल में है ? महल में किन जगह है ? अतःपुरके दरबार में है। वहा किस जगह हैं ? क्या कर रहे हैं ? सिंहासनपर बैठे हैं। सिंहासनपर भी बैठे हुए अपने शरीर के अन्दर है। परन्तु वह सब अमत्य है। उस समय भरतजी न महलमें और न सिंहासनपर थे। और न वेहमें ही थे उस समय तो अपनी आत्मा में थे।

उस समय भरतजी को ऐसा अनुभव हो रहा था कि आकाश स्वयं पुरुषके आकारमें होकर ज्ञान व प्रकाशके रूपमें उस शरीरमें आ गया है। इस प्रकार परमात्माका अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार बाहरकी सर्व बातों को भूलकर अपने आपमें अत्यधिक लीन होते हुए भरतने आत्मानन्दका पूर्ण स्वाद लिया। इतने में जोरसे शखध्वनि सुननेमें आई भरतके कानतक भी उसका शब्द आया। उसी समय सम्राटने बहुत भक्तिके साथ परमात्माकी अष्ट विधावर्चनाके साथ पूजा की व आखोंको रोलली।

इतनेमें दासियोंने आकर प्रार्थना की कि स्वामिन! मुनिभुक्ति का समय होगया है। आप पधारें।

चक्रवर्ति “ जिनशरण ” “ निरंजन सिद्ध ” शब्दको उच्चारण करते हुए वहां से उठे। उस सुवर्ण मय महलसे नीचे उतर कर सवने पहिले उन्होंने मुनियोंका प्रतिग्रहण किया। तदनंतर उन सत्पात्रोंको भाव भक्तिमें दान देकर उनको आदरके साथ भेज दिया।

भरतजी महलमें घंटे हुए हैं। इतने में कुसुमाजी राणी की छोटी बहिन मकरंदाजी आई। मकरंदाजी देखनेमें बड़ी सुन्दर है अभी छोटी है। विवाह होनेके योग्य उमरके लिये और डेढ़ वर्ष बाकी है। फिर भी चतुर है। अपनी मणियोंके साथ चक्रवर्तिके पास आई और सुगंध अक्षतोंको देकर कहने लगी कि भावाजी!

भोजनकी सब तैयारी होगई है। हमारे महलमें आप पधारें।

इतनेमें भरतजी हंसकर बोलने लगे कि कुमारी! आज मैं तुम्हारे घरमें भोजन के लिये नहीं आ सकता। डेढ़ वर्षके बाद आकर यदि मुझे बुलाया तो मैं आवूंगा अभी तुम जाओ।

भावाजी! हमारी बहिन के घरको मैंने बुलाया, सो आप ठंसी मजाककी बात कर रहे हैं, क्या यह आपको उचित है ?

कुमारी ! तुमने वहिन के घरका नाम कब लिया ? तुमने यही तो कहा था कि हमारे घरमें भोजन के लिये चलिये, यदि मैं उसमें ऐसा समझा तो अनुचित क्या है ?

अच्छा रहने दीजिये आपका यह विनोद । अब बहुत समय हो चुका है । आप भोजनकेलिये चलियेगा । वहिन् कुसुमाजी आपकी प्रतीक्षा कर रही है ।

अच्छी बात । चलो । ऐसा कहकर सम्राट कुसुमाजी के घरके लिये रवाना हुए । उस समय ठीक वैसा ही मालूम हो रहा था जैसे कुसुम को चूसने के लिये भ्रमर जारहा हो । सम्राट पधार रहे हैं यह समाचार पहिले से सेवकियोंने कुसुमाजी को सुनाया । उसी समय कुसुमाजी अपनी सखियों के साथ भरत का स्वागत करनेके लिये आई ।

उसके बाद कुसुमाजीने भरतके पासमें जाकर रत्नकी आगतियों से भरतकी आरती उतारी और बहुत भक्ति के साथ भरतके चरणमें अपने मस्तक को रखा । भरतने अपने हाथ के सहारेसे उसे उठाते हुए कहा कि कुसुमी । रहने दो । इसप्रकारकी भक्तिकी क्या जरूरत ?

फिर सात आठ हाथ आगे जानेपर उसने हाथोंसे भरतके चरणोंको धोया व बहुत भक्तिके साथ अपनी पदरसे उनके पादको पोंछ लिया । भरतजी कुसुमाजी के महलमें प्रवेश कर गये ।

सम्राटके अंदर प्रवेश करनेपर बहापर उन्होंने पींजडेमें टंगे हुए एक तोतेको देखा । चक्रवर्तीको देखकर तोता कहने लगा कि वहिन् ! हमारे महलमें भावाजी भरत आगये हैं । उनको विराजने के लिये सिंहासन तो मगावो । उनका सत्कार करो ।

वहा एक सिंहासन तैयार पड़ा हुआ था । भरतजी क्या इसीका नाम अमृतवाचक है ? ऐसा पूछकर उस सिंहासनपर बैठ गये ।

वह तोता कहने लगा कि भावाजी ! आप पधारे ? आप अच्छे गुणवान् हैं । आप यहाँ आये मो बहुत अच्छा हुआ भावाजी ! आप कुशल तो हैं ? आप घर २ क्यों नहीं आते हैं, क्या आपको राजा होनेका घमंड है ? नहीं तो हमारी बहिन के महलमें क्यों नहीं आते ? हर्ज नहीं, आज आगये । मेरे कद्वे में पागये । अब देखता हूँ कि आप किस प्रकार निरुल जाते हैं ।

तोते की बात सुनकर भरतजीको हमी आई ।

तब तोता बोलने लगा कि भावाजी आपको हमी आगदी है । आप अभी तक दूर थे अब आप पासमें आगये हैं अब देखिये कि मेरी बहिन आपको हमी से कैसे कैसा लम्बी है, मेरी बहिन के दोनों हाथ कामे के समान हैं अब मैं देखता हूँ कि उस कामे में कैसे बच करके जावोगे, प्रेम से कुसुमाजी बहिन के साथ रहना हो तो रहो । बँसान कर निकल कर जाना चाहोगे तो बहिन के नेत्र कटाक्ष रूपी चादी के साँकलों में बन्धवा डालूंगा, मैं तो पीजडे में बन्द हूँ यदि जानेकी सोझिम की तो बहिन के दन्त पंक्तियोंके प्रकाश रूपी मोने के पीजडे में तुमको भी बन्द करके रखवा दूंगा जान लिया ?

अमृतघाचक ! तुम और तुमारी बहिनको गेने कोनमा कष्ट पोंढोंचाया है नहीं तो इतना क्रोध क्यों ? तुम लोगो को मैं शिष्ट समझ कर यहा आया हूँ, परन्तु तुम दोनों दुष्ट मालुम होते हो, हम प्रकार भरतने कहा

राजन् ! आपको मेरी बातोंमें दुःख हुआ ? अच्छा कोई बात नहीं । अब तुम हमारी महलमें बहिनके अधर मंजीवन अमृत को पीते हुये जीव मिट्टिको पावो अब तो मेरी बात अच्छी लगती है न ? मेरे लिये जामुन का फल जंगल में है तुम्हारे लिये जामुन बहिन के मुग में है, मैं जंगलमें जाकरके खाता हूँ तुम यहीं पर

खाकर सुखी रहो बहिन की बीच सिंहल देश है, केशवन्धन कुन्तल देश है, कर्ण कर्णाटक देश है कुच काश्मीर देश है इस लिये बहिन के शरीर रूपी राज्य को पालन करो यहा से क्यों जाते हो, और भी सुनो ! उसका यौवन वन के समान है सौन्दर्य सुन्दर जल भरें तालाब नदियोंके समान है, भावाजी ! अब खूब वन क्रीडा व जल क्रीडा से अपने सन्तापको ठंडा करो, यह सब वचन आपको अच्छे लगते होंगे, परंतु एक बात और है। मेरी बहिन के मुखमे एक मधुक घड़ा भरा हुआ है व अत्यंत मीठा है, परन्तु भावाजी उसका स्वाद आप कैसे ले सकते हैं आप तो जैन हैं न ?

भरतजी तोतेकी बात सुनकर जरा हंसे जरूर। परंतु उन्होंने यह जान लिया कि यह इस तोतेकी चतुरता नहीं है। इसको किसीने इसे सिखाया है। सिखानेवाला कौन है ? कुसुमाजी की बहिन मकरदाजी का ही यह कार्य है। उसीने यह तत्र रचा है ऐसा मनमें ही विचार कर उसपर प्रसन्न हुए।

मकरदाजीको आलिंगन देकर अपने संतोषको जाहिर करूं यह इच्छा भरतजी को उत्पन्न हुई। परंतु वह पासमें कैसे आवे ? इसके लिये उपाय सोचकर भरतजी उससे कहने लगे कि देवी ! तोतेके वाक्चातुर्यसे मैं प्रसन्न होगया हूँ। जरा उसे मेरे पासमें ले आवो तो सही।

इस बातको सुनकर मकरदाजी तोतेको लेकर भरतजीके पास गई और जिस समय उनके हाथमें वह तोतेको देरही थी उस समय भरतजीने एकदम उसे पकड़ लिया व आलिंगन दिया।

मकरदाजी लज्जाके मारे मुह छिपाकर इधर उधर भागने की कोशिस करने लगी, परन्तु भरतजीने उसे जोरसे पकड़ रखा था। उन्होंने एक चुम्बन देकर उसे छोड़दिया और कहा कि देवी ! मैं तुमसे प्रसन्न होगया हूँ।

तब राणी कुसुमाजी पूछने लगी कि स्वागिन् । आप बहिन के ऊपर इस प्रकार इतने शीघ्र प्रसन्न क्यों होगये ?

कुसुमाजी ! रहने दो ! तुम लोगोंका सब कुछ तन्त्र मैं जानता हूँ । क्या तुम नहीं जानती है ? आज इस तोते ने जो नई बात बोली है उसमें मकरंदाजीका छाप है । क्या उसने उसे नहीं सिखाया है । बोलो तो सही । इसलिये मैं उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होगया हूँ । अतएव उस प्रसन्नतामें उसे आलिंगन देकर छोड़ा है । और कोई बात नहीं ।

तब कुसुमाजी राणी बहिन मकरंदाजीमें कहनेलगी कि बहिन देखलिया न ? मैंने उम्मी समय तुम्हें कहा था कि यह काम तुम मत करो । हमारे पति देव हवा की चालको भी पहिचानेवाले हैं । उनके सामने तुम अपने चातुर्य का क्यों दिग्गामी है । फिर भी तुम्हें समझमें नहीं आया ।

पति देवके आनेके समाचार सुनकर व मेरी सँयागी देवकर तुम घँठकर तोतेको कुछ सिखाने ही लगी थी । मैंने पूछा कि बहिन ! क्या कर रही हो ? ऐसे कार्य मत करो ।

तब तुमने जवाब दिया कि बहिन ! आज भावाजी अपने घर भोजन करने के लिये आनेवाले हैं । जब आकर वे इस महलमें प्रवेश करेंगे तब इस तोतेमें कुछ मरस व्यवहार करावूंगी ।

मैंने जवाब दिया कि बहिन तुम पति देव के साथ अपनी बुद्धिमत्ता को घनलानेकी कोशिस मत करो । वो तो कोरे आकाशमें रूप लिपकर रघुनेतक मामर्था रघते हैं । इसलिये इसकार्य में व्यर्थ प्रयास मत करो ऐसा कहनेपर भी तुमने माना नहीं । मैंने फिर भी बहुत विरोध किया । फिर भी सिखाती गई । तोतेका मुझे देनेकेलिये कहा, परन्तु उसे भी लेकर लठी, फिर मखियोंमें इसे पकड़नेको

कहा एकदम उनलोगोंके भी हाथ न आकर बगीचेके तरफ भाग गई। इसके साथ खेलने के लिये यह समय नहीं ऐसा विचार कर मैं अपने घर कार्यमें लगी रही। यह बगीचेमें जाकर मध कुल सिखाकर हसती हंसती आई।

देव ! मैंने इन वचनोंको कभी नहीं सुने थे। आज ही इस तोतेके मुखसे ऐसे वचनको सुन रही हूँ यह बात आपके शपथ पूर्वक मैं कहती हूँ इसकी वृत्तिको देखकर इसे अब कन्या कहना या कुटिल कामिनी कहना ? समझमें नहीं आता। इस प्रकार कुसुमाजी अपनी बहिन के संवधमें भरनजी से कहने लगी।

मकरंदाजी-बहिन ! मैंने तुम व तुम्हारे राजाके साथ क्या कुटिलता की, जरा बतला सकती हो, “देवी जरा तोतेको इधर लावो ‘यह कहकर मुझे पास में बुलाकर जोरसे पकड़े रखने वाले तुम्हारे राजा ही कुटिल है।

कुसुमाजी कहने लगी कि धूर्ता ! अपनी मुहको ज्यादा मत चलावो। मुंह बंद करो, तुमसे प्रमत्त होकर राजाने तुम्हारा सन्मान किया। तब तुम उसकी कुटिलता कह रही है।

कुसुमाजी बहिन ! यह सन्मान तुम्हारे लिये मुवरिक रहे। मुझे जरूरत नहीं। मैं क्या इसकी राणी हूँ जो उसने इतने जोरसे मुझे पकड़कर आलिंगन दिया। यह कुटिलता नहीं तो और क्या है। मैं तो मेरी बड़ी बहिनको देख लू इस अमिलापासे गद्दा इस महलमे आई। परंतु मुझे उसका फल मिला। अब मैं चुपचाप अपने गावको जावूंगी। अब तुम्हारे गावका नाम लिया तो मैं कन्या नहीं हूँ। समझी ? देखो तो सही। मानियोंके सामने आने पर जिस प्रकार मानभंग किया जाना है उसी प्रकार इसने हमारा अपमान किया है। हाथीके समान खींचकर मुझे लेगया। क्या इसे मैं राजा हूँ इस बातका अमिमान है ?

इन बातोंको करती हुई मकरंदाजी बीच बीच में अपने मुँहके आकारको रौनेके समान कर रही है। कभी आँखों को मलती है। अंदर संनोप है, केवल बाहर से वह इस प्रकार बोल रही है। कभी भरतकी ओर ठेड़ी आँखोंसे देखरही है। और फिर लंबी सास लेकर मुँह छिपाकर फिर जरा हँसती भी है।

भरत भी इस प्रकारकी उसकी वृत्ति देखकर मन मनमें ही हँस रहे हैं। कुसुमाजी की ओर इशारा कर रहे हैं कि इस की ठगवाजी देखो तो सही।

कुसुमाजी वहिन से कहने लगी कि वहिन् ! इस प्रकार क्यों दुखी हो रही है। तुम्हें क्या हुआ ? तब मकरन्दाजी कहने लगी कि वहिन् ! रहने दो तुम्हारी बकालात ! तुम्हारे बजहसे मेरा सर्व नाश होगया। सर्वस्व हरण होगया।

तब उसे सुनकर कुसुमाजी व्यंग्य भावमें कहने लगी कि हा ! मेरी वहिनका बहुत नुरुसान हुआ। बहुत खराब हुआ।

तब मकरन्दाजी कहने लगी कि क्या तुम वैश्य या शूद्र जातिमें उत्पन्न है ? क्या जाति क्षत्रियोंकी कन्यायें इस प्रकार कभी बोल सकती है ? तुम इस प्रकार क्यों बोलती है। कुमारी कन्याको दूसरे पुरुष आलिंगन देवे यह मरण के समान है। और क्या खराब होनेमें बाकी रहा है ?

तब कुसुमाजी कहने लगी कि वहिन् ! विवेकी हमारे पति देवके सामने तुम्हारी कृत्रिम बातें चल नहीं सकती हैं। वे तो हर-एकके भावको अच्छीतरह जानते हैं। तुम्हारी आँखों से निकलने-वाली आसुवोंकी धाराको देखकर उनको बड़ा दुःख होरहा है। अब तो रोना बंद करो ! बस ! बहुत होगया।

मकरदाजी को मालुम हुआ कि मेरा रोना झूठा है यह बात

इन्हे मालुम होगई, आंखोंमे आंसू ही नहीं निकलती । इसलिये यह इस प्रकार कहती है । इसलिये वह अब आंखोंको मल मलकर उसस पानी निकालनेकी कोशिस करने लगी । इतने में उसकी आंखोंसे पानी निकलने लगा ।

चक्रवर्ती भरत इस दृश्यको देखकर जोरसे हँसे । इस समय कुसुमाजी कहने लगी कि बहिन् ! हमारे पतिदेवके सामने किसी भी स्त्रीको दुःखकी आसू निकल ही नहीं सकती है । अब तुम्हारे नेत्रमें आनदाश्रु निकलने लगा सो बहुत अच्छा हुआ ।

मकरदाजी बहिन् ! तुम अपने पतिकी ही प्रसंशा करती है । परंतु मैं तो उसके मुखको देखना भी पसंद नहीं करती । तुम्हारे पतिकी वृत्तिको तुमने देखा नहीं ? किस प्रकार वह शिष्ट है ?

कुसुमाजी—रहने दो तुम्हारी माया ! तोतेसे जो कुछ भी तुमने छिपकर बुलवाया उसी को तो उन्होंने प्रकट किया है और क्या किया । फिर तुम इतनी रिसिसियाती क्यों है ?

इस बातको सुनकर मकरदाजीने कुछ भी जवाब नहीं दिया सिग झुकाकर हंसने लगी ।

भरतने अपनी थूक उस मकरदाजी को दी । परंतु मकरदाजीने थू, थू कहकर उसका तिरस्कार किया । कुसुमाजी कहने लगी कि मूर्ख ! यह क्या करती है । हमारे पतिदेवकी थूक अमृतके समान है । उस अमृतको देते हुए तिरस्कार क्यों करती है ?

मकरदाजी—बहिन् ! तुम्हारे लिये अमृत होगा मेरे लिये नहीं । ऐसा कहकर वहापर रखे हुए सोने के कलश से जल लेकर कुल्ला करनेलगी व कहनेलगी की जिन ! जिना ! बड़ा अनर्थ हुआ । फिर जप करने लगी, आख भी मीचकर ध्यान करने लगी जैसे कोई बड़े भारी पापकी निवृत्ति कर रही हो । फिर आस खोलकर भरतकी ओर देखरही है । फिर लज्जित होकर शिर झुका लेती है ।

फिर कूसुमाजी उसे चिढ़ानेके लिये कहने लगी कि वहिन् ! इतनी ढोंग क्यों कगती है ? हमारे पति देवकी थूकके स्पर्श होने मात्रसे तुम्हारे कोटिकुल पवित्र हुए । इसमें रंजकी क्या बात है ?

मकरदाजी—वहिन् ! क्या बोल रही है ? इस भरतके साथ में विवाह होनेसे तुम अपने माता पितावोंके देशको नीची दृष्टिसे देखती है भले ही इसके समान संपत्ति हमारे मातावोंको न हो परंतु वंशमें तो वे लो- इन से क्या कम है ?

पति के गुणों को सुगंध होकर स्वयं तैं सुखी होगई हूं ऐसा तुम कहसकती हो परंतु सचको नीचे देखना क्या बुद्धिमत्ता है ? क्या यह क्षत्रिय कन्यावोंका धर्म है ?

इस बातको कहते हुए भरतके कुलशील व गुणों के प्रति मकरदाजीके हृदय भी प्रसन्न तो होरहा था परंतु उसे छिपाकर अपनी मायके के, घरकी प्रशंसा कर कहने लगी ।

वहिन् ! क्या हीन भाग्य की राज कुमारी यदि कोई बड़े भाग्यवान् राजा की राणी हो जाय तो वह अपने चातुर्य व प्रेमसे अपनी मायके को उसको बराबरीके रूपमें नहीं बतायगी ? यदि उस पुरुषको प्रसन्न कर अपने माता पितावोंकी प्रतिष्ठा वह नहीं कराती है तो उसे राजपुत्री क्यों कहना चाहिये ?

उत्तम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न कन्यावों का यह कार्य होना चाहिये कि वह चाहे जितने संपत्ति शाली राजावोंके घरमें यहातक कि चक्रवर्ति के घरमें ही क्यों न पहुंचे वहापर अपने घर माता-पितावोंका, घर अपने धन मानापितावोंके धन, पतिके मन, पिताके मन व अपने मन आदिमें अपनी कुशलतासे बराबरीकी प्रतिष्ठा लानी चाहिये ।

वहिन् ! बड़े घरमें प्रवेश करनेसे जिस घरमें जन्म हुआ है उस घरको भूल जाना यह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है ।

यह राजकन्याओंका लक्षण है ? ऐसी अवस्था में वहिन् । तुम अब अपने घरकी प्रसशा करना छोड़कर इस राजा की ही प्रसंशा कर रही न ? क्या यह तुम्हे उचित है ?

इन बातोंको सुनकर कुसुमाजी बोलने लगी कि वहिन् ! यह सब बुद्धिमत्ता तुमारे पास ही रहने दो । तुम्हारा जिस समय विवाह किसी राजाके साथ होगा उस समय राजकन्याओंके चातुर्य को बहा बतलाना । मैं कोरा घमण्ड करना नहीं जानती । लोकके अन्य राजाओं को अन्य राजाओंके साथ बराबरीके रूपमें वर्णन कर सकते हैं । परंतु लोकके सब राजाओंको एक छत्रके अदर पालन करनेवाले पतिदेवको बाकीके लोगोंके साथ बराबरी करना असंभव है ।

वहिन ! तुम ही बोलो । प्रथम तीर्थकरके जो प्रथम पुत्र है प्रथम चक्रवर्ति है और सोलहवामनु है उसकी बराबरी करनेवाले लोकमें कोई मिल सकते हैं ? दुर्गम शरीरको दुर्गम शरीरकी जोड़ी मिल सकती है । मृत्त मूत्र रहित निर्मल शरीरको कोई जोड़ी मिल सकती है ? बाहरके विषयोंसे प्रसन्न होनेवाले मुखोंको मुखोंकी जोड़ी मिल सकती है । परमात्मा योगके अनुभव करनेवाले आत्म सुखी पति देवकी बराबरी कौन कर सकता है ?

मैं ने जो कुछ भी देखा सो कहा, इसमें जरा भी असत्य नहीं । दुनियामें जितने भर भी राजा हैं, माहलीक हैं यदि वे हमारे राजाको राजी करते हैं तब तो वे राजा हैं नहीं तो पाजी हैं तुम जानती हैं ?

इसलिये मकरंदा ! व्यर्थकी बात मत करो, यहापर तुम्हारा अभिमान चल नहीं सकता है । अभिमान करनेके लिये और कोई जगह हो तो देखो । यहापर उसके लिए जगह नहीं । तुम जो कोरा अभिमान पूर्ण वचन बोल रही है उससे तुम्हारा व तुमारी मायके का सबका अहित है । मेरे पति देवके सामने इस प्रकार क्यों

बोल रही है ? मुंह बंद कर !

मकरंदाजी—बहिन ! क्या ही विचित्रता है । इस राजाने तुझारे ऊपर खूब वच्यमंत्र चलाया है । इसलिये तुम उसके सि-
वाय और कोई दीयता ही नहीं । तुमने अपने मनको इसे बेच
दिया है । पाच इंद्रियोंका अनुराग इस पर स्पष्ट दिग्ग रहें हैं श-
रीरको सर्व तरहसे उसे समर्पण कर दिया है । सुखमें मग्न
होकर तुम अपनी मायके के घर तो भूल गई इसमें आश्चर्य क्या
है ?

बहिन ! क्या तुझारे पतिके नांरूलमें कोई औषधि तो नहीं
है ? या उसके बाहुओंमें कोई वच्यमंत्र तो नहीं है ? नहीं तो तुम
इस प्रकार क्यों फस सकती थी । मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ ।
उमने मुझे जरामा जय आलिंगन दिया मेरे सारे शरीर में रोमांच
होगया । और जब मुझे चुबन दिया उस समय मैं मूर्च्छित होकर
गिरना ही चाहती थी परंतु माहमकर सघन गई । मैं अपनी
मानहानि के मारे इतने क्षुब्ध होगई कि उसके गारे
आँसुमें आँसू ही नहीं निकला । तुझारे पाँवकी मायाको क्या
कहूँ ? ऐसी अवस्थामें तुम उसके वशमें होगई इसमें कोई आश्चर्य
की बात नहीं ।

सम्राट भरत मकरंदाजी की बातोंको बड़े ध्यानसे सुन रहे थे ।
एवं उनके मनमें विचार कर रहे थे कि इन चातुर्योंको इस कन्याने
कहा सीख लिया है । अभी तो यह अविवाहित हैं । अभी ही
इसकी यह हालत है तो विवाह होनेके बाद फिर यह कैसी होगी ।
तदनन्तर सम्राट प्रकट में बोले कि कुमुमाजी ! यह तुझारी बहिन
खूब सिनिया गई है । उसे बहुत कष्ट हुआ है । उसे इधर
बुलाओ । और भी उसे जरा सत्कार करूँ जिससे उसका दुःख
दूर हो जाय ।

कुसुमाजी—बहिन ! डघर आवो ! जरा हमारे पतिदेवके पास ।

मकरंदाजी—रहने दो, जावो, मैं नहीं आती हूँ ।
पहिले एक ढफे तुम्हारे पतिके पासमे आनेका फल मुझे मिल चुका है । खूब मेरा सत्कार होचुका है । क्या अब भी मुझे ज्ञान नहीं ? जावो । मैं नहीं आती ।

सम्राट्—देवी ! पहिलेके सत्कारसे तुम्हे दुःख हुआ ! अबकी बार उससे भी बढिया भेंट तुम्हे दूंगा । तुम घबरावो मत ।

मकरंदाजी—व्यर्थकी बातोंमे मेरे चित्तमें क्रोधकी उत्पत्ति नहीं करना, मुझे आश्चर्य होता है कि दुनियामें जन्म लेकर तुमने क्या मायाचार फैला रखा है । स्त्रियोंको देखते ही उनको आर्त्तिगन देते हो । क्या यही तुम्हारा ध्यान रहता है ? क्या तुम्हारे पास स्त्रियोंकी कमी है ? सैकड़ों स्त्रियोंके रहनेपर भी इस प्रकार की वृत्ति तुम्हारी उचित है ? जो तुमसे प्रसन्न है उसके साथ मैं यह व्यवहार ठीक है । परंतु जो तुमसे बचकर दूर जाना चाहती है उसे जबरजस्ती पकड़ रखने व मुखको हटालेनेपर भी जबरजस्ती चुबन देनेकी तुम्हारी बात देखकर हंसी आती है ।

इस प्रकार मकरंदाजी कहती हुई अंदर अंदर ही हस रही थी और बीचबीचमें बोलती भी जारही थी ।

कुसुमाजी राणी जानगई कि भरतजीको अपनी बहिनपर प्रीति उत्पन्न हो गई है । इसलिये दोनोंकी बात चुपचापके देखरही थी । तब भरतजी फिर मकरंदाजीमे बोले किः—

अरी घूर्ता ! मैं तुम्हे इनाम देकर तुम्हारा सत्कार करना चाहता हूँ । परंतु तुम मुझे तिरस्कृत कर रही है । यह क्यों ?

मकरंदाजी—राजन् ! तुम महाधूर्त हो । वह इनाम तुम्हारे पास ही रहे । मुझे उसकी जरूरत नहीं ।

भरतजी इस बात को सुनकर हंसे व कहने लगे कि अच्छा ! मैं धूर्त हूँ। मेरी धूर्तता अब बतलाऊँ क्या ?

इसको सुनकर मकरंदाजी एरुदम सहम गई और कहने लगी कि आज आपकी गंभीरता किधर चली गई ? खेलनेकी इच्छा होरही है। दरबारमें बैठनेपर तुझारे मुखसे दो चार शब्दोंका निकलना भी दुर्लभ होजाता है परंतु आज इस प्रकार वचनोंकी वर्षा क्यों होरही है ?

भरतजी—तुम दुःखी हुई इसलिये मैं तुम्हे इनाम देकर संतुष्ट करना चाहता था। परंतु तुम कुछ और ही समझ रही है।

मकरंदाजी—देखो ! फिर वही बात ! आप अपना हठ फिर भी छोड़ना नहीं चाहते। आपने मुझे पहिले जो इनाम दिया है वह भी मुझे भार होगया है। इसलिये लीजिये यह रत्न-हार आपके सामने ही उतार डालती हूँ कहकर अपने कंठके रत्न-हारपर उसे उतारनेके लिये हाथ लगाने लगी। आश्चर्यकी बात है कि वह कंठसे बाहर निकलनेको नहीं आया। मकरंदाजी समझ गई कि सम्राट्ने रत्नहारको कंठमें स्तंभित कर दिया है। इसलिये वह विस्मित होकर राजाकी ओर देखने लगी एवं कहने लगी कि राजन् ! यह तुम्हारा हार मेरे गलेको क्यों नहीं छोडता है। यह भी तुम सरीखा ही हठग्राही मालुम होता है। देखो तो सही, उसे मैं छोडो छोडो कहती हूँ, परन्तु वह मुझे नहीं छोडता है। भरतजी बोलने लगे कि मकरंदाजी ! मैंने तुझे देते समय तीन आभूषणों को दिये थे। एक कंठके लिये, दूसरे हृदय के लिये व तीसरे मुखके लिये, परंतु उनमेसे दो रखकर एक ही तुम वापिस देरही है। इसलिये वह कंठहार तुझारे गलेसे नहीं निकलता है दूसरी बात हम दिये हुए पदार्थको वापिस लेनेवाले नहीं है। इसलिये अब उस रत्नहारको स्पर्श मत करो। वह तुम्हारा ही है। परंतु

ध्यान रहे । आज एगो रात मानमाने उगमे उज्ज्वलनामे बोल चुकी है । उमलिये उमरा बन्ना शिथिल बिना नहीं छोड़गा । मकराजी ! छह महीना आगे ठहरगे । बादमे तुमारी गर उठल कृष्णो बं कर दूंगा । तबतक मरग करो ।

मकरदाजी—भावाजी ! क्या ? आपने क्या विचार किया है मुझे बोलिये तो मही ।

भरतजी—क्या ? बोल ? मुनो ! तुमारी बटी बहिन कुसुमाजीके समान बना टालगा । समझी ?

इस बातको सुनकर वह लज्जाके मारे गभे के पीछे नौड गई, साधमे उसको कुछ हर्ष भी हुआ ।

तब उस वचनको सुनकर कुसुमाजी को हर्ष हुआ । वह मकरदाजीमे रहने लगी कि बहिन ! हमारे पतिव्रती बान अमल्य कभी नहीं हो सकनी । उमलिये फल ही पिताजीको बुलवाकर तुमारे लिये नये आनंदकी व्यवस्था करूंगी । विशेष क्या ? नम्राट् के हाथमे तुमारा हाथ मिलाकर पिताजीके हाथमे जल्दाग डल-वावूंगी जिमसे तुम दोनों परस्परका विवाद धुल जाय । इस प्रकार कहकर वह कुसुमाजी अपनी बहिन के पास जाकर कहने लगी कि बहिन ! अब तो मगलोत्मक हो गया ऐसा समझ लो । परंतु पुरुषोंको जवान देना यह स्त्रियोंका धर्म नहीं है । इसलिये वह जो दोष तुमसे हुआ है उसे अब किसी प्रकार दूर करो । इतने देरतक तुम मेरे लिये उपदेश देरही थी । परंतु स्वयं तुम बुद्धिमती होकर भी नहीं जानती है । आश्चर्य है । आवो ! पति-देव को नमस्कार करो ! तुम्हारा सब दोष दूर होजायगा । ऐसा कहती हुई उसके हाथ धरकर बुलाने लगी ।

मकरदाजी लज्जा के मारे सामने नहीं आती कुसुमाजीके बहुत आग्रह करनेपर फिर सामने आई ।

इस प्रकार बोलती हुई कुसुमाजी हृदयमें इस बातसे प्रसन्न भी हो रही थी कि आज हमारे ऊपरके प्रेमसे सम्राटने हमारे माता पिता भार्थोंका भी बड़े आदरसे नाम लिया है। दुनियाके सभी राजाओंको एक वचनसे बुलानेवाला राजा आज मेरे जन्मदाताओं को बहुवचनसे स्मरण कर रहे हैं, सचमुचमें मैं भाग्यशालिनी हूँ। राजानोंको यह प्रभु सेवकोंके समान बुलाते हैं। परंतु हमारे मातापिताओंको सासू व श्वसुर कहा, सचमुचमें यह भाग्य और किसे मिल सकता है।

विचार किया जाय तो यहा एकांत होनेसे इस प्रकार सम्राट बोलगये हैं। नहीं तो दरबारमें कभी इस प्रकार सन्मानके साथ नहीं बोलने दरबारमे तोलकर बात करते हैं। भरतजीने इस समय विचार किया कि कुसुमाजी मेरे अत्यंत प्रेम पात्र राणी है। इसलिये उसके साथ एकांतमे तो कमसे कम सम्योचित व्यवहार करना चाहिये। इसी विचारसे बोले। यदि किसी मूर्ख स्त्रीके साथ राजा भरतने इस प्रकार बोला होता तो वह अभिमानके साथ भरतके सिरपर ही चढ़ती। परंतु वह कुसुमाजी बुद्धिमती थी। इसलिये उसके बोलनेसे उसका कोई बुरा परिणाम नहीं होसकता है। इसलिये कहते हैं कि लोकमें विवेकी स्त्री पुरुषोंकी जोड़ी ही सर्व तरहसे सुख प्रद है।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन् । घरकी सजावटकी बात क्या है। यह सब आपकी ही कृपा है। अब आप मंगल आसनपर विराजमान हो जाइये।

भरतजी जाकर नवरत्नमय आसनपर विराजे, इधर उधरसे नवरत्नमय उपकरण जलकलश वगैरह रखे हुए थे।

अब कुसुमाजीने सब लोगोंको बाहर जानेकेलिये कहा। केवल एक दासीको घंटा बजानेके लिये दरवाजे के बाहर खड़ी रहनेको

पटा। फिर स्वनः जाकर दरवाज से बढकर आई। भरतने कहा कि कुसुमाजी! दरवाजा क्यों बंद कर दिया? तब कुसुमाजी बढने लगी कि स्वामिन! इसका कारण बादमें कहूंगी। अभी आपको भोजनमें रुकी होनी है।

परन्तु भरतजी अपने मनमें यह समझ गये कि यह देवी पहिले तो उनके साथ बोलती हुई थीं वैन स्वन प्रकारेण बाहर पढगई है यह जानकर टरगई है। इसलिए अब मैं इसके साथ जो कुछ भी बोलू वह किसी से भी मालुम न हो, सभी बातें गुप्त रहे। यही इसके दरवाजा बंद करनेका अभिप्राय है।

इस प्रकार सब लोगोंका बाहर कर कुसुमाजी एकात्ममें अपने पतिवचनों उत्तमोत्तम मन्य पायस आक पाक आदि ला लाकर परोसने लगी। स्वर्गके देवोंसे भी जो मन्य दुर्लभ है वैसे दिव्य पदार्थोंको भरतके सामने उमने उपस्थित किया।

तदनंतर अपने पतिवचनों भक्तिसे आरति उतार कर पुष्पाञ्जलि अर्पण करती हुई हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन! अब भोजन कीजिये।

उस समय भरतजीके शरीरमें तिलक, कुण्डल यज्ञोपवीत, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्रके सिवाय और कोई अलंकार नहीं थे।

भरतजीने हस्त प्रक्षालन आदि भोजनाद्य क्रियाओंकी की।

सिद्धोंकी स्तुति व पूजा कर उन्होंने उन्हे सिद्ध लोक में भेज दिया। पूर्वाक्त क्रममें परमात्माके स्मरण रखते हुए सिद्धांत प्रतिपादित क्रम में आहार लेने के लिये प्रारम्भ किया।

समयमें पहिले सम्राट्ने एक घूंट जलका पानकर जलशुद्धि की इसी समय बाहर से मंगल घंटाध्वनि होने लगी। वही समय सम्राट्ने भी अपने कर कमलको उस दिव्य वस्तुसे युक्त वाली पर रखा। तदनंतर परमात्मा की साक्षीपूर्वक उस शरीरको अन्न पान समर्पण करने लगे।

सम्राटने भेद विज्ञानके बलसे आत्माको उस शरीरके मध्यमे रखकर उनसे पूछा कि हे चिन्मय परमात्मा ! मैं इस शरीरको यह पौद्गलिक अन्नको खिलाऊ ? तुम्हारी क्या आज्ञा है ? तुम तो कार्माण वर्गणारूपी आहारको भी भार समझते हो ! ऐसी अवस्थामें हे स्वर्मोक्षपति ! तुमको इन कबलाहारोंसे क्या होगा ? इनसे पुद्गलको ही लाभ है । आहार लेनेकी इच्छा करनेवाले मन, इंद्रिय, शरीर, वचन आदि सबकं सब पुद्गल है । इस लिये इस पुद्गल शरीरको उपयोगी यह आहार है । तुम्हारा उससे क्या संबंध है ?

हे आत्मन् ! तुमने पूर्व जन्ममें जो पुण्य किया है उसके फल स्वरूप सुखको अब भोगकर छोड़ो । इस पुण्यको व्यय करनेके लिये मैं यह भोजन कर रहा हूँ । आज इस अन्नके सुखको अनुभव करो । कल तुम्हे आत्माके अनंत सुखका अनुभव होगा । इस प्रकार अनेक तरहसे आत्माको समझाते हुए भरत भोजन कर रहे थे ।

सम्राटके पास ही कुसुमाजी इस प्रकारकी हुशियारीके साथ खड़ी थी कि उसकी छाया भरत या उसकी थालीपर न पड़े । बीच २ में वह पंखेसे हवाकर गरम चीजोंको ठण्डी कर रही थी । कभी चक्रवर्तिके ऊपर गुलाबजल छिड़ककर उनके शरीर को भी शांत कर रही थी । बीचमें ही हाथ धोकर फिर थालीके अन्न व शाक मिलाकर देती थी और बांये हाथसे शरीर सवरती भी जानी थी । और फिर भरतके मुंहपर भी एकाध ग्रास देरही थी पुनः हाथ धोकर जरूरतके भक्ष्योंको परोस रही है । भरत यदि भोजनके बीचमें पानी पीनेकी इच्छा करें, उनके कहने के पहिले ही जल-कलश को उठाकर देती है । मालुम होता है कि भरतके हृदयमें ही वह प्रवेश कर चुकी है । अच्छे २ मधुर द्रव्यों को चुन २

कर वह भरतके हाथमें रखती है। भरतजी आनंदके साथ उसे खाते जाते हैं यदि मिठास अधिक होगई तो खट्टी चटनी वगैरे चाटने की देती है, यदि खटाई अधिक होजाय तो नमक देती है इस प्रकार पतिदेवकी रुचिको ध्यानमें रखती हुई उनको तरह तरहके रसोंका आस्वादन कराती नारही है।

भरतजी अपने मनमें जिस पदार्थ की चाह करते हैं उसे इशारेसे मांगनेके पहिले ही कुसुमाजी उसे उनकी थालीमें अर्पण करती थी। राजा भी इस बातमें सतुष्ट होरहे थे, प्रेमकी पराका-ष्ठमें शरीर दो होनेपर भी आत्मा एक ही है इस वाक्यकी सत्यता सचमुचमें वहा दिखती थी।

जिन पदार्थोंसे सम्राटकी वृत्ति हुई हो उन पदार्थोंको थालीकी एक ओर सरका कर और विशिष्ट पदार्थोंको परोसती है। भरतजी आखोंसे इशारा करते हैं कि बस। अब मत परोसो। कुसुमाजी हाथ जोडकर प्रार्थना करती है कि स्वामिन्। थोडा और लीजिये। इस प्रकार कहकर तरह २ के पक्वान्न पानको बडी भक्तिसे परोसती जाती है। इतनेमें भरतजी पुनः अपने सिर हिलाने लगे। तब कुसुमाजी स्वामिन्। अब दो ग्रास ओर लीजिये। कह कर आप्रह करने लगी। दो ग्रासके वजाय कई ग्रास हो गये। पुनः यह प्रार्थना करने लगी कि पतिदेव। आपके लिये जिन २ पदार्थोंको मैंने बनाया है उनका स्वाद आपको जरूर लेना होगा। भरतजी भी उसकी विचित्र भक्तिपर हंसते हुए उनको जरा मुह लगाकर छोडते थे।

इस प्रकार बहुत विनय व भक्तिके साथ कुसुमाजीने अपने पतिदेवको भोजन कराया, भरतजी भी वृप्त हो गये। उन्होंने हस्त प्रक्षालन कर भोजनात्यकी क्रिया की।

आखोंको बंद कर अंत्य मंगल करते हुए परमात्माका स्मरण

किया । तदनंतर आंख खोल ली । कुसुमाजीने भी बहुत भक्तिसे नमस्कार किया बाहरकी घटाभ्रानि भी अथ वंद हो गई ।

तदनंतर ' जिनशरण ' शब्द को उच्चारण करते हुए सम्राट वहामे उठे व ऊपरके महलकी ओर चले गये । महलकी सीढ़ियों को चढ़नेमें भोजनके चाद पतिदेवको कष्ट होगा इस विचार से कुसुमाजी उमे अपने हाथके महारा देकर चढ़ाने लगी । ऊपर पहुँचकर बहापर पहिलेमे ही मजी हुई एक सुंदर कोठरी में सुसज्जित पलंगपर बैठ गये । कुसुमाजीने तांबूल, गुलाबजल, व सुगंध द्रव्य आदि देकर मत्कार किया । भरतजी वहींपर जरा लेटे । कुसुमाजी उनके पैर धावनेके लिये बैठी । परंतु भरतजीने कहा कि प्रिये ! जाओ । बहुत समय हो चुका है । भोजन करके आओ । इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वह मती अत्यंत आनंदसे भोजन करनेके लिये चली गई ।

भरतजी वहा पड़े २ ही आग्य भीचकर विचार करने लगे कि मेरी आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है । यह भोजनादिक बाह्य उपचार शरीरके लिये है । आत्माके लिये नहीं । मेरी आत्मा क्षुधा से पीड़ित नहीं अपितु यह सब कुछ मुझे शरीरके लिये करना पड़ता है इस प्रकार विचार करते २ उनको अन्नके मदमे जरा निद्रा लगी । तक्रियाके ऊपर अपने थाये हाथको रखकर उसपर अपने मस्तक उन्होने रग्याया और दाहिने हाथको अपनी जंघाके ऊपर रखकर उम समय वे नींद ले रहे थे ।

उम समय भी उनकी शोभा अपार थी । नींदके बीचमें कभी २ आँठको हिला रहे हैं । कंठको हिला रहे हैं । कंठ व मुखमें थोडासा पसीना दिख रहा है । और कोई प्रकारका विकार नहीं है ।

बीणाके तारसे जिस प्रकार सुस्वर निकलता हो उम प्रकारका

स्वर उनके श्रामोन्मत्ताममं निकलते थे । दूरसे देगनं वालोंको उम समय वे मुलाई हुई मोनकी पुनलीकें समान मालुम होते थे ।

कुसुमाजी भोजनको जाते समय पतिकी निद्रामें कोई बाधा न हो इम विचारमें बिलकुल निस्तब्ध पादमे गई । परंतु फिर भी चक्रवर्तीकें शरीरके सुगंधपर सुगंध होकर अनेक भ्रमर आकर वहा गुंजार कर रहे थे । उनको कौन रोकें ? रोकें तो वे मुनते कहा ? भ्रमरोंके सुस्वर गायनोंके वश होकर भरतजी हन्की नींद ले रहे थे । इधर कुसुमाजी और उत्साहमें मग्न थी ।

पति देवको वह सुलाकर मयमे पहिले रमोई घरमें पहुंची थी। वहा जाकर हाथ पेर धोकर उमने भोजन किया । आज अपने घरमें पति देव भोजनके लिये आये हैं इम हर्षसे ही उसका अर्ध पेट तो भरगया था । फिर बाकी कुछ २ अन्न पानोंमें भरकर उमने तृप्ति प्राप्त की, भोजनानंतर वह आराम मंदिर में गई । वहापर आदोलन मंचपर जरा लेट गई । इधर उधरसे दासियोंने आकर उसकी सेवा करना प्रारभ किया । उसे भी अन्नके मदसे जरा नींद लगी परंतु उसने जल्दी आप खोलली । मनकी आकुलता में सुखनिद्रा भी नहीं आसकती है ।

ऊपर महलमें अकेले पतिको छोडकर आई है फिर उसे निद्रा किस प्रकार आसकती है ? उसे तो हृदयमें ऐसा अनुभव होरहा है कि मने कोई बडे भारी अपराध किया है । इसलिये जल्दी ही ऊपर जानेके विचारसे उस गय्यासे उठी ।

इतने में नाटक में पार्ट करनेवाली दो बिया उम के पास आई और कहने लगी कि दूबी । आज हम कोई नाटकका अभिनय करके बतायगी । उसको देखनेके लिये आप राजासे प्रार्थना कीजियेगा । कुसुमाजीने जबाब दिया कि अच्छी बात । मैं पति-देव को कहूंगी । आप लोग तैयार रहना ।

इस प्रकार कहकर उन दोनोंको भेजकर अपने अंतपुरकी उसने दरवाजे बंद कर लिये और अपने शृंगार मंदिर में जाकर वहां अपना उसने शृंगार करलिया ।

दर्पण में देखती हुई अपने तिलकको सुधारती हुई वह अपने आप एक दफे हंसी । अच्छी तरह अपनी सजावट कर अनेक सुगंध द्रव्योंको साथमें भी लेकर ऊपर महलके लिये रवाना होगई । आभरणकटिसूत्रके झंझण शब्दको करती हुई वह महलकी सीढियोंपर चढ़ रही थी । ऊपर चढ़नेके बाद इस खयालसे कि पतिदेवकी निद्रामें कोई बाधा न हो अत्यंत निस्तब्धताके साथ जाने लगी । दूरसे झाककर देखने लगी कि पतिदेव अभीतक जगे या नहीं । इस प्रकार जरा भी शब्द न करके वह पतिकी ओर जा रही थी । क्या उस प्रकारकी पतिभक्ति घर घरमें हो सकती है ?

इधर वह कुसुमाजी भरतकी ओर आ रही थी । उधर चक्रवर्ति थोड़ी सी निद्राकर फिर जाग उठे थे एव आत्मध्यानमें लीन हो गये थे । जिस प्रकार कि सूर्य को घेरनेवाला मेघ बहुत देरतक टिक नहीं सकता उसी प्रकार उस पुण्य पुरुषको घेरनेवाली निद्रा भी अधिक समय तक घेर नहीं सकी । कुछ ही देर बाद वे जागृत होकर उसी शय्यामें आत्मयोगमें मग्न होगये । बाहरसे देखनेवालोंको यह मालूम हो रहा था कि भरतजी निद्रामें मग्न हैं । परंतु वे अपनी आत्मामें मग्न थे । आंखोंको बंदकरके मनको अपनी आत्मामें लगा सुज्ञान समुद्रमें गोते लगा रहे थे । धन्य है !

उस समय ज्ञानव्योतिमय आत्मा आपूर्ण शरीर उन्हें दर्शन दे रहा था । जैसे २ आत्माका दर्शन अधिकाधिक हो रहा है वैसे २ कर्मोंका अंश उतरता हुआ जा रहा है । जैसे २ कर्मोंका अंश कम होता जा रहा है वैसे २ ज्ञानका अंश बढ़ता जा रहा है । ज्ञानके अंश जिस प्रकार बढ़ रहा है उसी प्रकार सुखकी मात्रा भी वृद्धि-

भरतजी कहने लगे कि उसके मुखको देखते वरुन तो ऐसा मालुम होता है कि वह हमसे आज झगडा करनेके लिये आई है। क्या यह सच है ? उससे पूछकर बोलो तो सही ।

तब गडबडी से कुछ कहने लगी कि स्वामिन् ! मैं झगडा करनेके लिये नहीं आई हूँ । अपि तु इसमें कोई गूढ प्रयोजन है । उसे मैं पतिदेवके साथ विचार करनेके लिये आई हूँ ।

गूढ प्रयोजन क्या है ? बोलो तो सही ऐसा फिर भरतने कहा ।

तब वह कहने लगी कि स्वामिन् ! उसे मूर्खोंको कहना चाहिये आप सरीखे बुद्धिमानोंको उसे समझाने की जरूरत नहीं है । इस प्रकार वह बहुत गंभीरतासे कहती हुई भरतके पादकमलको बहुत भक्तिसे दाबने लगी । पादको दाबती हुई उसे चक्रवर्तीने पैर दबानेकी तुह्यारी कुशलता बहुत अच्छी है ऐसा कहकर दोनों पैरों से उसे दबाया ।

स्वामिन् ! क्या आप मुझसे प्रसन्न हुए, इसलिये मुझे पैरसे लात मारा ? हर्ज नहीं । प्रसन्न होकर ठुकराया इसमें भी मुझे हर्ष ही है ।

उसी समय हसते २ सम्राट् उठे, उसके बाद आगे क्या हुआ ? इसका वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है । उसकी शोभा का वर्णन करने जायेंगे तो जरा हल्की बात हो जायगी ।

वह बुद्धिमान् था, वह बुद्धिमती थी, दोनोंने मिलकर इस प्रकारका विनोद किया जिसे मुह खोलकर कहना उचित नहीं ।

ऐसे विषयोंको खोलकर कहनेकी आवश्यकता नहीं । रसिक दंपति मिलगये इतना कहना ही पर्याप्त है । उन्होंने क्या रसीला व्यवहार किया इसे कहना ठीक नहीं है ।

कलावान् व कलावती दोनों मिलगये इतना कहना पर्याप्त है ।

अलिप्त रहने की सुक्ति रत्नाकरनिद्रा में नहीं होगी । अवश्य होगी । परंतु वह सुग्य परदेवा है । परदेम रहनेमें ही गमकी शोभा है । इसलिये उसे परदेम ही रखा है ।

कुत्ता, घोड़ा व पशुओं का संमर्ग जिस प्रकार देगनेमें आता है उसी प्रकार दाधी व दाधिनी का संयोग वही देगनेमें आसक्तता है । हीन धीपुरुषोंके समर्गके वर्णनके समान महापुरुषोंके संमर्ग सुग्यका वर्णन किया जासक्तता है ?

सामान्य पक्षियोंकी रति देगी जासक्तता है, राजहंसकी रति देगनेमें आसक्तता है । इसी प्रकार गुरुओंके संयोग के समान गुणशीलपुरुष मनुष्यों के संयोग का वर्णन करना उचित है । कभी नहीं ।

लोचके अन्य प्राणीन व नगरवासी पुरुषोंकी कामबीदाको जिस हंगमे वर्णन किया जासक्तता है उस प्रकार भरत पञ्चदश के कामबीदा कीदन्त्यका वर्णन किया जासक्तता है ?

लोचकी अन्य स्त्रियोंके रतिभुक्तको जिस प्रकार वही जासक्तता है उस प्रकार महाशक्तिपत्नी पतिप्रता कुसुमाजीका वर्णन करना उचित है । नहीं ।

सम्राट् भरतने इस अवेन्नी कुसुमाजीका वृत्त किया इसमें आश्रय क्या है । एक मास ९६ हजार रागियोंको मृत करनेकी शक्ति उसमें मौजूद है । क्या वह कोई सामान्य राजा है ?

कामरूपी पोटिका लगात भरतके हाथमें है । वह पाहे डीमे उसे ढीला कर सकता है । कम परके रग्य सकता है । उसकी चालको तेज व धीमी करनेमें वह अत्यंत चतुर है ।

सम्राट् का रुपाव है कि ये जिस सुग्यका भोग रहे हैं वह पापवदित सुग्य है । क्योंकि उसे भोगने हुए भी वे अपनेको भूल नहीं रहे हैं । वे उस सुग्यका बाध व देग सुग्य समझ रहे हैं,

इसलिये भोगसे हुए भी हमें भी निर्दिष्ट हो रही है । भगवन्जी अपने मनमें समझ रहे हैं कि एक मात्र परमात्मा मुझ ज्ञापन में उपस्थित है । उसका अस्ति व मेरे आत्माके साथ विलम्बसे समान है ।

जिस प्रकार पिता होंनेपर शरीरशोधन कर विनयानि की जाती है एवं उस हाजिर वह मनुष्य स्थित रहता है उसी प्रकार भगवन्जी भी धारणीय पिता के अन्तर्गत होनेपर स्थिति के साथ शरीरकर उसे ज्ञान करने में एवं बाद में स्थित अर्थात् अपनी आत्मामें लीन होते हैं ।

उत्तम श्रियाँ के साथ भोग करनेसे भगवन्जी के शरीर में मकर तो होता ही था साथमें वे पुत्रोत्पत्ति के समान भी इस प्रकार उत्पत्तिमें लाकर निराले हैं मकरमुक्तमें भगवन्जी एक हीनगामी भोगी हैं ।

अन्य भोगियों । भोगम उत्पत्तिना, अपने व मनमें अप्र-मत्तता आदि बातें भी रह सकती हैं । परन्तु भगवन् व कुसुमाजीका संयोग पुष्प व भ्रमणके भोगोंके समान है । अनन्त समुद्रमें दुष्की लगा रहे हैं । लीलावतीमें रहते हैं । या उन दोनाकी कीटा मृत्ते पर चढ़े हुए मोर मोरनीके समान हैं ।

पापों इन्द्रियों की तृप्ति हुई । भगवन् व कुसुमाजी को फिषित संज्ञा आई । दोनोंने आत्म शीतल भूतल्लभमें थोड़ीसी निद्रा ली । दोनों अत्यन्त प्रसन्न चित्तमें सो रहे थे । निद्रावस्थामें स्वप्न पड़ने लगा । स्वप्नमें भगवन्जीको चिद्रूप परमात्मा दिख रहा है । कुसुमाजीको भगवन्का रूप दिख रहा है ।

कुछ देरके बाद वह मूर्च्छा दूर होगई । “ निरजनमिदम् ” शब्दको उच्चारण करते हुए भगवन्जी बहासे उठे । अभी समय कुसुमाजी भी उठी ।

उसी समय इधर उधरसे बहुतसे दागदामी आये । उन लोगोंने

गुलाबजल, चमूर, लीचुन आदि आरोग्य पदार्थों को साकर मसाले की सेवा में उपस्थित किए । इनकी मसाले में मद्यन दिया ।

सदनें नर मनोरंजन के लिये वीणावादन कराया गया । वीणा बजाने कुसुमाक्षी अत्यंत प्रवीण थी । उन्होंने उन्नेद प्रसार के मौलानकी वक्तव्य में हुए वीणावादन दिया जिससे एकदलीका मन अत्यंत प्रसन्न होगया । पुनः इस अवसर पर, चमूर आदि भक्षणों को उन्नेद साथ अनेक समय उपवहार किए ।

सदनें नर कुसुमाक्षीने वनिंदयने प्रार्थना की कि श्यामिन ! आप उनके भोजन का समय हो गया है । यह पण्डित । भरतजी उठे व वहीने साकर शुद्धिपान दिया एवं सूर्ययम आराम के साथ भोजन किया । सदनें नर सादर वनिंदके द्वारा प्रसादा उपहार किया गया ।

कुसुमाक्षी मसाले में प्रार्थना करने लगी कि श्यामिन ! आप दुपहर को जब उपर आये तब दो मिर्चों मेरे पास आई थी ।

मसाला कहने लगे कि क्या हुआ ।

श्यामिन ! उन्होंने प्रार्थना की है कि आप माली को व नृत्य कला प्रदर्शित करना चाहती हैं । यह प्रार्थना के लिये आपसे प्रार्थना कर गई है । इसलिये कृपया हमें स्वीकृति प्रदान करके ज्ञान प्रदान करने में न हो ।

भरतजीने उन्ने महर्ष माली को दिया । साथ में कुसुमाक्षी के व्यवहार में अत्यंत संतुष्ट होकर उन्ने अनेक मननिर्मित आभूषणों से सम्मानित किया ।

कुसुमाक्षी कहने लगी कि श्यामिन ! आप चहा पचारे यही मुझे स्वर्गसंपत्तिके आगमन के समान होगया है । मैं आपकी दासी हूँ । इस प्रकार वे बायोपचार की क्या आवश्यकता है ?

तब भरतजी कहने लगे कि देवी ! वहीपर मन्त्रों में तुम्हें

देना चाहता था । परंतु वहापर मथके सामने तुम लेनेको तैयार नहीं होती । इसलिए यहापर एकातमे दे रहा हू । अब इन्कार मत करो । मेरी इच्छा की पूर्ति करनी ही पड़ेगी ।

कुसुमाजी—स्वामिन् ! मेरे पाम आभूषणोंकी अभी कमी नहीं है । बहुत ज्यादा है । इसलिये क्षमा कीजिये ।

भरतजीने उसी समय कुसुमाजीके हाथ धर लिये व कहने लगे कि तुम्हे मेरा प्रपथ है । अब कुछ भी मत बोलो । यह देना ही पड़ेगा । बादमे उन्होंने आभूषणोंकी एक बड़े भारी गठडी कुसुमाजी के हाथमे रखा । कुसुमाजीने भी उसे मुसुकराते हुए स्वीकार किया

उसके बाद कुसुमाजीकी बहिन व और भी जो परिवार स्त्रिया दासिया वगैरह थीं उन सबको उत्तमोत्तम आभूषणोंसे सन्मानित किया इतने मे सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया ।

तदनंतर भरतजी शुद्ध होकर ऊपरकी महलमें चले गये । वहापर जिनद्र व सिद्ध परमेश्वरोंकी उचित रूपसे पूजाकर अचलित पद्मासनमे विराजमान होगये । आख मीचकर परमात्माके योगमे मग्न होगये ।

उस समय थोड़ी देर पहिले अपनी रानीके साथ जो सरस व्यवहार किया था उसे एकदम भूलगये इतना ही नहीं उस प्रिय रानीका भी उन्हे अब कोई स्मरण नहीं है ।

उस समय भरतजी केवल अपनी आत्माको जान रहे है । इसके सिवाय और किसीका बड़ा पता नहीं है ।

भोगोंको खूब भोगकर जब योगमें रत होते थे तब उनको भोगोंकी वासना बिल्कुल नहीं रहती थी यही विशेषता है । एक कपड़ा छोडकर दूसरे कपडे को पहनने वालेके समान उसकी दशा उस समयमे थी ।

दोनों दृष्टियोंको उन्होंने बंद करली व एकमात्र भावदृष्टिको

खोलली। उम समय उनका शरीर भी पौडलिक नहीं था। अष्ट गुणात्मक शरीर से उस इष्ट परमात्माका दर्शन अच्छीतरह करने लगे।

शरीर जिनमंदिर था, मन सिंहासन था, उमके ऊपर निर्मल आत्मा जिनेंद्र भगवंत था।

इस प्रकार उम समय सर्व प्रकारकी बाह्य विंतावोंको छोड़ कर अपने शरीरमें जिनेंद्र भगवंत का अनुभव कर रहे थे।

इसीसमय कर्म बराबर खिरता जाता है। जैसे २ कर्म खिरता जा रहा है वैसे ही आत्मामें उत्थास बढ़ता जाता है। उत्थासके साथ २ प्रकाशकी भी वृद्धि होरही है। कभी प्रकाश व कभी अंधकार इसप्रकार तरह तरहस आत्माके सुखका दर्शन उन्हे हो रहा है।

अपनी बुद्धिके विकल्पमें ही उन्होंने एक मिद्ध विंशकी रचना की व उसकी पूजा करने लगे। तदनतर उसको भी गौण-कर "मिद्धोऽहं" इस प्रकारके अनुभव में थे। सचमुचमें उस समय उनका सुख जिन व सिद्धोंके समान ही था।

इस प्रकार सध बाह्य विकल्पोंको हटाकर अपने आत्मयोगमें उन्होंने चार घटिका समयको व्यतीत किया। चार घड़ीके बाद आख खोलली। सामने ही कुसुभाजी खड़ी है। कहने लगी कि स्वामिन्! समय होगया है। अब नाटकशालामें पधारना चाहिये, उसी समय सम्राट् 'जिनशरण' शब्दके उच्चारण करने हुए बटा से उठे। और योग्य ऋङ्गार कर नाटकशालाकी ओर गये। वहां पर पहिलेसे सब तैयारी थी। नाटक शाला नो स्वर्ग विमानके समान थी।

रात्रीके धारह घंजे तक बहायर उन्होंने नाट्यकला देखी, नंग्रमोहिनी, चित्तमोहिनी आदि स्त्री पात्रोंने अपना अभिनय

उसी समय उठकर सर्व प्रथम उन्होंने जल लेकर कुरला किया। फिर पल्यकासनमें बैठकर आत्मानुभव करने लगे।

वह ब्रम्ह मुहूर्त था। एवच किसीका भी हल्ला गुल्ला नहीं था। इसलिये अत्यंत तन्मयताके साथ आत्मयोगमें लगे रहे। मस्तकसे लेकर पादपर्यंत उस समय उन्हें अपना अनुभव होरहा था।

उस मुहूर्तका नाम ब्रम्ह तो था ही, क्यों कि ब्रम्ह नाम आत्माका है। वह समय उस ब्रम्ह के दर्शन के लिये अनुकूल था। इसलिये सबसे पहिले उन्होंने शरीर के वायुवोंको ब्रम्ह रंध्रको दौड़ाया। और शरीरके अंदर ब्रम्हको देखने लगे।

सम्राट् उस समय हंसतूल तल्प में विराजमान थे, हंसके समान ही इनकी महती वृत्ति थी, जिस प्रकार पानी को छोड़कर हंस दूध ही ग्रहण करता है उसी प्रकार सम्राट् भी शरीरको छोड़कर आत्माको ही ग्रहण करने लगे।

आत्मा वचन से अगोचर है, आखोंसे देखने में नहीं आसकता है। क्यों कि उसे कोई रूप नहीं है। हाथसे पकड़नेको नहीं आसकता है, क्योंकि वह जडस्पर्ध नहीं है। परंतु भरतजी बड़े चतुर थे उन्होंने उसे देख लिया, उस संबंधमें बोले, इतना ही नहीं उस आत्मा को साक्षात् पकड़ लिया। क्या वह कोई गरीब तपस्वी है ? नहीं ? जिसने भावमें इतनी तैयारी की है कि वह ऐसे शून्यरूपी आत्माको भी साक्षात्कार करले वह राजयोगी भरत सचमुचमें गरीब नहीं है। अन्य राजा तो धन होते हुए भी गुणगरीब हैं।

लोकमें शरीरको धोकर, शरीरको ही सुखाकर ण्डजनोंको रंजन करनेवाले तपस्वी बहुत हो सकते हैं। परंतु यह भरत क्या बैरा है ? नहीं। यह तो मनको धोकर साफ करता है। और उसी

गायन का विषय था कि स्वामिन् ! अरुणोदय हुआ ! किरणोदय भी हुआ । अब आप कृपाकर खियोंके धातुपाशसे बाहर तो आईये । स्वामिन् ! लोग सूर्यको लोकबन्धु कहते हैं । सचमुचमें जगतके उद्धार करनेवाले लोकबन्धु तो आप हैं । इसलिये सूर्य अपने मस्तकको ऊंचे उठाये इससे पहिले ही आप बाहर आकर जगत्का उद्धार नो कीजिये ।

स्वामिन् । आपके राज्यमें कोई चिंता नहीं है । अत एव आपको भी किञ्चिन्मात्र भी चिंता नहीं है । फिर भी आप दीर्घ राज्यको पालन कर रहे हैं, एवं निश्चित वैभव है । सर्व जनकी चिंताको दूर करनेके लिये आप राजाके वेपमें चिंतामणि हैं । जल्दी बाहर तो आइये ।

शत्रुरहित राज्यको पालन करनेवाले आप हैं । हजारोंकी संख्यामें रहनेपर भी आपकी खियोंमें जरा भी ईर्ष्या नहीं है । रातदिन राज्यमें पालन करनेमें जो सतप्त हैं उनको भी आप हर्ष पहुचानेवाले हैं । स्वामिन् ! जरा बाहर तो आइयेगा ।

भोगसे पागल होकर जो धर्म योगको भूल जाते हैं वे जाकर अधोगतिमें पड़ते हैं । उनकी वृत्तिपर आप हसते हैं । भोगोंमें रहकर भी भोगियोंके समान रहनेवाला है भोगियोंके राजा । उठो तो सही ।

वृत्तकुचवाली खियोंके अंतरंगको आप अच्छीतरह जानते हैं इसमें आश्चर्य नहीं है । परंतु चित्तत्वके अनुभव व रहस्य भी आपको अवगत है । उस राज्यको आप रातदिन पालन करते हैं । राजोत्तम ! जरा हमें दर्शन तो दीजिये ।

स्वामिन् ! आप शुद्धोपयोग संपन्न हैं । निरंजन सिद्धकी आराधनामें चतुर हैं शुद्ध निश्चय मार्ग में संलग्न हैं । इतना ही नहीं रत्नाकर सिद्धके आप पसंदके राजा हैं । उठिये तो सही ।

अथ पर्वाभिषेक संधि ।

आज पर्व दिन है । सम्राट् जिन मंदिरमें जाकर बहुत धैर्भाव के साथ जिनाभिषेक करेंगे ।

सम्राट्के चातुर्यको कौन वर्णन कर सकता है । यद्यपि ये अत्यंत पवित्र देहको धारण करनेवाले हैं । उनके शरीरके लिये आहार तो है, नीहार नहीं है । फिर भी उन्होंने विचार किया कि मैं बहुत दूरसे अपनी पत्नियोंके साथ था इसलिए पूजनसे पहिले एक दफे स्नान अवश्य कर लेना चाहिये । इस विचारमें ये पूजन से पहिले स्नान गृहस्थी ओर चले ।

भगवती दो प्रकारके स्नान किया करते थे । एक भोगस्नान, दूसरा योगस्नान, शरीरको साफ व सुंदर बनानेकेलिये अर्धान् भोगके प्रयोजनसे स्नान करना उसे भोगस्नान कहते हैं । एवं देवपूजा, ध्यान, पात्रदान आदिकेलिये स्नान करना वह योगस्नान है ।

भोगस्नानकेलिये मालिश करनेकी आवश्यकता होती है । तेल, माचुन व अन्य सुगंध द्रव्यों की भी जरूरत रहती है । पानी भी अधिक लगता है । अतएव उसमें समय भी अधिक लगता परंतु योगस्नानके लिये इन सब बातों की आवश्यकता नहीं होती है इसलिये वह बहुत शीघ्र होजाता है ।

सम्राट् प्रतिदिन स्नान किया करते थे । एक दिन योगस्नान, दूसरे दिन भोगस्नान, इसी क्रमसे उनका स्नान होता था । पर्वच अनवरत स्नान किया करते थे ।

आज पर्व दिन होनेसे उन्होंने भोगस्नान नहीं किया । क्यों कि आज वृद्धे भोगसे कोई प्रयोजन ही नहीं है ।

बहुत जल्दी स्नान गृहमें प्रवेश कर उन्होंने योगस्नान किया, तदनंतर वहामे श्रृंगारशालाकी ओर चले ।

श्रृंगारशालासे प्रवेशकर उन्होंने अपने शरीरका श्रृंगार किया। श्रृंगार भी उनका दो प्रकार से होता था। एक मोहन श्रृंगार, दूसरा मोक्षश्रृंगार, अपनी स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाले वस्त्र व आभूषणोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करना यह मोहन श्रृंगार है। मोहरहित मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले जिनपूजाके योग्य वस्त्र आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित करना यह मोक्ष श्रृंगार है। क्योंकि जिनपूजा मोक्षाग क्रिया है। उस समय चटकमटक रहित निर्मोह अलंकारोंकी ही प्रधानता रहनी चाहिये।

इमलिये सम्राट्ने जिनपूजाको चलते समय मोक्षश्रृंगारको धारण किया।

उन्होंने सबसे पहिले दीर्घ केशोंको झटकारकर उन्हें अच्छी तरह बाध लिया। ललाटमें श्रीगंधका स्थूल तिलक लगाया वह साक्षात् धर्म चक्रके समान मालुम होता था। या यों कहिये कि कर्मकाण्डको तिरस्कृत करनेवाले चक्र तो नहीं ऐसा मालुम होता है। उसी प्रकार हृदय, मुजायें, कंठ आदि स्थानोंमें भी श्रीगंधसे उन्होंने पौडशाभरणोंकी रचना की।

रत्नोंसे निर्मित कुडल, कंठहार, कटिसूत्र आदि उस समय उनके शरीरमें अच्छी शोभा दे रहे थे। हाथकी अंगुलियोंमें सुवर्ण व रत्न निर्मित अंगूठी, हाथमें सुंदर कंकण व शरीरमें मोती से निर्मित यज्ञोपवीत आदि बहुत सुंदर मालुम होते थे।

उन्होंने अब शुद्ध रेडमी वस्त्र को पहन रखा है। पैरमें चांदीके खड़ाऊ है। इस प्रकार अत्यंत शुचिर्भूत होकर शांत चित्तसे जिनमंदिर की ओर रवाना हुए।

अब उनकी सख्त आज्ञा है, कि जिन मन्दिरको जाते समय मार्ग में उनकी कोई प्रशंसा न करें, इतना ही नहीं कोई हाथ भी नहीं जोड़ें, अब उनके साथ कोई राजकीय वैभव नहीं है।

छत्र नहीं, चामर नहीं और कोई सेवक नहीं, राजा होनेका अभिमान भी नहीं है। इन सब बातों को छोड़कर उन्होंने अब केवल ससार भय व भक्तिको अपना साथ बनालिया है। अर्थात् अत्यंत संसार भय व भक्तिके साथ युक्त होकर एक शुद्ध श्रावकके समान जिनमंदिर में जा रहे हैं।

मार्ग में अपनी २ भइलसे निकलकर उनकी रानियां भी उनके ही साथ हो रही हैं।

रानियोंको पहिलेसे मालूम था कि आज पतिदेवको संयमका दिन है। इसलिये अपन लोगोंको भी उचित है कि अपन भी संयमसे ही दिन बितानेकेलिये जिन मंदिरको जावें। इस विचारसे सभी रानिया उनके समान ही योगस्नान एवं मोक्षशृंगार कर मार्गमें पतिके साथ होने लगी। रानियोंने भी आज मोहन शृंगार नहीं किया है। जिनसे विकार उत्पन्न न हो ऐसे ही वस्त्र आभूषणोंको पहन कर वे आईं। विशेष क्या ? भरत व उनकी देवियां सामान्य चतुर नहीं हैं। उन्होंने परस्पर देखनेपर भी कामविकार जरा भी उत्पन्न न हो इसकी व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी। सचमुचमें वे जानते थे कि पुण्यदिनमें पुण्यमय विचारोंसे रहना वे पुण्यपुरुष जानते थे।

आश्चर्य है ! वे पतिपत्नी एक दूसरेको देखते थे, परन्तु किसीके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता था। निर्विकार व विनय भावकी ही वहापर मुख्यता थी।

यद्यपि उनको मालूम था कि पूजन व अभिषेकके लिये विपुल सामग्री आनेवाली हैं फिर भी भगवंतके दरबारमें रिक्त हस्तसे जाना यह शिष्टाचार नहीं, इस विचारसे उन्होंने एक एक फल अपने हाथमें ले रखा था।

चारों ओरसे रानियां जा रही हैं। बीचमें सम्राट् जा रहे हैं।

उनके हाथमें माहुलुंगका फल है । इधर उधरसे बहुतसी स्त्रिया अर्ध्यात्म गानको गाती हुईं जारही हैं । अनेक परिवार स्त्रिया तरह तरहके अर्चनाद्रव्योंको लेकर सम्राट्के पीछेसे चल रही है । दोनों ओरसे गायन व आगेसे शंखध्वनि, इनके साथ सम्राट् बहुत वैभवके साथ जारहे हैं ।

राजमहलके पासमें ही उद्यान बनके बीच श्री भगवान् आदि प्रभुका मंदिर है । वहीं पर जाकर चक्रवर्ती जिनयज्ञ क्रिया करते हैं ।

बाहरके परकोटेके बाहर उन्होंने खडाऊ उतार दिया एवं अंदर प्रवेश कर गये । वहापर सबसे पहिले मानस्त्रंभको प्रदिक्षणा देकर अपनी पवित्र देवियोंके साथ आकाशचुबित तीन सुवर्णसे निर्मित परकोटोंको पार किया । वहापर जिनेद्रमंदिरका उन्होंने दर्शन किया ।

उस जिनमंदिरके सौंदर्यका क्या वर्णन करना ? भरतजीके रहनेकी मझल सुवर्ण व रत्नोंसे निर्मित है । अब उन्होंने अपने स्वामी आदि प्रभुके मंदिरको भी रत्न व सुवर्णोंसे अपनी महलसे भी अधिक सुंदर बनाया है यह कहनेकी क्या आवश्यकता है ?

राजमंदिरको निर्माण करनेवाली सुरशिल्पि जिनमंदिरका निर्माण नहीं कर सकता है ? उसका वर्णन इस लेखनीसे नहीं होसकता है । उसे कल्प विमान कहसकते हैं अथवा मंदराचल तो नहीं ? समवशरण तो नहीं ? नहीं नहीं नहीं । वह सर्वार्थ सिद्धि विमान के समान है । अथवा अनेक सुवर्ण रत्नोंसे निर्मित सुंदर पहाड है ।

जाने दो ! हमारे मनमे और एक कल्पना आती है । वह जिन मन्दिर जिनेद्र भगवंतके पञ्चकल्याणोंको अच्छी तरह सूचित कर रहा था ।

उसके ऊपर चढ़े हुए मोती व माणिक्य के कलशका प्रकाश इस प्रकार फैल रहा था कि मानो वे साक्षात् सूर्य चंद्रो को स्पष्ट कह रहे हैं कि तुम्हारी इधर आवश्यकता नहीं है, तुम लोग उधर ही रहो। हम यहाँपर अच्छी तरह प्रकाश कर रहे हैं।

ध्वज पताकाओं के हिलते समय ऐसा मालूम होता है कि वे आकाशसे देवों को जिन दर्शन के लिए बुला रहे हैं। इतना ही नहीं अनेक रत्नघटा सुंदर शब्दों द्वारा उन देवों को जोर जोर से आवाज कर इधर आकर्षित कर रहे हैं।

स्थान २ पर अनेक शासन देवताओं की पुतलिया खड़ी की गई हैं। उनको देखने पर मालूम होता है कि वे हस रही हों, या बोलने के लिये आतुरित हों, या किसी की ओर उत्साह के साथ देख रही हों।

जिनेन्द्र व सिद्धों की मूर्ति बहुत जगमगाहट के साथ शोभित हो रही है। उनमें शांतिरस ओतप्रोत होकर भरा हुआ था।

समवसरणमें भगवान् आदिनाथ स्वामी चतुर्मुख होकर विराजमान हैं। उसी प्रकार इस मंदिरमें भगवान् की चतुर्मुख प्रतिकृति है। मालूम होता है कि यह साक्षात् समवसरण ही हैं। उसके समान ही अत्यंत सुंदर हैं।

समस्त संपत्तियों के आधार भूत पवित्र जिनमंदिरको साम्राट् ने निष्कलक चारित्र्य को धारण करनेवाली अपनी राणियों के साथ त्रिकरण शुद्धिपूर्वक हाथ जोड़कर तीन प्रदक्षिणा ली।

तदनंतर अपने चरणों को धोकर अंदर प्रवेश कर गये और विलकुल सामने श्री आदिनाथ भगवत की मूर्ति का दर्शन किया। दर्शनांजलि की दृष्टिसे सबसे पहिले सुवर्ण पुष्पों को समर्पण कर हाथ जोड़कर खड़े हुए एवं श्री भगवत की स्तुति करने लगे।

केवलज्ञान रूपी महाराज्य के स्वामी देवाधिदेव श्री भगवान् आदिनाथ स्वामी की प्रतिकृतिके लिये जय हो।

प्राकृत, संस्कृत, कर्णाटक, पैशाचिक, मागधि, डेजव, और शूरसेनी आदि अनेक भाषाओंमें उन लोगोंने भगवतकी स्तुति की।

हे देवदेवोत्तम ! आपका दिव्य शरीर रत्नके समान अत्यन्त उज्ज्वल है, आपकी जग हो।

हम लोग जन्ममरणरूपी संसारके फंसेमें पड़कर अत्यन्त कष्ट पारही हैं। उम्मे दूरकर हे स्वामिन ! आप ही हमारी रक्षा करें।

स्वामिन ! आपके पुत्रके समान हमें शुद्धात्मयोगका अनुभव नहीं हो सकता है। फिर भी आपके चरणमें हम थखा रखती हैं।

स्वामिन् ! हमें अभेदभक्तिके ज्ञानमें मन नहीं लगता है। हममें चित्त बंचल होता है। इसलिये हमें उसके लिये शक्ति व योग्यता दीजियेगा। कृपा कीजिये।

यह श्रीवैष्णव परमकष्टका है। यदि आपने हमें आत्मयोगके मार्गको दिखलाया तो हम अवश्य ही हम श्री जन्मको नष्ट करेंगी। इस प्रकार तरह तरहमें स्तुति करने लगी।

इतनेमें भरतने अपने ध्यानका विमर्जन किया एवं अपनी स्त्रियोंके साथ मुनिवासकी ओर गये। वहाँपर मुनियोंके चरणमें अत्यन्त विनयके साथ मस्तक रग्या। मादमें उन योगिगजोंके साक्षी पूर्णक दिग्गत, देशघृत आदि जनोंको ग्रहण किया, माधमें आज हम लोगोंको अनशन (उपवास) दान रहे यह भी निवेदन किया। निष्पाप धर्मांग संबंधी बोलना व देखना हम लोगोंमें परस्पर आज रहेगा, अतितु आज सुरतकी आवश्यकता नहीं, इसलिये हमें ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिये यह कहकर अपनी स्त्रियोंके साथमें ब्रह्मचर्य व्रतके कंकणसे बद्ध हुए।

तदनंतर उन तपोधनोंसे प्रार्थनाकी कि स्वामिन् ! महाभि-
षेक व पूजाको देखनेके लिये पधारिये, एवं उनकी सम्प्रति पा-
कर बहासे रवाना हुए। श्री भगवान् आदिनाथके मंदिरमें जाकर

महाभिषेक करनेकी प्रारम्भ किया।

अभिषेक करनेवाले आग महापुरुष भग्न सम्राट् हैं। अभिषेक करने योग्य प्रतिमा भगवान् आदि प्रभुकी है। ऐसी अवस्थामें उस अभिषेकका वर्णन क्या करे? यह जिनमंदिर चतुर्भुजा था यह पहिले ही कह चुके हैं। ऐसी राज्यमें भग्नजीकी भी अपना चार रूपोंका धारण करना पड़ा, चार रूपोंको राख कर अत्यंत भक्तिसे अभिषेक करने लगे।

बाह्यमें अनेक तरहके वाजरोप वज्रने लगे, पागें श्वाजी में योगिगण, अर्जिसारे, गायक, गायिसारे व गानिया अभिषेकको देख रही हैं, एवं जगजयाकार शब्दकी घोषणा हो रही है।

मूर्ति पाच मौ धनुष उन्ची है। एवं अभिषेक करनेवाले सम्राट् व उनकी सम्राजिया भी पाचमो धनुष उन्चे हैं। अब पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि उस अभिषेकमें किस प्रकार आनंद आया होगा।

अत्यंत दीर्घ शरीर होनेपर भी सम्राट्का शरीर चिह्न नहीं मालुम होता था, उसकी लवाई, मोटाई, ऊंचाई आदि पथावस्थित होनेसे सर्व अग अन्त्री तरह गोमा देखे थे। उस दीर्घ मंदिरमें दीर्घदेही भरतने दीर्घ प्रतिमाको जिन दीर्घ वैभवमें अभिषेक किया उस महत्ताको भी आदि भगवत् ही जानें।

जलाभिषेक

आकाशके पाटल फूटकर स्वच्छ जलधर्पा जिस प्रकार मेरु पर्वतके ऊपर हो उसी प्रकार श्री भगवान् आदिनाथ पर सम्राटने अनेक कुम्होंसे भरकर स्वच्छ जलाभिषेक किया।

नालिकेर रसाभिषेक

आकाश गंगाके पानीको हरे रत्नसे निर्मित घड़ेमें भरकर स्नान करा रहे हो मानो उस प्रकार कबे नारियल के पानीसे श्रीभगवत्

का अभिषेक किया।

तदनंतर नारिबलकी गरीसे श्री भगवत का अभिषेक किया जो ऐसा मालूम होवा था कि शायद आकाश समुद्रके फेन सबके सब इकट्ठा होकर सम्राट के हाथमे आकर सरक पडरहे हों।

कदलीफलाभिषेक.

यह क्या है ? ताडके फूल तो नहीं हैं ? ऐसा भ्रम उत्पन्न करते हुये श्री भरतजी केलेके फलसे अभिषेक कर रहे थे।

शर्कराभिषेक

अच्छी तरह हाथमे पकडने मे भी नहीं आते, और पकडें तो इधर उधर सरकते हैं ऐसे शुद्ध शर्करा को हाथमें लेकर भरतने बहुत भक्तिसे अभिषेक किया।

इक्षुरसाभिषेक

कामदेवको जिनेंद्र भगवंतके सामने लज्जा उत्पन्न होगई, इसलिये उसने समझा कि इक्षुदण्डमें माधुर्य नहीं है। अतएव उसने इक्षु लाकर भगवंतके सामने फेंक दिया है एवं लोकको कह रहा है कि सचमुचमें इस कामसेवनमें कोई सुख नहीं है। आप सब श्री त्रिलोकीनाथ श्री भगवंत की सेवा करे। इस भावको बतलाते हुए सम्राट इक्षुरसका अभिषेक कर रहे हैं।

आम्ररसाभिषेक

करोड़ों घडोंमें भर भर कर जिस समय उत्तम जातिके आम्र रसका अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालूम होता था कि शायद इस प्रतिमाको नवीन दुरगी परिधान कराया हो।

यह कल्पना पसंद नहीं आई, जाने दो, जिस समय सम्राटने उस काकंबी (फल जाति विशेष) के रससे अभिषेक किया उस समय वह सुवर्णकी मूर्ति हरे रत्नकी मूर्ति ही होगई।

घृताभिषेक

शायद ठण्डे मोनेके शुद्ध गमको ही ये घाग प्रवाह रूपमे छोड़ रहे हो उस प्रकारके भावको प्रकट करते हुए सम्राट शुद्ध गोघृतका अभिषेक कर रहे थे ।

जिम समय उन्होंने घृताभिषेक किया उस समय ऐसा मालुम होना था कि कोई मोनेकी नदी बहरही हो ।

दुग्धाभिषेक.

श्रीर मसुद्र कहीं आकाशमे तो नहीं आया, नहीं तो इतना दूध कहाँमे ? इस प्रकार लोग धानचीत कर रहे थे । भरतजी अगणित कुंभोमे भर भरकर दूधका अभिषेक कर रहे थे ।

बड़े बड़े कुंभोंको दीर्घ बाहुवोंमे उठाकर जिमसमय अभिषेक करे उस समय “ बुडबुड ” “ मुल्ल मुल्ल ” “ गिकिड ” इस प्रकारके शब्द हो रहे थे ।

दधि अभिषेक

नारियलकी गरीबे समान शुभ्र दधिसे सम्राट्ने अत्यंत मक्ति से अभिषेक किया ।

श्रीर मसुद्रको ही वही डालकर वही जमाकर लाया हो या दधिवर मसुद्रको ही यहापर उठाकर लाया हो, हा ! कितना अच्छा हुआ ! इस प्रकार सम्राट्के वैभवकी प्रमंशा उस समय होरही थी ।

इस प्रकार सम्राट्ने पचासूतोंको अमंल्य कुंभोमे भर भरकर अभिषेक किया । मुनिगण अभिषेकको देखकर जयजयाकार शब्द कर रहे हैं । देखनेवालोंको मालुम होता है कि शायद आकाशमे अमृतका मसुद्र तो नहीं हैं ?

अमंल्य बर्होमे जिमसमय उन्होंने अभिषेक किया उस समय मंदिर की जमीन ब पाया घुलकर चला जाता, परंतु वह बन्न

निर्मित होनेके कारण कुछ भी नहीं हो सका। माममी पटाइके समान एकत्रित हो रही है। उमे परिवार स्त्रियां उठा उठाकर ले जा रही हैं।

कितनी ही स्त्रियां सगाटको अभिषेकके लिये माममी उठाकर देती हैं। कोई २ आरति डेंतारनी हैं। कोई जय जयाकार शब्द कर रही हैं। वे स्त्रियां घटे २ अमृत पदोंको उठाकर राजाको मोंपती हैं। बहुत घरे घरे लों तो कई मिलकर उठाती हैं। सम्राट् विचारते हैं कि इनको इस कुंभको उठाने में बड़ा कष्ट होगा है। उभी समय वे अपने अनेक रूप बनाकर उन स्त्रियोंके पीछमें लगे होकर उनको उठानेमें मदद करते हैं। कभी २ अपने आप अनेक रूपोंमें उठते हुए उन स्त्रियोंसे कहते हैं कि आप लोग अभिषेक देगती हुई लगी रहें। भगवान् की स्तुति करें, मैं सब करता हूं। ऐसा कहकर स्वयं अभिषेक करते।

भरतभी किस बातकी कमी है? जितनी इच्छा करें, इच्छा करनेकी देगी है। उसी समय उनके हाथमें अमृत के घड़े आजाते हैं। फिर अत्यन्त भक्तिसे वे अभिषेक करते जाय इसमें आश्चर्य क्या है?

चांदी, मोना, व रत्नोंसे निर्मित वस्त्रोंमें भरे हुए अमृतोंसे जिस समय वे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालूम होता था कि सम्राट् अनेक वर्णके गेदोंसे गेह रहे हैं।

कुम्भको उठानेका क्रम, मावधान व भक्तिसे भगवान् के ऊपर अभिषेक करने की रीति, गांधीर्ययुक्त गति आदिसे सम्राट् उस समय देवेंद्रको भी तिरस्कृत कर रहे थे।

भरतजी जिस रमोई घरमें भोजन करते थे वहां पर भोजन केलिये उत्तमजातिकी तीन करोड़ गायोंका दूध छाया

जाता था । ऐसी अवस्थामें आज भरतजीने एक करोड़ दूधके घड़ोंसे अभिषेक किया इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? उस मंदिरके निर्माण में नीचेसे दूध दही जानेके लिये मार्ग रखा गया था । नहीं तो भरतजीने जो अभिषेक किया उससे उससमय दूध दहीसे ही वह मंदिर डूब नहीं जाता ?

पाण्डुक निधिका कार्य ही यह है कि वह इच्छित रसको देवें, ऐसी अवस्थामें चक्रवर्तिने बहापर घी की नदी बहाई व शक्करका पहाड़ ही लगाया इसमें आश्चर्य क्या है ?

शक्कर फल वगैरे उन्होंने जो अभिषेक किया उन्हें परिवार स्त्रियों उसी समय उठाकर लेगई, नहीं तो उनसे बड़े से बड़े पहाड़ भी ढकजाता ।

गृहपति नामक रत्न अनेक तरहके पदार्थोंको लाकर देता था, फिर क्या देरी लगती है ?

भगवानके जन्माभिषेक कल्याणमें स्वर्गके देवोंने क्षीरसमुद्र को लाकर अभिषेक किया था । आज सम्राट्ने क्षीर, इक्षु, दधि, घृत इस प्रकार चार समुद्रोंको लाकर अभिषेक किया । क्या इस प्रकारका भाग्य देवोंको भी मिल सकता है ?

इस प्रकार पंचामृताभिषेक अत्यंत भक्ति विनय मंत्रोच्चारण य विधिपूर्वक करनेके बाद सम्राट्ने लाजाग चूर्ण व कुकुमचूर्ण का अभिषेक किया । तदनंतर अत्यंत सुगंधित सर्वांगधौ अभिषेक किया । सर्वांगधौ अभिषेक करनेके बाद करोड़ कुम्भोंमें भरकर चन्दनका अभिषेक किया । एवं करोड़ों कुम्भोंमें गुलाबजल से अभिषेक किया ।

तदनंतर पूर्ण कुम्भको उठाकर सर्व लोकमें शांति हो इस प्रकार शुद्ध उच्चारणपूर्वक शांतिमन्त्र पढ़कर पूर्ण कुम्भाभिषेक किया, एवं बादमें १०८ कलशोंमें भरे हुए अनेक वणोंके पुष्पकी वृष्टिकी जिम समय सभी भव्यगण जयजयकार करने लगे ।

इसके अलावा सोना, चांदी व रत्नोंसे निर्मित पुष्पोंकी भी वृष्टिकी । मंदिर जय जयाकर शब्दसे गूंज उठा ।

तदनंतर अत्यंत भक्तिसे अष्टविधार्चन पूजन किया, विधिपूर्वक पूजा करनेके बाद १०८ प्रफुल्लित कमलोंसे मंत्र पुष्प (जाप) देकर साष्टांग नमन किया । उसी समय वाद्यघोष बंद हुआ ।

उस मंदिरमें अत्यंत वृद्ध पूजेंद्र था, उसे सम्राटने सूचना दी । उसने अनेक मंत्र व विधिपूर्वक जिनेंद्र भगवंतके शासनदेवताओंकी पूजा की, सम्राट खड़े २ देख रहे थे ।

पूजा व अभिषेकके समय सम्राटने अपने अनेक रूप बना लिये थे, अब उन्होंने सबको अदृश्यकर एक रूप बना लिया, अब वहांसे तपोधनोंके पासमें आकर अपनी सह धर्मिणियोंके साथ उनके चरणोंमें नमोस्तु किया ।

आचार्य परमेष्ठिने भरतजीको “ परमात्मसिद्धिरस्तु ” एवं अन्य मुनियोने “ धर्मवृद्धिरस्तु ” इस प्रकार आशिर्वाद दिया ।

अभीतक भरतजीने इधर उधर नहीं देखा था, उनका एक मात्र चित्त श्री भगवंतकी सेवामें लगा हुआ था अब उन्होंने अपनी दृष्टि फेरकर पूजा व अभिषेक देखनेके लिये आये हुए भक्तोंको देखा ।

वह राजमहलका मंदिर है । बाहरके लोग वहापर आ नहीं सकते, वह एकांत पूजा है । लोगोंकी भीड़ बहुत ज्यादा नहीं है । हिसाब करनेपर केवल बारह लाखकी संख्या है ।

भरतकी राणियोंकी संख्या चार हजार कम एक लाख है । एक २ राणियोंके साथ दस २ परिवार स्त्रियां रहती हैं । इस प्रकार कुछ कम दस लाखकी संख्या हुई । अब भरतकी दासिया गायकियां, गुरुगण, अर्जिकार्ये, परिवारक स्त्रियां वृद्धप्रतिक आदि मिलकर डेढ़ लाखके करीब हैं ।

उपस्थित १२ लाख जनताको सम्राट्के अभिषेक व पूजनको देखकर हर्ष हुआ। कैलास पर्वतमे जब भगवान् आदिनाथका पूजन भरतजी करेगे उसे देखनेके लिये २॥ द्वीपके समस्त भव्य आर्येण व प्रसन्न होंगे तो फिर आज १२ लाख की संख्यामें प्रसन्न हुए इसमे आश्चर्य क्या है ?

कैलास पर्वतमे ७२ जिनमंदिरोंको निर्माणकर उसमे पाचसौ धनुष ऊंचे जिनर्षिबोंकी पतिष्ठा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करें उस प्रकार करनेवाले भरतजीको इस पूजामें क्या बड़ी बात है।

भगवान् आदिनाथ स्वामी आगे जब मुक्ति जायेंगे उससमय १४ रोजतक भरतजी जो भगवन्तकी पूजा करेगे वह पूजा लोकमे अन्य दुर्लभ है। उस समय देवलोक, नरलोक व नागलोकके सर्व भव्य भरतके वैभवको गिर द्रुकावेंगे। दो आखे तो उसे देखनेके लिये पर्याप्त नहीं हैं। यह केवल पर्व दिनमें किया हुआ सामान्य संकल्प पूजन है। अतः सम्राट्ने सबको गंधोदक दिलाया।

अब १२ दजेका समय होगया। गायक वगैरे भरतकी आज्ञा पाकर चले गये। वृद्धव्रतिय भी भरतके चरणोंको नमस्कार कर चले गये।

आज अपनी राणियोंके साथ सम्राट् इसी मंदिरमें जागरणसे रहनेवाले हैं। यह जानकर मुनिगण “ हे भव्य ! सुखसे रहो ” इस प्रकार आशिर्वाद देकर नगर मध्यके अन्य मंदिरमें चले गये। इसी प्रकार अर्जिकार्ये भी चली गई। अपनी राणियोंको छोडकर यात्रीके साथको सम्राट्ने आज्ञा दी कि आप लोग चले जाईयेगा। अब एकाशनके लिये बहुत देरी होगई है।

अब मंदिरमें लोकाव नहीं रहा है। एकाव होगया है। आज सम्राट् व्रतियोंके साथ धर्मचर्चा आदिसे ही समय व्यतीत करेंगे।

—: इति पर्वाभिषेक नधि —

अथ तत्त्वोपदेश संधिः

सम्राट भरत विधिपूर्वक त्रिलोकीनाथ श्रीभगवंतका अभि-
षेक कर चुके हैं। अब आदि प्रभुकी वंदनाकर वे अपनी देवि-
योंके साथ स्वाध्याय शालामें चले गये।

यह स्वाध्याय शाला अत्यंत विस्तृत व प्रकाशमय है। वहां-
पर सूखे घाससे निर्मित संयम आसन बिछे हुए हैं। सभी आ-
सनोंके बीचमें एक सोनेकी चौकी रखी हुई है।

राजयोगी भरत बीचके आसनमें विराजमान हुए, इधर
उधरके आसनोमें उनकी सभी देविशां विराजमान होगईं। उस
समयका दृश्य ऐसा मालूम होता था कि शायद ये सब योगीके
द्वारा सिद्ध विद्याकी अधिदेवतायें हैं।

उस स्वाध्याय गृहमें सुगंधित गुलाब जल नहीं हैं। कोई
हवा करनेवाले भी नहीं है। और न कोई चामर डाल रहे हैं।
उन लोगोंके मुखसे भी कामसंबंधी कोई वचन, नहीं निकलते
और भोगके नामका भी स्मरण नहीं है। केवल मोक्षमार्गमें ही
उस समय उनका चित्त था।

यदि वे लोग परस्पर बोलते तो धार्मिक विषयों पर ही
बोलते थे। यदि परस्पर एक दूसरेको देखते तो मद व कामसे
रहित शांतदृष्टिसे ही देखते थे। बीचमें कोई धर्मचर्चामें आनंद
आवे उसीसमय हंसते थे। अन्य कारणसे नहीं। उसदिन वे एक
दूसरे के शरीरको स्पर्श नहीं करते। कदाचित् वैयावृत्य करनेके
विचारसे स्पर्श करते तो भी भरतको एक तपस्वी समझकर स्पर्श
करते।

विचार करनेकी बात है। उन लोगोंका सुख किस अंणीका
है। आजका उपवास किस प्रकारका है? इतना ही नहीं पवि
पत्नी एक साथ रहनेपर भी जरा भी मनमें विकारका अंश नहीं।

इसे ही अमली तप कहते हैं ।

लोकमें स्त्री और पुरुष अलग रहकर अपने ब्रम्हचर्य व्रतको बतलासकते हैं । परंतु एक साथ रहकर भी मनमें कोई विकार उत्पन्न न होने देना यह तलवारकी धारपर चलना है ।

ऐसे भी बहुतसे देखे जाते हैं जो पहिले व्रत तो ले लेते हैं फिर स्त्रियोंको देखनेपर विचलित होते हैं परंतु लोगोंके भयसे किसी तरह रुके रहते हैं उनको थोड़ा ब्रम्हचारी कहना चाहिये ।

भरी हुई सभामें व्रत तो लेते हैं । फिर सुंदर स्त्रियों को देखकर मनमें काशीफल के ममान सड़ते रहते हैं, क्या वह व्रत है ? या आढवर है ?

व्रत या संयमको ग्रहण करने के बाद उसे सर्पके समान अत्यंत मजबूतीसे पकड़ रखना चाहिये । कदाचित् हाथको ढीला करे तो जिस प्रकार वह सर्प काटकर अपना सर्व नाश करता है उसी प्रकार व्रत भी सर्वनाश करता है ।

जिस पदार्थको हमलोग भोगते हैं उस समय तन्मय होकर उसे अच्छीतरह भोगलेना चाहिये । जिस समय उसका त्याग करते हैं उसके बाद उसका स्मरण भी नहीं करना चाहिये । इतना ही नहीं उसका हवा भी नहीं लगने पावे इसप्रकार की हुशियारी रखनी चाहिये ।

एक दफे स्त्रीत्याग करनेके बाद फिर आकर वह स्त्री आलिंगन भी देवे तो भी अपने हृदयमें कोई विकार न होना यही असली ब्रम्हचर्य है । सामने स्त्रियोंको देखकर मनमें पिघलना यह नकली ब्रम्हचर्य है ।

जिनके हृदयमें दृढता है भावमें शुद्धि है वे स्त्रियोंसे बोले तो उनका क्या बिगड़ता है । उनकी ओर देखें तो क्या होता है । इसे तो क्या होता है । इतना ही नहीं स्पर्श करें तो भी

क्या है ? उनके मनमें जरा भी विकार उत्पन्न नहीं होता है ।

पानी के स्पर्शसे केलेके पत्ते भीग सकते हैं । कमलके पत्ते भीग सकते हैं क्या ? नहीं ! इसी प्रकार स्त्रियोंके संबन्धमें निर्बल हृदयवाले विकारी हो सकते हैं । धीरोंके हृदयमें उसका कोई प्रभाव नहीं होसकता है ।

राजा भरत व उनकी स्त्रिया प्रवशूर थे । चित्तको अपने वशमें करनेमें प्रवीण थे । इसलिये उसदिन घोर ब्रह्मचर्यको लेकर जरा भी चित्तमें टिलाई न आकर अपने त्रतमें हठ थे । इसलिये उन्हें धर्मवीर कहना चाहिये ।

सचमुचमें देवाजाय तो भी यही बात है । लोकमें जो बोरीसे भोजन करता है यदि उसे किसीने थोचमें ही रोकलिया तो मनमें बड़े दुःखी होता है । किसी मनुष्यकी पेट पूर्ण रूपसे नहीं भरती हो तो उसे खाने की आकुलता रहती है । परंतु इन लोगोंको भुखकी क्या कमी है ? अत्यंत तृप्त होकर अखंड सुखको रोज भोगने वालों यदि एक दिनके लिये उसका पारेत्याग किंवा तो उन्हें क्या कष्ट हो सकता है ? कुछ नहीं ।

जिस प्रकार सूर्यके उष्ण प्रतापमें तप्त होनेपर भी नीचे शीतल जल रहनेसे कमल सुखता नहीं उसी प्रकार उपवासकी गर्मी रहने पर भी धर्म कथारूपी शीतल अमृतके होनेसे उन्हें उपवास के तापका अनुभव भिलकुल नहीं हो सका ।

बीचके दर्शानमें चक्रवर्ती विराजमान हैं । वे बीच बीचमें इधर उधर बेठी हुई अपनी देवियोंकी ओर देखते हैं । परंतु उनको आज ये अपनी स्त्रियोंके रूपमें नहीं दिख रही हैं । अपितु ये सब तपस्विनी हैं इस प्रकार वे समझ रहे हैं ।

इसी प्रकार वे स्त्रिया भी जब कभी भरतकी ओर देखती या उनके साथ बोलती तो अपने पति समझकर नहीं बोलती अपितु

आचार्य परमेष्ठी हैं हम प्रकार समझ कर देगती व बोलती ।

भरतजीके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनके साथ अब कुछ धर्म चर्चा करनी चाहिए । इस अभिप्रायसे अपनी स्त्रियों से कहने लगे कि देवी ! तुम लोगोंको आज बड़ा कष्ट हुआ होगा हमारे संसर्गसे शायद उपवास व्रतसे ही ग्लानि तो नहीं हुई ?

उन देवियोंने सम्राट्से प्रार्थना की कि स्वामिन् ! हम लोगोंको उपवासका कोई कष्ट ही नहीं हुआ है, अब जिस समय आपका उपदेश सुननेको मिलेगा उस समय हमें उपरिस्वर्गके देवोंसे भी अधिक सुखका अनुभव होगा । फिर ग्लानि कहा से ?

हम लोगोंने चरपोषणके लिये अनंत जन्मको बिताया, परंतु गुणनिधि ! आत्मपोषणके लिये तो आपके पवित्रसंसर्गसे यही एक जन्म मिला है ।

हे राजयोगि ! अतरंगको नहीं जानकर बाहरके विषयोंमें भटकती हुई हम लोगोंने भव भ्रमण किया परंतु आपके संसर्गसे हमें यह सन्मार्ग प्राप्त हुआ ।

स्वामिन् ! स्त्रियोंकी स्वाभाविक इच्छायें पुत्रोंको पानेमें, अच्छे २ वस्त्रोंको पहननेमें, एवं सुंदर आभूषणोंको धारण करनेमें हुआ करती हैं । परंतु उन इच्छाओंको छुड़ाकर आपने हमें नित्य सुखके मार्ग को बतलाया । सचमुचमें आप मोक्षरसिक हैं ।

हे पर्वदिनाचार्य ! उपवासके कष्ट तो रहने दीजिये ! अब आप धर्माश्रितका जरा पान कराईयेगा । यही हम लोगोंकी प्रार्थना है । यह कह कर विनयावती व विद्यामणी नामक दो राणियों को आगे बैठाकर सभी स्त्रियोंने धर्मोपदेश सुना ।

भरतजीने उपदेश देना प्रारंभ किया । विद्यामणि ! सुनो ! भगवान् जिनैन्द्र के शासनको बहुत संक्षेपमें कहूंगा ।

अनंत आकाशके बीच तीन घात अत्यंत दीर्घरूपसे व्याप्त हैं ।

जिसप्रकार तिन पैतरेकी थैलीमें हम कुल भरकर रखते हैं उसी प्रकार तिन बातोंके बीचमें यह सर्व लोक मौजूद है। ऊपर दिखता है सो सुरलोक है। उस सुरलोकके अग्रभागमें नोक्षशिला है। उसपर अविनाश्वर अविचल अनंत सिद्ध विराजमान है। हम जहा रहते हैं वह मध्यम लोक है। हे भ्रावकी ! इस मध्यलोकके नीचे अधो लोक है। इन ऊर्ध्व मध्य व अधो नामक तीन लोकमें जीव सर्वत्र भरे हुए हैं एव सुख दुःखका अनुभव करते हैं।

ऊर्ध्व लोकवासी देवोंको आदि लेकर नीचेके जो जीव हैं वे सब जन्ममरणके दुःखको अनुभव करते हैं। परन्तु सुनो ! सिद्धों को जन्ममरणादिक दुःख नहीं है।

एकदफे नर सुर बनते हैं, सुर नर बनते हैं, एक दफे वे ही नारक बनते हैं। एवंच हाथी, पशु, फणि, व वृक्ष आदि अनेक योनियोंमें जाकर यह कर्मवश भ्रमण करते हैं। इस प्रकार जीवों को अनेक प्रकारके पर्याय कर्मके कारणसे प्राप्त होते हैं।

यह जीव कभी दरिद्र कहलाता है, कभी धनिक कहलाता है। कभी स्त्री होकर उत्पन्न होता है और कभी पुरुष। इस प्रकार कर्मके संयोगसे यह अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है।

इतने में विद्यामणि हाथ जोड़कर खड़ी होगई और पूछने लगी कि स्वामिन् ! आपने कहा कि संसार दुःखमय है। सिद्ध लोकमें सुख है। उम अविनाशी सुखको प्राप्त करनेका क्या उपाय है ? हम लोगोंको उसके मार्गको बतलाईयेगा।

तब सम्राट्ने कहा कि देवि ! कर्मके जालको जो नष्ट करते हैं वे सब सिद्धोंके समान ही सुखी होते हैं या सिद्ध होते हैं।

फिर उसने प्रश्न किया कि स्वामिन् ! आपने यह तो ठीक कहा। परन्तु यह तो बतलाईये कि कर्मको नाश करनेका उपाय क्या है ? इसका मर्म भी हमें जरा समझा दीजिये।

देवी ! सुनो ! जिनैन्द्र भक्ति सिद्धभक्ति आदि सत्क्रियाओंसे उस कर्मका नाश किया जासकता है, विचार करनेपर वह जिनैन्द्र भक्ति सिद्धभक्ति भेद व अभेदके रूपसे दो प्रकारकी है। अपने सामने जिनैन्द्र भगवंत व सिद्धोंकी प्रतिकृतिको रखकर उपासना करना यह भेद भक्ति है। अपनी आत्मामे ही उनको रखकर उपासना करना वह अभेद भक्ति है। विशेष क्या ? पहिले तो भेद भक्तिके ही अभ्यासकी जरूरत है। भेदभक्तिमे अच्छीतरह अभ्यास होनेकेबाद अभेद भक्तिका अभ्यास करें तो कर्मका नाश होसकता है। फर्मको नाश करनेकेलिये अभेदभक्तिपूर्वक आराधनाकी ही परमावश्यकता है।

तदनंतर फिर वह विद्यामणी उठकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! आपकी दयासे हमे भेद भक्तिका स्वरूपका ज्ञान व अभ्यास है। परंतु अभेदभक्तिमे चित्त नहीं लगता है। उस दिव्य भक्तिके विषयमे हमें जरूर समझा दीजिये।

देवी ! जिस प्रकार तुम जिनवास (जिनमंदिर) मे सामने भगवतको रखकर उनकी उपासना करती हो उसी प्रकार तनुवास (शरीर) में अपनी आत्माके रूपको रखकर उपासना करो तो वही अभेद-भक्ति है।

यह आत्मा वर्तमान शरीरके प्रमाणमें है। शरीरके अंदर रहने पर भी उससे अलग है। पुरुषाकार स्वरूप है। चिन्मय है, इस प्रकार इसे जानकर देखे तो उसका दर्शन होता है।

जिस प्रकार धूलकी राशिमें एक स्फटिककी शुद्ध प्रतिमाको रखनेपर वह दिखती है उसी प्रकार इस देहरूपी धूलकी राशिमे यह शुभ्र आत्मा गढ़ा हुआ है। इस प्रकार जानकर उसे देखनेका प्रयत्न करें वह अंदर दिखता है।

स्फटिककी प्रतिमाको चर्मदृष्टिसे देख सकते हैं, हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं। परन्तु यह कोई विलक्षण मूर्ति है। इसे न चर्म दृष्टि से देख सकते हैं और न हाथसे स्पर्श कर सकते हैं। यह तो अकाशके रूपमें बनाई हुई स्फटिक की मूर्ति है समझो। उसे ज्ञानचक्षुसे ही देखना पड़ेगा।

संसारका लोभ बहुत बुरा है, इस परपदार्थोंके मोहने ही इस आत्माको उस अभेद भक्तिसे न्युत किया है। इसलिये सबसे पहिले आशा पाशको तोड़ो, आशावाँको कम करनेके बाद एकांत वासमें जाकर आँख मीचकर उसका चिंतन करें तो उस अवस्थामें वह अत्यंत शुभ रूप होकर ज्ञानके अवतारमें दिखता है।

इस प्रकार उसे देखनेका प्रयत्न करें तो वह एक ही दिनमें दीख नहीं सकता है। अभ्यास करते २ ही क्रमसे उसका दर्शन होता है। परन्तु यह जरूरी है कि एकाधदिनमें वह नहीं भी दिखे तो आलस्य न कर बराबर प्रयत्न करना चाहिये, अभ्यासका अभ्यास करना चाहिये।

हे शर्मकांक्षिणि ! इस प्रकारकी अभेदभक्तिसे कर्मोंका नाश होता है। मुक्तिकी प्राप्ति होती है। सभी धर्मोंमें यही उत्कृष्ट धर्म है। सज्जन तो इसे स्वीकार करते हैं, जिनका होनहार खराब है ऐसे अभव्य तो इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

तब विद्यामणि देवी फिर उठकर खड़ी हुई। हाथ जोड़कर अत्यंत भक्तिसे प्रार्थना करने लगी कि स्वाभिन् ! इस अभेद भक्तिका अभ्यास पुरुषोंको ही होता है या स्त्रियोंको भी हो सकती है इसका रहस्य जरा हमें समझा दी जियेगा।

देवी ! सुनो! वह भक्ति दो प्रकारकी है। एक धर्म व दूसरा श्रुति। यद्यपि कहने में दो प्रकार दिखती है परन्तु विचार करनेपर दोनों एक ही हैं। कारण कि दोनोंका अवलंबन आत्मा एक ही है।

इतनेमें विनयावति फिर हाथ जोड़कर कहने लगी कि वह पुण्यभाव किन साधनोंसे प्राप्त होता है और पाप विचारके कारण क्या है ? इन बातोंको जरा खोलकर समझानेकी कृपा करें ।

देवी ! सुनो ! दान देना, पूजा करना, व्रतोंका आचरण करना, शास्त्रोंका मनन करना आदि पुण्यप्राप्तिके साधक हैं । अभिमान, मायाचार, क्रोध, लोभ, भोगासक्ति आदि सब पापके कारण हैं । इसी प्रकार कुलजातिकी मर्यादाको चङ्घन न कर चलना, जीवदया, तीर्थ क्षेत्रकी वदना आदि पुण्य है । एवं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व अतिकांक्षा आदि बातोंसे पापका बंध होता है ।

इसमें एक बात विचारणीय है । जो आत्मा पाप और पुण्यके आधीन होकर क्रिया करता हो वह संसारमें परिभ्रमण करता है । जो पाप पुण्यको समदृष्टिसे देखकर अपने ही आत्ममें ठहरता हो वह अधिक समययहां न ठहरकर सिद्ध शिलापर चला जाता है ।

विनयावति फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! स्वर्गसुखको अनुभव कगनेवाले पुण्य व दुर्गतिको ले जानेवाले पापको समदृष्टिसे देखनेका उपाय क्या है ? इसे भी जरा अच्छी तरह समझा दीजिये ।

देवी ! स्वर्गका सुख भी नित्य नहीं है । और नारकियोंकी वेदना भी नित्य नहीं है । दोनोंके दोनों स्वप्न देखनेके समान हैं । केवल भ्रम है इससे ज्यादा और क्या है ? जिस प्रकार एक मनुष्य वृक्षपर चढ़कर आनंदसे हंसता है फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार देव स्वर्गसे स्वर्ग सुखोंको अनुभव कर नीचे भूतलपर पड़ते हैं । जिस प्रकार कोई बच्चा किमी खंडुमे पड़कर रोते पीटते ऊपर चढ़ आता है उसी प्रकार नारकी जीव नरकके दुःखों को अनुभव कर ऊपर आते हैं ।

है। केवल मसालेके पानीमें हुबो रखनेसे ही वह कपड़ा स्वच्छ नहीं होसकता है। इसी प्रकार पापवासनाको पहिले पुण्यवासना से लोप करना चाहिये। केवल इतनेसे ही काम नहीं चलेगा। उस पुण्य वासनाको भी आत्मयोगसे नहीं धोवें तो आत्मा जगत्पूज्य कभी नहीं बन सकता है।

यहापर वस्त्रके मलके स्थानपर पाप है। मसालेके पानीके स्थान पर पुण्य है। स्वच्छ पानीके स्थानपर आत्मयोग है। पहिले कुछ पुण्य संपादन करना उचित है। आत्मयोगमें जो रत है उसे पुण्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैंने तुम्हे कहा भी था कि पुण्य व पापको सम दृष्टिसे देखो। देवी ! यह जिनैन्द्रका वाक्य है। इसे श्रद्धा करो।

विनयवती प्रसन्न हुई। अब चंद्रिका देवी नामकी राणी अन्य कुछ राणियोंकी शंकाको लेकर खड़ी हुई व प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! आपने हमें अभीतक यह उपदेश दिया कि पुण्य व पापको समदृष्टिसे देखकर छोड़देना चाहिये। परंतु इसमें कितना तथ्य है समझमें नहीं आता। कारण कि ऐसा नहीं होता तो आप पुण्य कृत्योंको क्यों कर रहे हैं ? जिनैन्द्रभगवंत की पूजा करना, मुनियोंको आहार दान देना, शास्त्रोंका स्वध्याय व मनन करना, सज्जनोंकी रक्षा व दुर्जनोंकी शिक्षा, उपवास आदि बातें पुण्य बंधके कारण नहीं हैं क्या ? इनको आप क्यों कर रहे हैं ? केवल हमें ही उपदेश देना है क्या ?

चंद्रिका देवी ! शाहबास ! यह सब सूक्ष्मदृष्टिसे विचारकर यह तुमने प्रश्न किया है। तुम्हारे हृदयमें जो शंका उपस्थित हुई वह साहजिक है। अब तुम अच्छीतरह सुनो, मैं तुम्हे समझावूंगा। ऐसा भरतजीने कहा।

देवी ! मैं पुण्य क्रियाओंको करता हूं। क्यों कि मैं घरमें

तो अपने पास रह सकती है ? नहीं ! इसी प्रकार जो कर्मको अच्छा समझकर आदर पूर्वक स्वागत करते हैं उनके पास तो वह रहता है अच्छीतरह बंधको प्राप्त होता है । जो उसे तिरस्कार दृष्टिसे देखते हैं उनके पास वह क्यों रहने लगा ? शीघ्र ही निकल जाता है ।

गीली मट्टीके घड़े या तेलके घड़ेके ऊपर पड़े हुए धूलके समान शुद्धात्मयोगको नहीं जानने वाले अज्ञानी प्राणियोंका बंध है । नवीन सूखे मट्टकेपर पड़े हुए धूलके समान तो आत्मरसिकोंका बंध है । ज्ञानीको भोग करनेपर भी कर्मबंध नहीं है । सागारधर्ममें रहनेपर भी वह अनागरके समान रहता है ।

तब तो ठीक ! फिर आपको उपवास वगैरहकी झंझटमें पड़नेकी क्या जरूरत है ? क्यों कि भोगनेपर भी आपको बंध तो होता ही नहीं ! फिर आरामसे महलमें क्यों नहीं रहते ! चंद्रिकादेवीने थोड़ा हंसकर कहा ।

देवी ! इतने जल्दी भूलगईं मालुम होती है ! मैंने कहा था कि भोगमें अत्यासक्ति करना कर्म बंधका कारण है । इसलिये कुछ समयके लिये ही क्यों न हो भोगको त्यागनेके लिये यह उपवासादिको मैं करता हूं । और कोई बात नहीं ।

चंद्रिकादेवी कहने लगी कि स्वामिन् । आपको यह सब परिचित विषय है । इसलिये सब प्रकारसे आत्मसाधन आप करते हैं । हम लोगोंको वह आत्मभावना नहीं आती है । उसका उपाय क्या है ? उसे जरा समझा दीजियेगा !

देवी ! सबको परमात्मयोगकी प्राप्ति नहीं होगी ऐसा मत कहो ! किसी किसीके हृदयेमें वह आत्मभावना प्रकट होती है । जिनको उसका अभ्यास है वे आत्मध्यान करती रहो, जिनको शक्ति नहीं वे उन जानकारोंकी वृत्ति देखकर प्रसन्न होती रहो । परमात्मध्यान ही मुक्तिका साक्षात् कारण है इस बातको अद्वाकर

सभी लोग पुण्याचरणको पालन करो, जरूर कल ही मुक्तिका मार्ग तुम लोगोंको दिखेगा ।

चट्टिका देवी प्रसन्न होकर बैठगई, इतनेमें ज्योतिर्माळा नामकी राणी उठकर राजर्षि भरतसे प्रश्न करने लगी कि स्वामिन् ! शास्त्रोंमें मर्म्यदर्शन, ज्ञान, चारित्र्य रूपी रत्नत्रय मुक्तिका साधन है ऐसा कहा है । परंतु आप कहते हैं कि एक मात्र आत्मयोग ही मुक्तिक साधन है । यह आगमविरोधी उपदेश आपने क्यों दिया ?

भरतजी कहने लगे कि ज्योतिर्माळा ! तुमने रहस्यको जानकर ही यह प्रश्न किया है । जाह्वास ! तुम्हारे विवेकपर मुझे प्रसन्नता हुई । अब सुनो मैं समझाता हूँ । तीन रत्न और आत्मामें कोई अंतर नहीं है । आत्माके स्वरूपको ही रत्नत्रय कहते हैं, दर्शन व ज्ञान यह आत्माका स्वरूप है । दर्शन ज्ञान स्वरूपमें स्थिर भावसे रहना उसे चारित्र्य कहते हैं । इमलिये ये तीनों बातें आत्मामे भिन्न नहीं हैं ।

देवी ! रत्नत्रय दो प्रकारका है । आत्मागमशास्त्रोंको श्रद्धान व जानकर व्रतादिकोंमें लगे रहना यह व्यवहार रत्नत्रय है । गुप्तरूपसे आत्माको ही जान व श्रद्धान कर चित्तगुप्तिमें रहना यह निश्चय रत्नत्रय है ।

पहिले तो व्यवहार रत्नत्रयका आश्रयकर बादमें निश्चय में ठहर जाना चाहिये । देवी ! उम्मी समय आत्माको ससारका दुःख नष्ट होता है । और मुक्तिकी प्राप्ति होती है ।

इतने में ज्योतिर्माळा को एक शका उत्पन्न हुई । कहने लगी कि स्वामिन् ! आपने यह कहा कि भगवतको श्रद्धा करना व्यवहार है । और आत्माकी श्रद्धा करना निश्चय है तो क्या भगवतमें भी बड़ा आत्मा है ? यह जान तो हमें समझमें नहीं आई । आप अच्छी तरह समझा दीजिये ।

भरतजी अपने मनमें विचार करने लगे कि अभ्यात्मयोग अनुभवमें ही आने योग्य विषय है। वह दूसरोंको कहनेमें नहीं आसकता है। यदि नहीं कहें तो मुक्तिकी प्राप्ति भी नहीं होती है। इन अशक्तोंका व्यर्थ अकल्याण नहीं होना चाहिये, इनको किसी उपाय से समझाना चाहिये।

सचमुचमें सम्राट् अत्यंत विवेकी थे। वे हरएकके अंतरंगको अच्छीतरह जानते थे। इसलिये वे प्रकट रूपसे कहने लगे कि,

देवी ! शुद्धात्मयोग भगवंतसे भी घटकर है यह अभी कहना उचित नहीं है। इस बातके यथार्थको सुम आगे जाकर ठीक २ समझेंगी। अभी तो श्रीपञ्च परमेष्ठियोंकी उपासना करो। भगवंत या पञ्चपरमेष्ठी आत्मामें भी घटकर है। परन्तु आत्मासे भिन्न रखकर उनकी पूजा करें तो वह उत्कृष्ट नहीं है। वह भगवत् अंदर अपने आत्मामें है ऐमा समझकर उपासना करना यही उत्कृष्ट धर्म है।

देवी ! भगवंतको बाहर रखकर उपासना करेगी तो उससे पुण्य बंध होगा। उसमें स्वर्गादिक सुखकी प्राप्ति होगी। यदि उसे अपनी आत्मामें रखकर उपासना करेगी तो सर्व कर्मोंका नाश होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होगी।

कांसेमें, पीतलमें, सोनेमें, चांदीमें व पत्थरमें भगवंतकी कल्पना कर उपासना करना वह व्यवहार भक्ति है, भेद भक्ति है दूसरे शब्दमें इसे नकली भक्ति भी कह सकते हैं। अपने निर्मल आत्मामें रखकर उसे उपासना करें तो वह अभेद भक्ति है। निश्चय भक्ति है, या उसे असली भक्ति कह सकते हैं।

देवी ! अब तुम्हें यह ज्ञान हुआ होगा कि व्यवहार मार्ग को ही भेद मार्ग कहते हैं । निश्चय मार्गको अभेद कहते हैं ।

अभेद मार्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वह कर्मरूपी सर्पकेलिये गरुडके समान है । इसलिए हमने तुम्हें कहा सपूर्ण दुर्भावोंको अलगकर सात्विकी धारण करो । और उसे सद्भावसे उस अभेद मार्गकी प्राप्ति करो । जिससे तुम्हें मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है ।

तब वह ज्योतिर्मान्वा देवी प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! यह आपका कहना निश्चुल ठीक है । उस पवित्र मार्गको ग्रहण करना आपकेलिये सरल है । परन्तु यह हमारा पर्याय स्त्री पर्याय है । हमारा वेष व आकार भी स्त्रीत्वसे युक्त है । आपने यह फरमाया था कि वह आत्मा पुरुषाकारमें रहता है । तो ऐसी अवस्थामें हम स्त्रियोंको उस पुरुषाकारी आत्माका ध्यान कैसे हो सकता है ? यह जग समझानेकी कृपा करे ।

देवी ! सुनो ! आत्माकी भावना करते समय उसे स्त्रीके रूपमें ध्यान करनेकी जरूरत नहीं, और न उस समय अपनेको स्त्री समझानेकी जरूरत है । जिस प्रकारके भावमें उसे भावना करो उसी प्रकार वह स्थित है । यात्री भावना यथ मित्रिर्भवति वात्सी—अर्थात् जिसकी वैसी भावना है उसको वैसी ही मित्रि होती है वह तब तब मान्य नहीं है ?

‘‘हां ! यदि पदस्थ पिण्डस्थ, रूपस्थ, स्वामीन इतने प्रकार तोगोमें अपनेको लगाकर फिर स्थान अपने आपमें ठहरना चाहिये । तबरा तब कहना है मंगे ।

देवी ! पचामसारा मंत्रके जो ३५ अक्षर हैं इनको अपने

हृदयमे पाच पंक्तियों में लिखकर देखो । वह पांच मोतीके हारोंके समान मालुम होते हैं । इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं ।

चंद्रकांत मणिसे निर्मित एक उज्ज्वल प्रतिमा स्फटिकके घड़ेमे जिस प्रकार रहता हो उसी प्रकार यह आत्मा इस देहमें रहता है ऐसा एकाम्रचित्तसे विचार करना उसे पिण्डस्थयोग कहते हैं ।

कोटिसूर्य व कोटिचंद्रके समान प्रकाश को धारण करनेवाले श्री भगवान् आदिनाथ हैं इस प्रकार ध्यान करना हे देवी ! वह रूपस्थ ध्यान है ।

सर्व कर्मोंसे रहित, निरुपम, निर्मल, निश्चल, चिद्रूपस्वरूप, अनंतसुखी ऐसे सिद्ध भगवंत हमारे शरीरमें हैं ऐसी कल्पना-कर एकाम्र चित्तवन करना इसे रूपातीत ध्यान कहते हैं ।

देवी ! पहिले २ इन चारों ध्यानोंका अभ्यास कर बादमें तीन ध्यानोंको छोड़कर केवल पिण्डस्थ ध्यान में ही ठहरने की जरूरत है । ज्ञानिगण इसी ध्यानकी प्राप्तिकेलिये प्रयत्न करते हैं ।

पिण्डस्थ ध्यानमें ही बाकीके सर्व ध्यान पिण्डित होकर रहते हैं । इसी पिण्डस्थ ध्यानसे ही कर्म खण्डित होकर जाते हैं और आत्माको अखण्डित सुखकी प्राप्ति होती है ।

देवी ! जप, स्तोत्र, दीक्षा, व्रत, स्वाध्याय, तप आदि सब इसीकेलिये सहायक हैं । इतना ही नहीं । इस पिण्डस्थ ध्यानके संबन्धमें यही कहा जा सकता है कि यह मुक्ति के लिये यह साक्षात् बीज है । जिनेन्द्र भगवंतका प्रियमार्ग है । या इसे निर्भेद भक्ति कहते हैं ।

देवी ! इस लोकमें दो प्रकारके प्राणी हैं । एक भव्य दूसरा

अभय । जो लोग कभी मुक्तिको ही प्राप्त कर ही नहीं सकते और इस ससारके दुःखोंको अनुभव करते ही अनाद्यन्त काल व्यतीत करते हैं वे अभय हैं । और वे आत्मयोगको अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं जिसे भय स्वीकार कर अनंत सुखको पा लेते हैं ।

देवी । वे अभय जीव शास्त्रोंको पठन करते हैं । उपवासादिक कर शरीर व पेटको सुखाते हैं । परन्तु उनका हृदय कठोर रहता है । वे पापी आत्मयोगको ढकोसला समझते हैं ।

उनको तो आत्मयोगकी प्राप्ति होती नहीं । जिनको उसकी प्राप्ति होती है उनकी वे निंदा करते रहते हैं । कभी किसीने उन्हें उस विषयको समझाया भी तो उनसे विसंवाद करते हैं कि यह ध्यान स्त्रियोंको प्राप्त नहीं हो सकता है । गृहस्थोंको प्राप्त नहीं हो सकता है ।

देवी । शास्त्रोंमें कहा है कि स्त्रियोंको व गृहस्थोंको शुद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है । परन्तु ये मूर्ख लोगोंको भडकाते हैं कि इनको धर्मध्यान भी नहीं हो सकता है । व्यवहार धर्मको तो ये मानते हैं, परन्तु निश्चय धर्मको ये स्वीकार नहीं करते हैं ।

देवी । उन्हें कोई ध्यान-शास्त्रका उपदेश देने जावें तो कई तरहसे बहाना बाजी बना लेते हैं, और कहते हैं कि आत्मयोगको धारण करनेकेलिये बहुतसे शास्त्रोंके अध्ययन करनेकी जरूरत है । और उसके लिये निर्ग्रन्थ दीक्षाकी आवश्यकता है । ये बातें हममें नहीं हैं । इसलिये हम इस आत्मयोगको धारण नहीं कर सकते । परन्तु, देवी । आश्चर्य है कि वे बहुतसे शास्त्रोंको पठनकर, निर्ग्रन्थ दीक्षासे दीक्षित होनेपर भी वे संसारमें भटकते रहते हैं ।

देवी ! आत्मध्यान अपनेसे होसके तो जरूर करना चाहिये, यदि उतनी शक्ति न हो ध्यानतत्त्वपर श्रद्धा न तो जरूर करना चाहिये केवल अपनेसे नहीं बने तो ध्यानकी निंदा करते रहना यह अभव्योंका कार्य है । इसलिये आप लोग इसे अच्छीतरह श्रद्धान करें । आप लोगोंको ध्यानका उदय न होवे तो भी कोई हर्ज नहीं है । संतोपके साथ भेदभक्तिका अभ्यास करती रहो, उसीसे आगे जाकर तुम लोगोंको मुक्तिकी प्राप्ति होगी ।

भगवत्पूजा, मुनिदान, शासन देवतासत्कार, जीवदया, आदि सत्क्रियाओंका अनुष्ठान करो, और साथमें आत्मकलापर श्रद्धान भी करो । आप लोगोंको अवश्य आगे जाकर मोक्षकी प्राप्ति होगी ।

देवी ! जिससमय सूतक काल है या मासिक धर्म सदृश अशुभ समय है उस समय उपर्युक्त शुभ क्रियाओंका आचरण करना उचित नहीं है । उस समय अशुचित्वानुप्रेक्षाकी भावना करते हुए मौनमे रहना चाहिये ।

इस प्रकार आप लोग उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करेंगी तो आपलोगोंका यह स्त्रीवेप दूर होजायगा । और स्वर्गको पाकर अवश्य मुक्तिको भी प्राप्त करेंगी । यह सिद्धांत है इसे अवश्य श्रद्धान करो ।

इस प्रकार सम्राट् भरतके उपदेशको सुनकर ज्योतिर्माळा आदि सभी राणियां अत्यंत प्रसन्न हुई, इतना ही नहीं उनको साक्षात् मुक्ति मिली हो इस प्रकार हर्ष हुआ । वे सब आनंदके साथ कहने लगी कि स्वामिन् ! आपकी कृपासे हमें आज उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है जो कभी किसी भी जन्ममें प्राप्त नहीं हुआ था अब हमें मुक्ति प्राप्त होनेमें क्या बड़ी बात है ? स्वा-

मिन् ! आपके संगसे हम कृतकृत्य होगई हैं । इन प्रकार कहकर सभी राणियोंने भरतजीके चरणमें नाष्टाग नमस्कार किया ।

भरतजीने नदानी उठनेकेलिफ कहा तब नव उठकर बैठ गई ।

मूर्ख अस्ताचलकी ओर चला गया है । सद्मेने जान लिया कि अब जिनवदनाका समय हुआ है । उनी नमय वे राणिया उस विशाल जिन मंदिरकी ओर चली गई । इधर भरतजी स्वाध्याय शालामे ही रहे ।

भरतजी राणियोंको उन जिनमंदिरके मार्गमें व भरतजी को स्वाध्याय मंदिरने छोड़कर हम जारा हमारे प्रेमी, पाठकोंके हृदय मंदिरमें जाते हैं । वे अपने मनमें विचार करते होंगे कि दिनभर उपवासी रहते हुए दुपहरने लेकर शान्तक बराबर तन्वचर्चा चल रही है । भरतजी व उनकी राणियोंको उपवासका कोई कष्ट नहीं होरहा है । बात क्या है ? विचार करनेपर जालुन होगा कि भरतजी रात दिन परमात्मा के प्रति इत प्रकार की भावना करते थे कि हे परमात्मन ! सत्कारमें एक मात्र आज्ञा पाश ही सर्व दुःखोंका कारण है । वही आत्माको दुःख समुद्रमें फसाता है । इसलिये उस आज्ञा पाशको दूर करने के लिये तुम्हारे सान्निध्यकी जरूरत है । इसलिये एक क्षणभर भी मुझे नहीं छोड़कर मेरे पास ही बने रहो । मैं सदन इधर उधरकी चिंता हटाकर तुम्हारी भावना करते रहूँ । यही नहीं मुझे खाने पीनेकी ओर भी उपयोग लगानेका मौका न मिले । जिससे सदा कालके लिये मेरे सुषादिक दुःख दूर हो जाय ।

ऐसी अवस्थामें उनको उपवासका कष्ट क्यों कर हो सकता है ? और भरतजी सदृश सत्सगतिमें रहनेवाली राणियोंको भी वह कष्ट क्यों कर होने लगा । यह सब पूर्व जन्ममें अर्जित पुण्यका फल है ।

इति तत्त्वोपदेश सधि ।



अथ पर्वयोगसंधि

उपर भगवन्की गणिया जिनेंद्र मद्रिकी ओर चली गई, उपर भगवन्की भगवन्की अर्घ्य प्रदान कर ध्यान करनेके लिये बैठ गये, कभी २ भगवन्की ध्यानके लिये कायोत्मगमें खड़े होनातं हैं और कभी २ पद्मामनमें बैठ जातं हैं। जब कभी बैसी इच्छा होती है उमी प्रकार ध्यान करते हैं। आज वे पश्यकामनमें बैठकर ध्यान करेंगे।

वज्रामन, कुक्कुटामन, वीरामन आदि कठिनसे कठिन आमन वज्रदेही भगवन्की लिये कोई कठिन नहीं है। फिर भी आज वे अपनी इच्छानुसार पद्मामनमें विराजमान होकर वज्रनिर्मित मूर्तिके समान थे।

भगवन्की ने पहिले ध्यान माधनकं प्रतिपादक प्राणापान पूर्व नामक शास्त्रको जैन मुनियोंके स्वाध्याय करते समय सुना था। उमीके आधारपर आज ध्यानकी एकाम्रताके लिये वायु मचार करने लगे।

शरीर में दश प्रकारके वायु कौन कौन में स्थानमें रहते हैं यह वे जानते थे। इसलिये उन दसों वायुओं को एक एक में एक एक को मिलाकर उन की चंचल वृत्ति को हटाने लगे।

मूलाधार बंध, ओष्ठ्याण बंध, जालग्र बंध आदि योग माधन क्रमसे पतंगके डोरेको ऊपर चढ़ानेके समान अपनी वायुको ब्रम्हर्धपर चढ़ाने लगे।

कुण्डल प्रदेशमें चानको चढ़ानेमें कामदेवका मद कम होगया। और मध्यप्रदेशमें वातके स्थिर होनेमे चंचलचित्त एक स्थानमें स्थिर होगया। ऊपल स्थानमें वायुके स्तंभ न करने में निराका धिलय होगया। उल्लाट प्रदेशमें दस वायुके ठहरनेसे प्रसाद

एकदम दूर होगया । मस्तकमें लेजाकर जब उस वायुको भरतजीने ठहराया उस समय शरीरमें एकदम प्रकाश होगया । अंधकार दूर हुआ । उस पवनके अभ्यासका क्या वर्णन करें ? बहुत तीव्र क्षुधा तृषा आदि अत्यंत कम हो जाती है । इतना ही नहीं विष मक्षणकर भी पवनाभ्यासके बलसे उसे जीर्ण कर सकते हैं ।

इन सब रहस्योंको सम्राट् अच्छीतरह जानते थे । इसलिये उस राजयोगीने सबसे पहिले पवनसंचार को स्तंभित कर आंखको आधी मीचकर नाकके अग्रभाग में धबल बिंदुको देखा । उस समय उनकी आत्मामें और भी विशुद्धि बढ़ गई । अर्थात् वातसंचारको रोकनेसे अधिक एकाम्रता उपन्न होगई ।

बादमें अच्छी तरह आंख मीचकर भग्न कुलरत्न भरतजीने अपने शरीरमें पंक्तिबद्ध विकसितदल छह कमलोंको देखा । वे कमल ललाट कंठ, हृदय नाभि, लिंग, पाद इन छह स्थानोंमें थे । क्रमसे उनके दलकी संख्या सोलह, बारह, दस, छह, पांच, चार थी । छह कमलोंके पचास दलोंमें सम्राट् पचास अक्षरोंकी स्थापना कर अत्यंत एकाम्रतासे ध्यान करने लगे ।

ह क्ष ये दो अक्षर और सोलह स्वर, कसे लेकर ठ तक बारह अक्षर एवं पाक्षरसे लेकर लाक्षर पर्यंत, व साक्षर व काक्षर को उन दलोंमें स्थापित किया । उन कमलोंकी कर्णिकामें अर्हकार व ओंकार की कल्पना कर एकाम्रचित्तसे पंद्रह ध्यानुका चिंतवन करने लगे ।

भुंज, पाद, मस्तक आदि शरीररूपी भुजपत्रयंत्रमें अनेक अजित मंत्रोंको लिखकर मनन करने लगे । उन दलोंपर स्थित अक्षर, यह मोतीकी माला तो नहीं है ? या निर्मल पानी की बूँदें

हैं ? अथवा चादनीके बीजकी राशि है ? इस प्रकार विचार उत्पन्न करते थे ।

अक्षरावली ध्यानको स्थगितकर उसी समय सम्राट्ने भगवान् आदिनाथ स्वामीको देखा । उस समय भगवान् समवशरणमें विराजमान थे । भरतजी समवशरण सहित भगवान्का दर्शन अपने शरीरमें ही कर रहे हैं ।

भगवान् आदि प्रभुके समवशरणमें परभौदारिक दिव्य शरीरका तेज देवोंकी पक्ति, दिव्यध्वनि, आदि अतिशय भरतजीको साक्षात् दिख रहे थे । उस समवशरणका दर्शनकर उन्होंने भाव पूजा की एवं उसी समय सिद्ध लोककी ओर अपनी आत्माको भेज दिया । वहापर तीन वातबलयोंको स्पर्श न कर केवलज्ञान दर्शन व सुखके ही आधारमें रहनेवाले श्री सिद्धपरमात्माको अत्यंत भक्तिसे पूजन किया व उनका ध्यान किया ।

उन अनंत सिद्धपरमात्मावोंकी भक्तिकर अब सम्राट्ने ध्यान के अभ्यासको स्थगित किया । वे एरुदम अब अमेद भक्तिकी ओर गये । अब उन्होंने इन्द्रिय व मनकी गति रोककर शरीररूपी जिनगृहके अंदर तत्क्षण परमात्माको देखनेके लिये प्रारंभ किया जिस प्रकार कि हाथपर रखे हुए दर्पणको ही देखते हों ।

अब भरतजीको अपने शरीरके अंदर प्रकाश ही प्रकाश दिखता है । जहा देखते हैं ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, तीन लोकमें परम सुन्दर उस आत्माको उन्होंने उस समय साक्षात्कार किया ।

परमात्मा इस शरीरके अंदर ही है । परंतु जो लोग बाह्य पदार्थोंको जानकर बाह्यपदार्थोंकी ओर ही उपयोग लगाते हैं उनको वह परमात्मा कभी दृष्टिगोचर नहीं होता है । वह मापने व तोलनेमें नहीं आसकता है । गिननेमें भी नहीं आसकता है । ऐसा वह विचित्र पदार्थ है । भरतजीने उसे देख ही लिया ।

जिस प्रकार अनंत आकाशको लाकर एक घड़ेमें भर दिया हो उस प्रकार अंगुष्ठसे लेकर मस्तकपर्यंत आत्माको पूर्णतः देख लिया या यों कहिये कि भरतजीने तत्वोंका अंत ही देखलिया ।

उस समय भरतजीके विचारमें कोई चंचलता नहीं, शरीर जरा भी इधर उधर हिलता नहीं, मनमें जरा भी चंचलता नहीं, इधर उधरका विकल्प नहीं, केवल अपने आत्मामें मग्न होगये है, शरीरका स्पर्श रहनेपर भी नहींके समान है जैसे सिद्धपरमात्मा तनुवातबलयमे स्पृष्ट होनेपर भी उससे बिल्कुल पृथक् है ।

भरतजीको उस समय यह अनुभव हो रहा था कि मैं चंद्रमण्डलमें प्रवेश कर गया हूँ । उसी प्रकार वे आत्मकीर्ति व आत्मशान्तिका अनुभव कर रहे थे । बीचमें कुछ चंचलताके आनेके बाद उन्हें ऐसा मालूम होता था कि अब चंद्रमण्डलको भेजाच्छादन हो गया है । उस समय कुछ अंधकार मालूम होने लगता था । उसी समय फिर वे अपने विचारोंमें दृढ़ता लाते थे । तत्क्षण वह अंधकार दूर होता था । परमात्माके प्रकाश की जागृति होती थी । एक क्षणमें फिर वहां अंधकार फिर प्रकाश इस प्रकार क्रम क्रमसे होता था । जिस प्रकार स्वप्न व अर्ध निद्राकी हालतमें होता हो उसी प्रकार उस समय भरतजीको आत्मसाक्षात्कार हो रहा था ।

जिस समय उन्हें प्रकाश दिख रहा था उस समय परमात्माका दर्शन होता था और उसी समय उनको आनंद भी होता था । जिससमय चंचलता आती थी उससमय एकदम अंधकार होता था और उसी समय कुछ दुःख भी होता था अर्थात् भरतजी एक ही समय मोक्ष व संसारकी दशाका अनुभव करते थे ।

अब उनके चारों तरफ प्रकाश है, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है । जैसे आकाशको देख रहे हों वैसे अपने शरीरस्थ आकाश-

स्वरूप आत्माको वे बराबर देख रहे हैं। आकाशमें चित्र खींचनेके समान बहावर भी आत्माके स्वरूपको चित्रित कर रहे हैं।

उनको अपने शरीरके अंदर सूर्यसे भी अधिक प्रकाश दिख रहा है। परंतु उसमें उग्नता नहीं है। साथमें आश्चर्य यह है कि उससे कर्म बराबर जलकर निकल रहे हैं। उष्णातासे रहित अग्नि कर्मको जला रहा है इस आश्चर्य घटनाको सम्राट् देख रहे हैं।

जिस प्रकार आकाशमें अनेक वर्णके मेघपटल इधर उधर संचार करते हैं उसी प्रकार सम्राट्के ध्यानसे कर्म की जड़ ढीली होकर वे बराबर पड़ रहे थे। उनको भरतजी देख रहे हैं।

जिस प्रकार कोयलेके पानीसे स्नान करनेपर उतरता हुआ पानी दिखता हो उसी प्रकार पाप वर्गणाथें उतरती हुई दिखती थी। लाल या पीले पानीसे स्नान करते समय उतरते हुए पानीके समान पुण्यकर्म निकलते जा रहे थे।

जिस प्रकार पानी पहाड़को कोरता है उसी प्रकार कर्मरूपी पहाड़को सम्राट्के ध्यान रूपी पानी कोर रहा है। जिन ! जिन ! आश्चर्य है। ध्यानतत्त्वकी बराबरी करनेवाला लोकमें क्या चीज है ?

जिस प्रकार सूईके धारके समान पानी बरसों तो गीली मट्टीके घड़ा पिघलकर चला जाता है उसी प्रकार उस ध्यानवर्षासे तैजस्र्गव कर्मण शरीर बराबर पिघलकर जा रहे थे।

गरुडको देखनेपर सर्पका विष अपने आप उतरकर जाता है उसी प्रकार भरतजीके ध्यानमें एकाग्रता जैसी आती जाती थी उसी प्रकार कर्मरूपी विष उतरता जाता है। साथमें अपनी आत्मामें ज्ञान, सुखके मात्राकी वृद्धि होती है।

जिस प्रकार धान्यकी गठड़ीकी रस्सीको ढीला करनेपर उससे

धान्य बाहर गिर जाता है उसी प्रकार कर्मकी गठडीकी रस्सीको ढीला करनेपर कर्मरेणु भी बाहर गिरते हैं। वह केवल ध्यानिको ही दिखते हैं। इसके रहस्यको उसके सिवाय अन्य कोई जान नहीं सकते।

जिस प्रकार हाथको पीछे मोड़कर मजबूत बांधे हुए चोरको जैसा २ बंधन ढीला होता जाय वैसा २ सुख घटता है उसी प्रकार कर्मका बंधन जैसा २ गिथिल होजाय वैसा ही सुखकी वृद्धि होनेलगी।

क्षण क्षणमे जैसे जैसे आत्माको देखते जाते हैं वैसे २ कर्म संतानफा न्हास होता जाता है। जैसे २ कर्मका नाश होता जाता है वैसे ही परमात्माके गुणोंकी वृद्धि होती जाती है।

कर्मोंकी धीरे २ कम करके सम्राट् आत्माको एक विशाल व सुंदर भवन तैयार कर रहे हैं जैसे कि एक हुशियार कारीगर टांकीसे पत्थरके उखेर उखेर कर सुंदर मंदिरका निर्माण करता हो। कभी २ आत्माको ज्ञान व कातिके साथ देख रहे हैं और कभी केवल ज्ञानरूप ही देख रहे हैं। अर्थात् एक दफे निर्विकल्पक रूपमे उसका अनुभव होता है। तत्क्षण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। विकल्पके बाद निर्विकल्प, उसके बाद विकल्प इस प्रकार बगवर पलटता जाता है। जैसे जलमें पवनके संचार होनेसे उसमें तरंग उठते हैं एवं पवनके स्थिर होनेसे जल भी शांत रहता है उसी प्रकार इस आत्माकी भी हालत है। चित्तमें 'बचलता' होनेसे विकल्पोंकी उत्पत्ति और चित्तमें स्थिरता होनेसे निर्विकल्पक अवस्था होती है। निर्विकल्पक अवस्था बहुत देर तक रह नहीं सकती, क्यों कि ध्यान के लिये उत्कृष्ट समय अंतमुहूर्तका बतलाया गया है। इसलिये उसके बाद तो विकल्प की उत्पत्ति होनी ही चाहिये।

एक दफे भरतजी विचार कर रहे हैं कि मैं भिन्न हूं, मेरा शरीर भिन्न है उससे कर्म भिन्न है। उसी समय मैं शब्दको वे भूल जाते हैं, एकदम सिद्धोंके समान परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं।

ध्यानकी अवस्थामें आत्माको देख रहे हैं, और साथ ही कर्मोंके पतनको भी ये देख रहे हैं। एवंच उन्हें कर्मोंको नाश करनेवाली इस अद्भुतविद्यापर प्रसन्नता भी होती है।

प्रसन्नताके मारे अदर ही अदर कभी २ भरतजी गुनगुनाते हैं कि हे परम गुरु! परमाराध्य! गुरु हंसनाथ! तुझारी जय हो! कभी इसे भी भूलकर फिर एकामावस्थामें मग्न होते हैं।

फिर उसमें आनंद आनेपर एकदम कह उठते हैं कि श्रीनि-
रंजन सिद्ध! सिद्धातसार! नित्यानंद! तुझारी जय हो! परंतु उनका यह कहना उन्हींको सुननेमें आता है। दूसरे कोई भी उसे सुन नहीं सकते।

उस समय भरतजी साक्षात् ऐसे मालूम होते थे कि उज्ज्वल अष्ट व अश्रुतपूर्व चादनीमें एक उज्ज्वल पुतलीकी स्थापना की हो। इतना ही क्यों? चंद्र व सूर्योके समूहमें ही जाकर बैठे तो नहीं है? या जिनेंद्रकी समवशरणादिक संपत्ति ही वहां एकत्रिक नहीं हुई? अथवा अनंत सिद्धोंके बीचमें जाकर तो नहीं बैठे? इस प्रकार राजयोगींद्रको उस समय अनुभव हो रहा था।

उस समय पंचेंद्रियका संबंध नहीं है। यही क्या? देवेंद्रके मुखको भी सामने रखे तो वह भी फीका पड़ता है। इस प्रकार भरतजी प्रमाद रहित होकर अतींद्रिय मुखका अनुभव करने लगे।

जब निर्विकल्पक विचारमें स्थिरता आजाती थी उस समय

सर्वांगमे शांति का अनुभव होता था। इतना ही नहीं स्व और पर का भी विकल्प बहापर नहीं है।

आनन्दसागरको अब भरतजी एक छोटेसे पात्रमें भरकर पीने लगे। जैसे २ वे पीते जाते थे वैसे २ वह समुद्र चमकता ही जाता था। उम समुद्रमे तरंग नहीं है, फेन नहीं पानी नहीं। वह लोकके समुद्रके समान नहीं है।

मगर, मत्स्य, सर्प आदि दुष्ट जानवर उस समुद्रमें नहीं है। भूमिका स्पर्श वह नहीं करता है। ध्यानिके सिवाय और किसी को भी वह समुद्र देखनेमें ही नहीं आ सकता है। भरतजी उस समुद्रमे बराबर डुबकी लगा रहे हैं।

पहिले भोगे हुए पंचेंद्रिय विषय संबंधी भोगोंको अत्यल्प प्रमाणमें वह दिखाता है। केवल श्री आदिप्रभु ही उस आनंद सागर को जानते हैं। वहींपर यह वीर जलक्रीडा कर रहे हैं। वह कितना उच्च सुख होगा ?

उस आत्मसुखको भोग सकते हैं, परंतु दूसरोंको उसकी व्याख्या कर कहना अशक्य है। आकाशमें चारणमुनियोंका विहार हो सकता है। परंतु जिस मार्गसे वे गये उस मार्ग में उनके पादोंका चिन्ह मिल सकता है क्या ? कभी नहीं।

उस समय सम्राट् अपनेमें अपने लिये, अपनेको ठहराकर और अपने द्वारा ही अपने को देखकर अपनेमें उमड़े हुए सुखको बराबर भोग रहे थे।

बाहरकी क्रीडा सामग्रीके बिना ही क्रीडा कर रहे हैं। रस्सी बगैरहके बिना ही झूला झूल रहे हैं। स्त्रीके बिना ही रत्नसुख का अनुभव कर रहे हैं मुखकी परवाह न करते हुए चिहुणाक्षका भोजन कर रहे हैं। शरीरके बिना ही रूपका दर्शन करा रहे हैं। ऐश्वर्यके बिना ही आज वे अत्यधिक श्रीमत् हैं। क्या ही

विचित्रता है ?

बाहर जो उन्हें देखते हैं उनको वे राजाके समान दिखते हैं । अंदरसे वे राजयोगि हैं । साथ में निजानंद रसको भी बराबर भोग रहे हैं । इसलिये भोगी भी हैं ।

बाहर से देखें तो आभरण हैं, वस्त्र हैं, परंतु अन्दरसे ध्यानके सिवाय और कुछ भी नहीं है । ऐसा मालुम होता है कि शायद सिद्ध परमेश्वरीको वस्त्र व आभरणसे श्रृंगार कर बैठा दिया हो ।

कभी २ आभरणोंको निकालकर केवल एक घोंटी पहनकर वे ध्यान करनेके लिये बैठते थे और कभी आभूषणोंको वैसा ही रखकर ध्यान करते थे, परंतु बाहरसे ही सब कुछ रहते थे । अंदरसे उनका कुण्ड भी प्रभाव नहीं था ।

भरतजीका शरीर सग्रथ है परन्तु आत्मा उस समय निर्ग्रथ है । इस विचित्र दशा में उन्हें अलौकिक सुखका अनुभव होरहा है ।

अब भरतजीकी आँखोंमें आनदाश्रुका पात होरहा है शायद यह अंदर वह आत्मानंद उमड़ कर बाहर आरहा है । सारे शरीर में रोमांच होगया है । परंतु वे अपने ध्यानमें मग्न हैं ।

परमात्मसुखको भोगकर भरतजी जरा मस्त, मोटे ताले होगये । इसलिये उनके गले के मोतीका हार जरा अन्न हिलने लगा है ।

भेद भक्तिमें उन्होंने पहिले ध्यानका अभ्यास किया था तदनंतर अभेदभक्ति में आरुढ़ होगये । उस समय वे पहिलेके सर्व सुखको भूलकर अपने स्वरूपमें डीन होगये ।

यदि कोई जवान् स्त्री आकर भरतजीको आलिंगन दें तो भी उनको मालुम नहीं हो सकता है अर्थात् वे इतनी एकाग्रतामें बाह्य सब विषयोंको भूलकर अपने आत्मामें मग्न होगये हैं ।

जिस प्रकार मूसलधार पानी बरसते समय लोग स्तब्ध होकर अपने मकानमें बैठे रहते हैं उसी प्रकार पादरके कुछ भी विषयोंको न जानकर भरतजी अपने आत्मराज्यमें लीन होगये हैं।

क्या वे स्वर्ग लोकमें हैं ? ज्योतिर्लोकमें हैं ? बहिर्लोकमें हैं ? नरलोकमें हैं या नागलोकमें हैं ? नहीं ! नहीं ! वे अंतर्लोकमें मौजूद हैं।

भेदविज्ञानरुही जेणीमे शरीरको भेदकर वहांपर परमात्माकी स्थापनाकर उसकी उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार भरतजी अत्यंत एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न होगये।

उधर चतुर्मुखमंदिरमें सायबदनके लिये गई हुई भरतकी राणियां उत्तमभक्तिके माध भगवान् आदि प्रभुकी स्तुति करनेको प्रारंभ करेंगी इसकी सूचना देनेके लिये ही मानो सूर्यदेव उत्तर क्षितिकी ओर चला गया। उस समय सायंकालकी छालिमा दिपने लगी वह मानो उन चंद्रमुखी स्त्रियोंकी जिनभक्तिका ही बाह्य चिन्ह है। इनके लिये आकाश ही पुष्पके रूपमें परिणत हुआ हो उस प्रकार तारार्ये आकाशमें चमकने लगी।

समवशरणमें दिव्यध्वनिके सिरनेका यही समय है ऐसा समझकर उनस्त्रियोंने श्री ऋषभचरणकी स्तुतिकरनेके लिये प्रारंभ किया।

उस समय उन स्त्रियोंमें न आलस्य था न प्रमाद था और न इधर उधरकी कोई बात चीत थी। परंतु सतोष, शान्ति व भक्तिके माध श्री जिनेंद्र भगवंतकी उन्होने स्तुति की।

घटनाष्टक.

स्वामिन् ! आप जन्म जरा मृत्युको दूर कर चुके हैं ! तपो-धन रूपी कमलके लिये आप सूर्यके समान हैं। कामदेवको आप जीत चुके हैं। कामदेव बाहुबलिके आप पिता हैं। ज्ञानस्वरूप हैं

और आप प्रथम तीर्थकर हैं ।

भगवन् ! दिव्यध्वनि रूपी लक्ष्मीके आप पति हैं । आपके पाद कमलोंको दश दिक्पालक देव उपासना करते हैं । आप ही आदि ब्रह्मा है । केवलज्ञान व केवलदर्शन ही आपका स्वरूप है ।

त्रिलोकदीप ! आपका ध्वज सत्य स्वरूप है । सदा आनन्दमें आप मग्न रहते हैं । सर्व प्रकारके बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहोंसे आप रहित हैं और सद्बोधसे सहित हैं । आप किसीके अवलम्बनसे नहीं रहते । त्रिभुवनके प्राणियोंके द्वारा आप स्तुत्य हैं ।

पवित्रात्मन् ! आप अपने अत्यन्त धवल कीर्तिसे तीन लोकको भर चुके हैं । कोटि वृद्ध व सूर्यके समान आपका तेज है । आप अत्यन्त निष्पाप हैं आपकी जय हो ।

स्वामिन् ! आपके दरबारमें देवगण उपस्थित होकर आपकी रात दिन स्तुति करते हैं । एव भक्तिवश सुरपट्ट, अशोकवृक्ष, भामण्डल आदि अतिशयोंको उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार आप अत्यन्त वैभवसे युक्त हैं ।

भगवन् ! आपके वचन उत्तमतरंगोंसे युक्त गंगा नदीके जलसे भी अधिक शीतल हैं । उसमें अंग अगबाह्य आदि भेद होते हैं । वही जैन शास्त्र हैं ।

त्रिलोकीनाथ ! आप कर्म लेपसे रहित हैं, आपकी सेवामें देवेंद्र भी हाथ जोड़कर चौबीस घंटे खड़ा रहता है । आपकी वंदना व भक्ति करता है । स्वामिन् ! अपने कल्याण करनेवालेकी स्तुति कौन न करेगा ? आप शरीरको लोप करनेके लिए संजीविनीका दान करते हैं । आपकी जय हो ।

दयानिधि ! आपका लालन वृषभ है । इसलिये वृषभ चिन्ह से युक्त हैं । वृषध्वज आप हैं । वृषभमुख नामक यक्षका आप अधिपति हैं । आप वृषभ तीर्थकर हैं । वृषभ जिनेश्वर हैं ।

शुषभ नायक हैं। वृषभके अधिपति हैं।

इत्यादि प्रकारसे अत्यंत भक्तिपूर्वक भगवान् आदिप्रभुकी स्तुति करती हुई वे राणियां जिन मंदिरमें शुभोपयोग में अपने समयको व्यतीत कर रही थी इतनेमें भरतजी जहां ध्यानकेलिए विराजे हैं उस स्वाध्यायशालामें एक अद्भुत घटना हुई जिसे देखनेकेलिये हम पाठकोंको उधर ले जाते हैं।

जिस समय भरतकी राणियां जिनमंदिरकी संध्यातंत्रनके लिये चली गई उस समय भरतजी एकाग्रताके साथ ध्यातमें मग्न होगये यह विषय हम पीछे विवेचन कर चुके हैं। इस समय भरतजी के सातिशय ध्यानकी महिमाको देखनेके लिये वहांपर वनदेवी, नगरदेवी, जलदेवी, आदि शासनदेवतायें उपस्थित हुई व मनुवंश तिलक सम्राट् के ध्यानको देखकर उन लोगोंने नाकपर वंगुली दबाई।

आत्मारामको साधन करनेवाले राजयोगी के अज्ञान ध्यानको देखकर उन व्यंत्तर देवताओं के हर्षका पारावारा रहा नहीं। अंगुष्ठसे लेकर मस्तकतक चारीकीसे सम्राट् को देखती हैं, परंतु पत्थर जैसे ध्रुव है।

एक दफे वे देवतायें हाथ जोड़ती हैं, एकदफे हर्षसे सिर झुकाती हैं। एकदफे पूजा करती हैं, कोई चामर लेकर डोल रही हैं, कोई पुष्पवृष्टि कर रही है और कोई भक्ति से आरति उतार रही हैं।

धीरे २ भरतकी स्तुति भी वे देवतायें करने लगी। साथमें झांक झांककर राणियोंके मार्गकी ओर भी देख रही हैं कि - वे आई तो नहीं हैं ? कुछ देवतायें आश्चर्यचकित होकर दूरसे खड़ी २ भरतजीको देख रही हैं।

बाहरसे यह सब उत्सव होरहा है। इन सबको भरतजी

जानते हैं या नहीं ? जिस समय ध्यानमें एकाग्रतासे लीन हैं उस समय तो उनको इन बाह्य क्रियाओंका अनुभव नहीं होता है । परंतु बीचमें चंचलता उत्पन्न होजाय तो ध्यान भी विचलित होजाता है, विचलित अवस्थामें उनको बाहरकी देवताओंका उत्सव भी देखनेमें आता था । परंतु उनको देगनसे सम्राट्को कोई हर्ष नहीं होता था, अत्यंत उदासीन भावमें उनको देखते थे । कारण कि भरतजी आत्मतत्त्वके प्रभावको जानते थे । जो लोग अविवेकको छोड़कर आत्मरूपका दर्शन करते हैं उनके चरणमें तीन लोक शिर झुकाता है तो व्यंतरदेव आकर सेवा करें इसमें आश्चर्य क्या है ? इस प्रकार समझकर अत्यंत श्रद्धा भावसे अपने आत्मा को चिंतन कर रहे थे ।

कर्मकी गति अत्यंत विचित्र है । भरतजीको इस बातका संतोष हुआ था कि सभी राणियां जिनदर्शनके लिये चली गईं । अब मैं अकेला बैठकर अच्छीतरह ध्यान करसकूंगा । परंतु एकाकी रहनेको पूर्व पुण्य कहा छोड़ता है ? स्त्रियोंके चले जानेपर भी व्यंतर देवतायें तो भरतजीकी सेवामें उपस्थित हुईं । सचमुचमें उस समयके दृश्यका क्या वर्णन करे ?

वह स्वाध्याय मण्डप नव रत्नमय था । उस नवरत्नमय मंदिरमें भरतजी भगवतके समान मालूम होते थे । और अनेक प्रकारकी देवतायें वहापर श्री भगवतकी पूजा व भक्ति कर रही थी रात्रीका एक प्रहर बीतगया ।

भरतजी बाहरके विषयोंसे अपने विकल्पको हटाकर अपने आत्मामें मग्न थे । अब उनकी राणियां मंदिरसे स्वाध्याय मण्डपकी ओर जानेके लिये निकली, संध्याकालमें वृद्ध पूजेंद्रके द्वारा की गई पूजाको अत्यंत भक्तिसे देखकर ब्रह्माजलिसे त्रिलोकी नाथको नमस्कार करती हुई लोकोद्धारक अपने पतिकी सेवामें वे

स्त्रियां अब आरही हैं ।

उस दिन उनके साथमें कोई दासी नहीं है । इतना ही नहीं स्वतः के शरीरमें कोई आभरण भी नहीं है । अत्यंत पवित्र तपस्विनीके समान वे मालुम होती हैं । रोज वे यदि कहीं जाती हैं तो उनके साथ दीपकको लेचलनेवाली दासिया भी रहती है, परंतु उनके साथ आज कोई दीपकदासी नहीं है । क्या वे स्वतः अपने हाथमें दीपक लेकर चल नहीं सकती है ? नहीं ! नहीं ! उनको दीपककी जरूरत ही नहीं है । बहुमूल्य रत्नोंसे जटित अंगुठियोंके प्रकाशसे ही वे बराबर मार्गको तय कर रही थी । वह भी जाने दो, मोती व पद्मराग मणियोंसे निर्मित मंदिरके कलश, परकोटा आदिके रत्नकी कातिसे सहसा भ्रम होता था कि यह दिन तो नहीं है ?

इन सतियोंको दूरसे ही आती हुई देखकर व्यंतरदेवतायें एकदम अदृश्य होगई, भरतजी ध्यानमें मग्न हैं, देवतावोंने उनकी पूजा की, अब मनुष्य स्त्रियां आकर उनकी पूजा करेंगी । वे राणियां दूरसे ही खड़ी होकर ध्यानस्थ सम्राट् को देखने लगी,

मेरु पर्वत ही साक्षात् पुरुषके आकारमें इस स्वाध्यायमण्डप में आकर विराजमान है ऐसा उन्हें मालुम होरहा था ।

सोनेकी चौकीकी दोनों ओर रत्ननिर्मित जिन व सिद्धकी मूर्तिसे वह स्वाध्याय शाला शोभित होरही थी । शृंगार, कलश, दर्पण, चामर रत्न तोरण आदि मंगल द्रव्य भी यत्र तत्र रखे हुए हैं । रत्नदीपककी पंक्ति भी अत्यंत सुंदर प्रतीत होरही थी । वह भरतचक्रवर्तिकी योगशाला उस समय हर तरहसे रत्नमय ही हो गया था । पाठक भूले न होंगे कि यह सब अतिशय व्यंतरदेव कर गये हैं ।

सूर्य लोक सहश उस रत्न मण्डपमें प्रवेशकर उन राणियोंने

योगिराज भरतजीको तीन प्रदक्षिणा दी व सभी वहापर बैठ गई।

अब उन लोगोंने विचार किया कि कुछ धर्मचर्चा करनी चाहिये। यद्यपि भरतजी ध्यानमें बैठे हैं तो भी इनकी बातचीतसे उनको कोई विघ्न नहीं होसकता है, कारण कि जिसने नया ही नया ध्यानका अभ्यास किया हो उनको इधर उधरसे हल्ला गुल्ला होनेपर चित्तमें क्षोभ होसकता है। परंतु ये तो व्युत्पन्न ध्यानी हैं, इसलिये इनके चित्तमें बाह्यके विषयोंसे क्षोभ उत्पन्न नहीं हो सकता है अतएव उन लोगोंने विचार किया कि अपन लोग अब आध्यात्मिक चर्चा करें।

रत्नदीपकोंके प्रकाशमें परमात्मरत्नका वर्णन जिस शास्त्रमें हो उसे उन स्त्रियोंने वाचनेको प्रारंभ किया वह भोजन कथा नहीं है, जार व चोर कथा भी नहीं है। ससारकी विषय वासनाओंकी ओर खींचनेकी कथा भी नहीं, अपितु आत्मसाधनकी कथा है।

भरत चक्रवर्तीने पहिले भगवान् आदि प्रभुके समवशरणमें जाकर आत्मप्रवाद नामक आत्मतत्त्वविवेचनको जानकर उसे सर्व साधारणको समझने योग्य सरल भाषासे एक ग्रंथकी रचना की थी। उसीका स्वाध्याय ये स्त्रियां कर रही हैं।

कलियुगमें कुदकुदाचार्य परमयोगीने जिस प्रकार प्राभृतशास्त्रका निर्माण किया उसी प्रकार सतयुगमें भरतयोगीने उस शास्त्रका निर्माण किया था।

कलियुगमें जिस प्रकार अमृतचंद्र सूरिने समयसार नाटककी रचनाकर आत्मकलाका प्रदर्शन किया उसी प्रकार कृतयुगमें चक्रवर्ती भरतने वक्त ग्रंथमें परमात्मकलाका अच्छीतरह दिग्दर्शन कराया है।

योगीन्द्रस्वामीने प्रभाकर भट्टको जिस प्रकार बहुत सुदुःखों

में परमात्मकथाको सुनाया है उसीप्रकार भरतयोगीने अज्ञानियों को भी परमात्मतत्त्वमें रुचि उत्पन्न हो जाय इस विचारसे उक्त ग्रंथमें सुंदर व शृङ्गद्वारोंसे विषय विवेचन किया है।

पद्मनंदि योगीके द्वारा निर्मित स्वरूपसंशोधन, पूज्यपाद स्वामी विरचित सगाधिशतकके समान ही उक्त ग्रंथमें तत्त्वविवेचन किया गया है।

ज्ञानार्णव, योगरत्नाकर, रत्नपरीक्षा, आरधनासार, आदि सिद्धांतोंके समान ही उक्त ग्रंथमें आत्मतत्त्वका प्ररूपण किया गया है, विंगप क्या ? इष्टोपदेश, अष्टमहस्त्री व कुंदकुन्दाचार्यकृत अनुप्रेक्षा शास्त्रके समान ही आत्माको आत्मादित करनेवाला यह महान् ग्रंथ था।

संक्षेपमें विचार किया जाय तो यह नियमसारके समान था। विस्तारमें यह प्राश्रुत शास्त्रके समान था।

भरतजीने उन स्त्रियोंको मिलाया था कि आपलोग इधर उधर के बहुतसे, शास्त्रोंको जिनमें आत्महित होने की कोई संभावना ही न हो, यांचकर अपना अकल्याण न करलेयें, केवल अपने आत्म-हितके साधक इस अध्यात्मसारका अध्ययन करें।

लोकमें अगणित शास्त्रोंको यांचनेपर भी जिनको आत्म कल्याण करनेकी भावना उत्पन्न न हुई तो उन शास्त्रोंके यांचनेसे प्रयोजन क्या है इसलिये ऐसे ही शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये जिनसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हमें होमके।

जो लोग ध्यानके लिये साधक शास्त्रोंका अध्ययन नहीं करते और ख्याति, लाभ व पूजा के लिये अन्य अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं सचमुचमें वे मूर्ख हैं। वे नीच प्रकृतिके हैं, वे नेत्ररो गके बहानसे युक्त रीछके समान हैं। लोकमें उनकी हंसी होती है।

संपूर्ण शास्त्रोंका मार अध्यात्मार्चितवन है। और वही निष्क-

लंक तपश्चर्या है। व वही मुक्तिका बीज है इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतजीने उनको कितने ही बार उपदेश दिया था। इसलिये उन सब बातोंको स्मरण करती हुई अत्यन्त एकाग्रताके साथ स्वाध्यायमें दत्तचित्त होगई है। कोई भी आपसमें इधर उधरकी बातें नहीं करती हैं। केवल आध्यात्मिक चर्चा करती हुई ही अपने समय को व्यतीत कर रही है।

वे राणिया भरतजीके द्वारा निर्मित अध्यात्मसार नामक पुस्तक को बाच रही है। क्या उस पुस्तकमें आत्मा मौजूद है? नहीं, नहीं, पुस्तक तो यह कहती है कि आत्मा तुम्हारे शरीर में है, तुम उसे अपने ही स्थानमें देखो।

वे खिया विचार कर रही है कि अभीतक हम लोग बाह्यमें ही मोहित होकर हम बाह्य हो रही थी परन्तु हमें अब प्राण अध्यात्म मिल गया है। हमारा अब कल्याण होगा।

इस समय उनमें से कुछ खिया कई तरहके वाद्योंको लेकर उनके साथ प्राभृत शास्त्रके अर्थोंको गाने लगी। कोई २ वीणाके साथ अत्यन्त सुस्वरके साथ गारही हैं।

उस समय रात्रीके १२ बजे हैं। इस लिये उस समयके लिये उचित देसि, रामाक्षि, भैरवि, कुरुजिका आदि रागोंके क्रमको जानकर ही वे अत्यन्त सृष्टुमधुर शब्दोंसे गारही थी जिससे सब लोगोंका आलस्य दूर होजाय।

लोकमें इतर कोई खिया उपवास करें तो वे उठ ही नहीं सकती हैं। किसी तरह उठती पड़ती दिन और रात पूरा करती हैं। परन्तु ये राणिया इस चातुर्यसे आलाप कर रही थी कि सात बार भोजन किये हुए गायक भी उतने अच्छीतरह गा नहीं सकता, अर्थात् उन खियोंको उपवासका कोई आयास ही नहीं, अत्यन्त उत्साहसे आत्मकार्यमें मग्न हैं।

इस प्रकार उनमें कुछ स्त्रियां साहित्य और संगीतरसमें मग्न थी, और कुछ जप करनेमें दत्तचित्त थी । और कुछ जिनसिद्ध विर्षोंको अपने हृदयमें स्थापन कर दाहिने हाथमें जपमालाको झरकाती हुई पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूप को चिंतवन करने लगी ।

कुछ स्त्रियां पंचमंत्रका जप कर रही थी और कुछ अपने चंचलचित्तमें निश्चलता लाकर ध्यान का प्रयत्न करने लगी ।

जिस प्रकार भरतजीने ध्यानके लिये आदेश दिया है उसी प्रकार वे निश्चलतासे बैठकर आंखोंको बंद कर, अक्षरात्मक ध्यानको करने लगी हैं, उन ध्यानमें कभी वह कमलासन आदिब्रह्मा भगवान् आदिनाथका दर्शन करती हैं, और कभी लोकप्रवासी सिद्धोंका दर्शन करती हैं । इनके ध्यानमें निश्चलता नहीं । एक क्षणमें भगवान्का दर्शन होता है, दूसरे क्षणमें विलय होता है । क्या वह ध्यानतत्त्व इतना सरल है जो कि भरतके समान सबको अवगत होजाय ? नहीं ।

ध्यान साक्षात् रूपसे पुरुष ही करते हैं, स्त्रिया ध्यानकी भावना करती हैं । इधर उधरके विकल्पोंको हटाकर यदि वे स्त्रिया निश्चलचित्तसे ठहरती हैं तो वह ध्यान नहीं अपितु ध्यानका स्मरण है । ध्यानकी भावना है ।

इस प्रकार भरतकी सतिया कोई ऋद्धब्रह्मसे (स्वाध्याय) कोई गीतनादब्रह्मसे (गायन) और कोई योगब्रह्मसे (ध्यान) उस रात्रीको व्यतीत कर रही थी ।

इस प्रकार जब वे स्त्रियां ब्रह्मत्रय पूजामें मग्न थी उस समय श्री भरतजी अपने निश्चल परब्रह्ममें मग्न थे ।

कभी वे शुद्धोपयोगमें मग्न होते हैं, और कभी शुद्धोपयोगके साधनभूत शुभोपयोगका अवलंघन लेते हैं ।

इस प्रकार उपवासके आयाससे रहित होकर वे अत्यंत संतो-
षके साथ भीषण कर्मोंको नाश करते हुए अपने समयको व्यतीत
कर रहे हैं ।

रात्री बीतगई, अब सूर्योदय होनेके लिये पाच घटिका शेष
है । भरतजी अभीतक ध्यानमें ही मग्न है ।

इति पर्वयोगसंधिः



अथ पारणा संधिः



भरतजी अभीतक ध्यानमें मग्न हैं। उनके ध्यानका क्या वर्णन करें, शांति, कांति व एकांतका आदर्श वहांपर था।

कोयलके शब्द, वीणाके स्वर व समुद्रके घोषके समान वह ब्रह्मयोग भरतजीके कानमें मीठी २ आवाज उत्पन्न कर रहा है। उनको मोतीकी घबल बिंदुका भी दर्शन होरहा है। कभी आनंदसे मैं इधर उधर जारहा हू इस बातके सुखका अनुभव होरहा है। साथमें रत्नमालाके अदर अक्षर पंक्तियोंको भी उस ध्यानमें वे देख रहे हैं साथमें रत्नत्रयसे युक्त आत्माको देखकर सपत्न कर्मोंको नाश कर रहे हैं।

अंदर से भरतजी शुद्ध स्वरूप आत्माको देखरहे हैं। बाहरसे भी अब प्रकाश होने लगा है।

शीत पवनका संचार होने लगा। तारावोंकी कांति फीकी पड़गई, जगतका अधकार कम हुआ, जिनमंदिरोमें वाद्यघोष भी होने लगा सूर्य देवसे रहा नहीं गया, मैं जल्दी जाकर आत्मयोगी भरतका दर्शन करता हूं एवं उसकी पारणा करावूंगा इस विचार से वह क्षीघ्रगतिसे अपने रथको चलाते हुए उदयाचलपर आकर चढ़ गया। उस समय उसके आगमनकी सूचना जिनमंदिरके उन्नत शिखरके कलशपर पड़े हुए अरुण किरण दे रहे थे।

भरतकी राणियोंने आकार प्रार्थना की कि स्वामिन्! अब सूर्योदय होगया है, अब तो आप आंख खोलनेकी कृपाकरें, भरतजीने अंतरंगमें ही शांतिभक्तिका पाठ किया एवं चिदंबरपुरुष परमात्माको नमस्कार कर शांत दृष्टिसे आंखें खोल ली।

उसी समय राणियोंने आकर सविनय नमस्कार किया। आशिर्वाद देते हुए सबको उठाकर उनके साथ मिलकर स्नान गृहमें गये। वहां योगस्नान कर जिनमंदिरको चले गये।

सबसे पहिले मंदिरमे आसनदेवताओंको अर्घ्य प्रदान कर श्री भगवंतका स्तोत्र व जप किया, तदनंतर अपनी देवियोंके साथ श्री जिनैन्द्र भगवंतकी पूजा की ।

जल गंध, अक्षत पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्यके साथ जिस समय भगवानका पूजन श्री भरतजी कर रहे थे उस समय वह जिनमंदिर अनेक मंगल वाद्योंसे गूँज रहा था ।

अर्घ्य प्रदानके बाद शातिधारा छोड़ दी एवं अनेक अनर्घ्य रत्नोंसे जयजयाकार शब्दके साथ पुष्पाजलि वृष्टि की ।

तदनंतर भरतजीने अपनी देवियोंके साथ गंधोदक को अत्यंत आदरके साथ ग्रहण किया भगवंतके सामने खड़े होकर कहने लगे कि कल हमने जो व्रत लिए उनकी पूर्ति हुई, अब हम उन व्रतोंका विसर्जन करते हैं । इस प्रकार कहते हुए पहिले दिन के बंधे हुए व्रतकंकण को उतार कर वहा पर रखा । इसी प्रकार सब स्त्रियोंने भी कंकण उतार दिया ।

तदनंतर भरतजीने अपनी स्त्रियोंके मुखकी ओर देखा ।

कुछ स्त्रियोंके मुख प्रसन्न दिख रहे थे । और कुछ स्त्रियोंके मुख म्लान दिख रहे थे । भरतजी समझ गये कि जिनके मुख म्लान हुए हैं वे स्त्रिया प्रथम उपवास की हैं । उनको उपवास करनेका अभ्यास नहीं, जिनको पहिलेसे उपवास करनेका अभ्यास था उन स्त्रियोंका मुख प्रसन्न दिख रहा था ।

भरतजी अपने मनमे ही विचार करने लगे कि हा ! इन विचारी स्त्रियोंने उपवास व्रतको सरल समझकर ग्रहण किया, परंतु इनको कष्ट हुआ मालुम होता है । तदनंतर प्रकट रूपसे कहने लगे कि देवी ! आप लोग ! बहुत देरी हुई, जल्दी जाकर पारणा करो ।

तब उन स्त्रियोंने सासकी वदना कर पारणा करनेका विचार प्रकट किया ।

तब सम्राट्ने कहा कि देवी ! आज आप लोग सासकी वंदना करती हुई विलंब न करें, नवीन संयमिनियोंके साथ मिलकर सब शीघ्र पारणा करें । साथमें इस बातका ध्यान रखें कि जो अनभ्यस्त उपवासिनी है उनके पास कोई अभ्यस्त उपवासिनी खड़ी रहेकर उनको योग्य रीतिसे पारणा करावें, यही सज्जनोंका कर्तव्य है ।

तब उन स्त्रियोंने कहा कि स्वामिन् ! आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही हम करेंगी, परंतु हम अपने नियमानुसार एक दफे हमारी सासकी वंदना कर आयेगी । स्वामिन् ! आपको हम लोगोंके प्रति इस प्रकारका विचार क्यों हुआ । हमें उपवासका कोई कष्ट नहीं हुआ ।

सम्राट् कहने लगे कि देवी ! मैं जानता हूं कि आप लोग धैर्यवती हैं परंतु अधिक धूप होनेसे पित्तका प्रकोप होता है । इसलिये उसका ध्यान जरूर रखें ।

तब उन देवियोंने कहा कि स्वामिन् ! हमेशा हम लोग सासकी वंदना करती हैं । आज तो पर्व दिन है । इसलिये आज हम गये बिना कैसे रह सकती हैं ?

देवी ! रोज तुम लोग सासका दर्शन करो । आजके दिन नहीं करे तो भी चलेगा । जावो ! जल्दी पारणा करनेकी तैयारी करो ।

स्वामिन् ! प्रतिनित्यके समान हम लोग आज दर्शन के लिये नहीं जावें तो हमारी पूज्य सासके मनको कष्ट नहीं होगा ?

देवी ! यदि कही हुई आज्ञाको आप लोग नहीं मानेंगी तो तुम्हारी सासके बेटे को कष्ट नहीं होगा ? जरा विचार करो । जावो ।

इस बातको सुनकर वे स्त्रियां हंसकर कहने लगी कि आज हम लोग माता यशस्वती देवीके दर्शनसे वंचित होगई । दर्ज नहीं

हम अब पारणाके लिए जाती हैं ।

देवी । जावो ! चिंता मत करो । पुत्रकी बात सुननेसे माता यशस्वती तुम लोगोंसे प्रसन्न हो जायगी । कुछ लोग नर्वीन उपवासिनियोंको भोजन कराने जावो । और कुछ लोग माताकी वदनाकेलिये जावो । देखो ! कोई चिंता मत करो । आज मातुश्री हमारे महल में भोजन करें वैसे व्यवस्था करेंगे जिससे सबको दर्शन करनेका मौका मिल जायगा ।

इस बातको सुनकर सब स्त्रिया प्रसन्न होकर जाने लगी । उनमें से पारणाकेलिये जानेवाली स्त्रियोंको बुलाकर सम्राट्ने कहा कि देवी ! देखो ! पहिले पहिले उपवास करना महान् कष्ट है । उदरमें आग होती है । जलाती है । परतु पीछे अभ्यास होनेपर यह उपवास सरल हो जाता है । उसी उपवासकी आगसे कर्म भी भस्म हो जाता है ।

एक दिनका उपवास भी कर्मको अच्छी तरह सताता है । आगे उससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है । जन्ममरणका सकट टलजता है । देवी ! युक्तिकी प्राप्तिकेलिये अभेद भक्तिकी आवश्यकता है । अभेद भक्तिके लिये विरक्तिकी आवश्यकता है । विरक्तिके लिये यथाशक्ति तपकी आवश्यकता है । तपकेलिये भी युक्तिकी आवश्यकता है । वही युक्ति यह उपवास है ।

उपवास किया हुआ शरीर अत्यन्त उष्ण रहता है । इसलिये बहुत सावधानीसे भोजन करना । दो चार घास लेनेके बाद एक दम चकर आता है । उस समय होशियार रहना ।

एक दम अन्न उतरता नहीं । पानी पीना अत्यधिक भाता है । प्यास अधिक लगती है । परंतु एकदम पानी पीना ठीक नहीं । पहिले किसी तरह अन्नका ग्रहण धीरे धीरे करके बादमें पानी लेना चाहिये । पहिलेसे पानी नहीं लेना ।

देवी ! जिस प्रकार नवीन सड़केपर पानी हाउनेपर पुष्प
गन्ध होता है इसी प्रकार नवीन घाम केनेपर एकदम शरीरमें भी
पुष्प होता है, चारों तरफमें पीलापना दिग्गने लगता है । उस
समय पहराना नदी ।

बहिले ० इसयाम कष्टपर गाहुन होनेपर भी बादमें उससे
मदान् सुखकी प्राप्ति होती है । कम त्रिभिन् होता है, मोगकी
प्राप्ति होती है, यह मगवान् जादिनाथकी आता है । इत्यादि
अनेक प्रकारमें सम्राट्ने उन स्त्रियोंकी पारणा करनेकी विधिका
उपदेश दिया । परं कुछ स्त्रियोंकी पारणाके लिये जानेकी वटा,
और कुछ स्त्रियोंकी माया यशस्वतीके पास भेजकर और कुछ
स्त्रियोंके साथ स्वयं महलकी ओर चले । जो स्त्रियां यशस्वती देवीके
महलकी ओर जावती थी उन स्त्रियोंमें भरतजीने कहा कि आप
लोग माताजीके पास रहें, मैं शीघ्र ही मुनिदानकी क्रियामें निगुप्त
होकर उपर जाना हूं, सबतक आप लोग मेरी प्रतीक्षा करें ।

अपने माथकी स्त्रियोंमें चन्दोने कहा कि आप लोग जल्दी महलमें
जाकर मुनिदान की तैयारी करें । मैं बादर दरवाजे पर जाकर
मुनियोंका प्रतिप्रदण कर लागा हूं । ऐसा कहकर भरतजी मुनियों-
की प्रतीक्षाके लिये गये । कुछ स्त्रियां पारणा करनेके लिये गईं ।
और कुछ मुनि दानकी तैयारीके लिये गईं और कुछ सामकी
वचना के लिये गईं । तब यशस्वती महादेवीका भी उपवाहन था ।
उसने भी अर्जिकारोंके साथ जागरणमें रात्रिको उपवीत किया
था । अथ सुग्गमज्जन देवपूजा कर गणहपमें आकर बैठी है ।

आज माता यशस्वती देवीकी पारणा है इस उपलक्ष्य में
सबके पुत्रोंमें स्थान स्थानमें अनेक बहुमूल्य उपहार भेजा है ।
उन सबको देखती हुई यशस्वती महादेवी विराजी हैं ।

यशस्वती महादेवी को मैं मुंदर • पुत्र हूँ ।

उनमें से छह पुत्र तो पहिले से दीक्षा लेकर गये थे, शेष ९४ पुत्र भिन्न २ राज्यों में राज्य पालन कर रहे हैं। उन सभी पुत्रों ने मातृभूमि की पारणा के उपलक्ष्यमें वस्त्र, कर्पूर, गंध, गुलाबजल, आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंको भेजे हैं।

अयोध्यानगर के अधिपति सम्राट् भरत हैं। और युवराज बाहुबलि हैं जो पौदनापुरका राज्य पालन कर रहे हैं। उन्होंने भी अनेक अनर्घ्य वस्त्र रत्नादिक पदार्थोंको माताजीको भेंट में भेजे हैं।

बाहुबलि सुनंदा देवीका पुत्र है, कृतयुगका वह कामदेव है। अपनी मौसीके उपवासकी पारणाके हर्षके उपलक्ष्यमें रत्न निर्मित पलग, मोतीके पखा, माणिक से निर्मित जलपात्र, एव अगणित उत्तमोत्तम वस्त्र आदि उपहारको उसने भेजा है। बाहुबलिकी पधानदासी इन सब उपहारोंको लेकर माता यशस्वतीकी सेवामें उपस्थित हुई। और बहुत भक्ति से नमस्कार कर खड़ी होगई।

माता यशस्वती देवीने उस दासीसे प्रश्न किया कि दासी ! हमारा छोटा बेटा कैसा है ? उसकी खियां कुशल तो हैं न ? बड़े भार्गवके समान वह भी उपवास करता है या नहीं ?

उस दासीने उत्तर दिया कि माता ! बड़े स्वामीके समान हमारे स्वामी अधिक व्रत नहीं करते हैं। उनको केवल एकमुक्त व्रत रहता है। उनके समान ही उनकी देवियां भी अल्प चारित्र्यमें ही रहती हैं।

तब माता यशस्वती देवीने फिर पूछा कि दासी ! बहिन् सुनंदा देवीका क्या हाल है ? उसका वर्तन किस प्रकार है ? वह दासी कहने लगी कि माता ! माता सुनंदादेवी तो व्रत, जप उपवास व शरीरदमन आदि कार्यमें सदा लगी रहती है।

इसे सुनकर यशस्वती देवीने कहा कि ठीक है ! गढ़ छर्पका समाचार सुनाया । अब दामिनीको बुलाकर आशा दी कि इस पौदनापुरमें आई हुई दामीकी अभिकाषोंका आहार होते ही भोजन करावे । सब वधास्तु फटकर बटामे चली गई ।

अब यशस्वतीने देखा कि बहुतों उनके दर्शनके लिये आगई हैं वहुवोंने भी मामको दूर से ही देख ली । मामको देखनेपर उनको भोजन करनेके समान ही हर्ष हुआ ।

सास उनके प्रति देखकर हम रही थी, वे भी मामके मुग्ध को देखकर हमती हुई घाममें आरही है ।

मामके निकट आकर मधमे पहिले मामके समक्ष जिनपूजा व अभियेकके प्रमादकर गंधोदक व पुष्पको रखा व प्रार्थना करने लगी कि मातुश्री ! हमने जो अभियेक व पूजन देखा था उसपर आप भी प्रसन्नता जादिर करें ।

तब यशस्वतीने गंधोदक व पुष्पको प्रदण करती हुई “ इच्छामि ” शब्दका उच्चारण किया ।

बादमें सर्व मनियोने अपनी पूरा मामके उरणमें सन्तक रखने पर मानाने आशिर्वाद दिया कि आपलोग अग्रण्ट सौभाग्य व मुग्धमे चिरकाल जीती रहो ।

बादमें उन सानियोने पुनः एक बार नमस्कार कर कहा कि माता ! हमारी कुछ बहिनें पत्तिकी आलामे अन्य कार्यमें चली गई हैं । वे यहा नहीं आसकी, हमलिये वनकी ओरसे गढ़ नमस्कार है । इसे भी स्वीकार कीजियेगा ।

तदनंतर वे सतिया मामको घेरकर बैठ गई और धर्मचर्चा करने लगी ।

माता यशस्वती देवीने विचार किया कि वहुवोंका परिणाम किम प्रकार है यह देखना चाहिये । इसलिये वह जरा हमकर पूछने लगी कि बेटी ! तुम लोगोंको कुछ काम नहीं दिगता है,
२६

तुम्हारे पतिको भी विवेक नहीं है। व्यर्थ ही इस नवीन जवानीमें उपवास आदि कर शरीरको कष्ट क्यों देरही हैं ? यदि भरतको विवेक होता तो वह कभी भी तुम लोगोंको उपवास व्रत ग्रहण नहीं कराता, उसके विवेकका नमूना तो देखो। राज्यपालन करते हुए मुनियोंके समान आचरण करता है यह अविवेक नहीं तो और क्या है ? कदाचित् उसे भोगमें इच्छा न हो तो न सही ! हमारी प्रिय बहुवोंको भूखी रखकर कष्ट क्यों देता है ? समझमें नहीं आता ? जिन ! जिन ! परम कष्ट है।

इस बातको सुनकर वे सतिया कहने लगी कि माता ! हमें किस बातका कष्ट है ? एक मासमें हम एक उपवास करती हैं। इससे ज्यादा हम क्या करती हैं। जवानी ऊमरमें शक्तिके रहते हुए ही व्रत करना क्या यह उचित नहीं है ? माता ! हमारे प्राणनाथको अविवेकी आप कहसकती हैं ? क्यों कि वे आपके पुत्र है। स्वर्गके देव भी आपके पुत्रकी बड़े गौरवके साथ प्रशंसा करते हैं लोकमें सर्वत्र उसकी कीर्ति गाई जा रही है। इसलिये माता ! आपका पुत्र न अविवेकी है और न हमें कोई कष्ट है प्रत्युत् हमें महासुख है।

इस बातको सुनकर वह माता यशस्वती बहुत प्रसन्न होगई ! और कहने लगी कि आप लोगोंसे मैं अत्यंत प्रसन्न होगई हूं। तुम्हारे पतिके गौरवके प्रति आप लोग भी अभिमान रखती है यह हर्षका विषय है। इसी प्रकार धर्माचरण करती हुई आप लोग सुखसे रहो। बेटी ! अब देरी होचुकी है। पारणाके लिये जल्दी जावो। अब विलंब मत करो।

तब उन देवियोंने कहा कि माता ! आज पतिदेव आपकी पक्ति में ही बैठकर अपनी महलमें पारणा करनेवाले हैं। मुनियोंको आहार दान देकर वे आपको बुलानेकेलिए यहा आयेंगे तबतक हम लोगोंको यहीं पर रहनेकेलिए आज्ञा दी है।

इस बातको सुनकर यशस्वती विचार करने लगी कि हा ! मेरा पुत्र उपवासमें ही यहाँतक आयागा उसे व्यर्थ ही कष्ट होगा, प्रकट रूपसे कहने लगी कि देवी ! अपन ही उधर चले । भरतको व्यर्थ ही कष्ट क्यों ? यदि वह हमारी महलमें पारणा करता तो यहाँ आनेकी जरूरत थी नहीं तो व्यर्थ ही उसे कष्ट क्यों दिया जाय ? इस प्रकार कहती हुई एक आस सतीको बुलाकर आह्वा दी कि तुम अर्जिकावोंको आहार दान देनेका कार्य अच्छी तरह करो ! मैं भरतकी महल की ओर जाती हूँ ।

माता यशस्वती देवी अपनी बहुवोंके साथ मिल कर अब भरतके मंदिरकी ओर आई । भरतजी भी मुनियोंको आहार देकर उधर ही चलनेकेलिये निकले थे । मार्गमें ही मातुश्री को आती हुई देखकर भरतजी को जरा दुःख हुआ कि माताको कष्ट हुआ । मैं जाता तो इनको योग्य वाहन वगैरहपर बैठाकर लाता । फिर प्रकट रूपसे अपनी स्त्रियोंसे बोलने लगे कि मैंने आप लोगों को आह्वा दी थी कि मैं वहाँपर जरूर आवूंगा । तबतक आप लोग वहींपर ठहरें । अब आपलोगोंको कांता कहें या भ्रांता कहे समझमें नहीं आता । उन स्त्रियोंने कहा कि स्वामिन् ! हम लोगोंने उसी प्रकार विनति की थी, परंतु अपने बेटेको कष्ट होगा इस पुत्रमोहसे माता एकदम चठी, उस समय उन्हें कौन रोक सकते थे ।

माता यशस्वतीने कहा कि बेटा ! व्यर्थ दुःखी मत होवो । मैं अपनी इच्छासे ही आगई हूँ । तुम्हारी जब स्त्रियां आगई तब तुम्हारे ही आनेके समान होगया ।

सम्राटने अत्यंत भक्तिपूर्वक माताके चरणमें मस्तक रखा । मातुश्रीने पुत्रके मस्तकपर हाथ रखकर " इंद्रो भव । पुनः इंद्रपूज्यो भव । सांद्रसुखी भव । इस प्रकार आशिर्वाद दिया । चलती २ ही पूछने लगी कि बेटा ! सुन लिया ? तुम्हारे छोटे भाईका हाठ ।

वह उपवास नहीं करता है। कभी एक भुक्त कभी रसत्याग कर रहता है तुम व्यर्थ ही क्यों उपवास करते हो ?

माता ! मैं ऐसा क्या ज्यादा करता चार पर्वदिनोंमें किसी एक पर्वमें उपवास करता हूँ, वह भी मेरा नियमव्रत है। यम व्रत नहीं। यम व्रतका आचरण करना कठिन है। नियम व्रत चाहे पालन कर सकते हैं चाहे छोड़ सकते हैं। हमारे लिये इसमें कोई कष्ट मालुम नहीं होता है ऐसा भरतजीने कहा।

बेटा ! यदि तुम्हारे लिये कोई कष्ट मालुम नहीं होता हो तो भले ही करो, परंतु मेरी बहुवोंको भी जबरदस्ती यह व्रत कराकर उन्हें कष्ट क्यों देते हो ? यह तो कहो ?

माताकी इस बातको सुनकर भरतको हसी आई। माता ! क्या आपकी बहुएँ आपके पुत्रसे भी अधिक हैं ? बड़ी बहिनके पुत्रसे भी छोटे भाईयोंकी बेटियाँ अधिक हैं ? बड़ी बहिनका पुत्र जब भूखा रहता है तब छोटे भाईयोंकी बेटियाँ भूखी नहीं रह सकती हैं। बड़ी बहिनसे भी छोटे भाई अधिक हैं ? माता ! मैं स्वतः अपनी इच्छासे उपवास करता रहता हूँ आपकी बहुवोंको उपवास करने के लिये कभी नहीं कहता हूँ, वे ही अपने आप उत्साहसे करती हैं इसे मैं क्या करूँ ? माता ! ये ब्रियाँ महिने में एक उपवास करती हैं ? इनको क्या हुआ है ? भोग के लिये शरीर को जब बहुत समयतक लगाती हैं तो धर्म के लिये एक दिन भी नहीं लगावे ? शरीरके भोगमें ही यदि अत्यंत आसक्त होजाय तो पाप का बध होता है। उससे नरकादि दुर्गति की प्राप्ति होती है माता ! जिनव्रत के लिये थोड़ा बहुत कष्ट भी उठाना पड़ता है। आगे जाकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। माता ! मनुष्य जन्मको प्राप्त करनेके बाद जितने होसके अधिकसे अधिक व्रतोंका पालन करना चाहिये, भोगमें उन्मत्त होना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नहीं है,

इन बातोंको सुनती हुई माता यशस्वती बीचमें ही बोल उठी कि बेटा ! ठीक है, इसे रहने दो, तुमने मुनिदान कर भोजन करनेका जो व्रत लिया है वह कैसा है ?

भरतजी कहने लगे कि माता ! वह नियमव्रत है, यमव्रत नहीं । युद्धको जाते समय, चिंता व सूतकके समय इस व्रतका पालन नहीं होता है, हां ! खा पीकर महलमें रहते हुए बराबर इस व्रतका पालन करता हूं ।

माता ! मैं अभेदभक्तिकी अपेक्षा कभी नहीं करता, बाह्य आचरणों का पालन कभी करता हूं, कभी नहीं भी करता हूं । माता ! राज्यकी झड़टके होते हुए जो पलसके उसी व्रतको ग्रहण करना चाहिये । बड़े व्रतको ग्रहण कर बीचमें विचारमें पड़ना यह पागलोंका कार्य है ।

माता ! विशेष क्या कहूँ ? देवाधिदेवकी राणी यशस्वतीके गर्भ में उत्पन्न यह भरत बिलकुल मूर्ख नहीं है । आप चिंता न करें । मैं अपनी शक्ति देखकर ही व्रतका पालन करता हूं ।

इन बातोंको सुनकर माता यशस्वती कहने लगी कि बेटा ! असीम राज्यको पालन करनेवाले तुझे व्रतादिकके पालन करनेमें बड़ा कष्ट होता होगा इस बातकी मुझे चिंता जरूर थी, अब वह दूर होगई है ।

मैं कई दफे सोचती थी कि मेरे बेटेको बुलाकर एक दफे समझावूं । फिर उसी समय मनमें विचार आता था कि मेरे पुत्रकी वृत्तिकी देवेंद्र भी प्रशंसा करता है । मैं उसे क्या कहूँ ? बेटा ! इस जवानीमें अगणित सुदरी स्त्रियोंकी बीचमें रहनेपर भी अपनेको नहीं भूलकर जागृत अवस्थामें रहनेकी तुम्हारी वृत्तिकी देखनेपर मन प्रसन्न होता है । मेरे पुत्रको हजारों झड़टें हैं । उसमें यह व्रत व उपवास आदिकी चिंता इसे, और लग गई इस बातकी मुझे कभी २ चिंता होती है, परंतु तुम्हें उन सब बातोंसे

अलग देखते हुए मुझे परम हर्ष होता है। बेटा भरत ! तुम्हारे शपथ पूर्वक मैं कहती हूँ कि तुम्हारा राज्य, तुम्हारे भोग स्त्रिया व तुम्हारे व्रतोंको देखने पर मनमें विशेष चिंता होती है। आज तुम्हारी बातें सुनने से वह चिंता दूर होगई।

भरतजी कहने लगे कि माता ! आप मेरे प्रति इतनी चिंता करती हैं अतएव मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। अन्यथा मुझे इसप्रकारकी सपत्ति कहासे आती ? यह सब आपका ही प्रसाद है।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सब मिलकर महलके दरवाजे पर पहुँचे, उस समय भरतजीने माताके पाद कमलोंको शुद्ध जल से प्रक्षालन किया। फिर अदर जानेके बाद उच्च आसन पर बैठाकर माताकी पूजा करनेकी तैयारी भरतजी करने लगे।

माता यशस्वती कहने लगी कि बेटा ! मुनियोंकी पूजा करना सिद्धातविहित मार्ग है, मेरी पूजा करना उचित नहीं है। जरा विचार करो।

भरतजी कहने लगे कि माता ! आप मुनियोंकी जननी हैं। वृषभसेनाचार्यकी आप माता हैं। वीर मुनि, अनन्तविजयमुनि, अच्युतमुनि, सुवीर मुनि, और अनन्तवीर्य मुनिकी आप जन्म-दात्री नहीं हैं ? लोकमें यक्षयक्षियोंकी पूजा की जाती है, आप तो साक्षात् ब्रम्हचारिणी है, आपकी पूजा करनेमें कौनसा विरोध है ?

बेटा भरत ! तुम्हारी वृत्तिको लौकिक लोग पसंद नहीं करेंगे। वे कुछ न कुछ बोले बिना नहीं रहसकते। मेरी पूजाकी आवश्यकता क्या है ? तुम इस प्रकारके कार्य को मत करो। लोकापवादको देखकर चलना चाहिये ऐसा माता ने कहा।

फिर भरतने कहा कि माता ! लोक सब मेरी पूजा करता है। उस अवस्थामें मैं अपनी माताकी भक्तिसे पूजा करूँ, इसमें दोष क्या है ? अविवेकियोंके वचनपर हमें ध्यान देना नहीं।

आप शांत चित्तसे बैठी रहें हम तो पूजा करेंगे ही ।

इस प्रकार कहकर दूसरी ओर देखकर “ लावोजी ! साम-
ग्री लावो, और पूजा करनेके लिये आवो कहते हुए अपनी राणि-
योंको बुलाया, तत्क्षण सभी राणियां सामग्री सह आकर उपस्थित
हुई । और सब मिल कर बहुत भक्तिसे पूजा करने लगी ।

भरतजी मंत्र बोलते हुए सामग्री चढाते जा रहे हैं । वे स्त्रियां
सामग्री थालीमें भरकर देती जा रही है । जल, गंध, अक्षत, पुष्प
चरु, दीप, धूप फल व अर्घ्य इस प्रकार अष्टद्रव्यों से माताकी
पूजा सम्राटने की । कोई स्त्रियां चामर डोलती है, कोई
पुष्पवृष्टि करती है । कोई कुछ, कोई कुछ, इस प्रकार तरह तरह
से भक्ति कर रही है । माता चुप चाप के बैठकर इनकी लीला
को देख रही है । पूजाकी समाप्तिमें उन राणियोंने नवरत्न से
निर्मित आरती उतारी । भरतजीने अपनी देवियोंके साथ माताको
नमस्कार किया । फिर माताकी बायें ओर बैठ गये, । इसी प्रकार
सब राणियां भी पंक्ति बद्ध होकर बैठ गई ।

सामुने बहुवोंको बुलाकर अपनी पंक्तिमें भोजन करनेके लिये
कहा व सबने एक साथ पारणा की । भरत चक्रवर्ती की महलके भो-
जनका वर्णन क्या करें ? क्षीर समुद्रमें डुबकी लगानेपर जैसा हर्ष
होता है उसी प्रकार उन्होंने भोजन अत्यंत आनंदके साथ किया ।

बादमें पारणाश्रमकी निवृत्तिके लिये भरतजी माताको ‘हाथ-
का सहारा देते हुए विश्रान्ति भवनमें ले आये । और वहांपर
उन्होंने माता को झूलेपर बैठनेके लिये प्रार्थना कर उस झूलेके
ढोरेको हाथमें लेकर झोका देने लगे । शायद यह माताने
बाल्यावस्था में उसे जो झोका दिया है उसका बदला है । फिर
भरतजी माताके ऊपर गुलाबजल को छिड़क रहे हैं । माता
ने उन्हें बाल्यावस्थामें दूध पिलाया है । उसका ऋण अब
वे चुका रहे हैं । इसी प्रकार अपनी राणियोंके साथ माता

की अनेक प्रकारसे सेवा करते हुए कहने लगे कि माता ! आपको बहुत कष्ट हुआ । आपका शरीर थक गया है । आप इस बुढ़ापेमें उपवास क्यों करती है ?

माता पुत्रकी बात सुनकर कुछ भी नहीं बोली । और मनमें विचार करने लगी कि आज भरत मेरे कारणसे विश्रांति नहीं ले रहा है । इसलिये यहाँमे अब जाना चाहिये । प्रकट रूपसे कहने लगी कि बेटा मुझे अपनी महलको गये बिना नींद नहीं आती है । इसलिये मैं वहाँ जाती हूँ । तुम यहाँ विश्रांति लेलो । यह कह कर उठी भरतने भी हाथका सझारा दिया ।

उसी समय माताकी दासियोंको अनेक वस्त्र आभूषणोंको भेटमें दिये । तब माताने विनोदके लिये कहा कि मुझे कुछ भी नहीं दिया ? तब भरतजी ने कहा कि माता ! आपको देनवाला मैं कौन हूँ ! यह सब संपत्ति आपकी ही है ।

तदनंतर माता अपनी महलमे आकर पारणा कर गई है । उस हर्षोपलक्ष्यमे सम्राटने सेकड़ों पेटियोंको भरकर वस्त्र आभूषण बगैरह भेजे । माताके साथ कुछ दूरतक पहुचानेके लिये भरतजी गये । उतनेमें दरवाजेपर पल्लकी तैयार थी । माता उसपर चढ़ गई, पुत्रने भक्तिसे नमस्कार किया । माता प्रेमसे आशीर्वाद देकर अपनी महलकी ओर प्रयाण कर गई । इधर भरतजी अपनी महलमें आकर सुखपूर्वक भोगयोगमें मग्न हैं ।

कल दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेका विचार निश्चित होगा । परंतु आज भरतजीके मनमें उसकी कल्पना भी नहीं है । विचार भी नहीं है कि जिसकुलतासे सुखमें मग्न हैं । क्यों कि महापुरुषोंकी चित्ति अलौकिक हो रहती है ।

ज्ञान पारणासंधिः ।

